

बाल मुकुन्द गुप्त

एक मूल्यांकन

सम्पादक

कल्याणमल लोढा विष्णुकान्त शास्त्री

प्रकाशक

डा. बालमुकुन्द गुप्त छात्रावास समारोह समिति
कलकत्ता ।

प्रथम संस्करण १९०० प्रतियाँ

C

पादु बालमुकुन्द गुप्त कस्तूरामिकी समारोह समिति
कलकत्ता ।

सूचक ।

श्री मार्गिक बालमुकुन्द

प्रवृत्ति फार्मिन् बालि प्रेस

२० बाल मुकुन्द मकर रोड कलकत्ता-७

मूल्य ५ ६ ५० पै०



श्रीकृष्ण विद्यालय

अमिताभ प्रकाशन

२० बाल मुकुन्द मकर रोड, कलकत्ता-७

फोन १४ १६९९

संयोजकीय

बाबू बालमुकुन्द गुप्त की शतावधिकी के पावन वर्ष पर उनके व्यक्तित्व और कर्तृत्व का यह आलोचनात्मक अध्ययन और मूल्यांकन प्रस्तुत करते हुए कवीर हर्ष हो रहा है। कारण किसी भी साहित्यकार के लिए यही उचित है जिन्होंने इतने अल्प समय में ही हमें अपने निबन्ध देने का अनुग्रह किया। इसके नाथ-साथ भी अजगता फार्मिन् आर्ट प्रेस के मंचासक श्री मानिक बच्चसक्ता का भी बामार माननी है जिन्होंने अल्प समय में ही इसका मुद्रण संभव किया।

अल्प समय सहयोगियों की सुमार्गसा ही इसकी सफलता का मूल कारण है। अल्प समय में प्रस्तुत करने के कारण इसमें कुछ त्रुटियाँ अवश्यमेव रह गयी हैं जिन्हें पाठक उबार क्षुब्ध से देखने की कृपा करें।

कलकत्ता गुप्तजी का मानस-भोग रहा। उनके साहित्यिक अनुपत्तों द्वारा शतावधिकी के इस पुनीत महोत्सव पर यह पुष्पाञ्जलि सादर सज्ज उगके श्री घरमों में अर्पित है।

गुप्तजी के कुछ महत्त्वपूर्ण अद्यतन अग्रन्थित लेख भी दिने जा रहे हैं। इनकी प्राप्ति के लिए हम श्री नववर्धनोर गुप्त के विद्यय बामारी हैं।

कलकत्ता

विश्वाम्बर २०२२

कलकत्तापत्रिका छोड़ा

संयोजक

बाबू बालमुकुन्द गुप्त शतावधिकी समारोह समिति

कलकत्ता

संकलित



पृष्ठ

१	श्रद्धाञ्जलि	श्री सीताराम सेकहरिया	
१	बाबू बालमुकुन्द गुप्त जीवन परिचय	डा० रामसेवक पाण्डेय	१
३	बालमुकुन्द गुप्त की राष्ट्रीय भावना	डा० मुनीश्वर भट्ट	१७
४	बारहमास के लेखनी सम्पादन	श्री कृष्णबिहारी मिश्र	३५
५	गुप्तजी के व्यांगचित्रोद्घ	श्री रघुनाथ मिश्र	४८
६	बालमुकुन्द गुप्त की निबन्ध-शैली	श्री प्रेमसेन सिंह	५३
७	चरितलेखक बाबू बालमुकुन्दगुप्त	श्री जयन्ताव सेठ	६७
८	हिन्दी आलोचना को		
	श्रीबालमुकुन्दगुप्तकी देन	श्रीविष्णुकान्त भारती	७६
६	निबन्धकार बालमुकुन्द गुप्त		
	एक मूल्यांकन	डा० दशरानन्द श्रीवास्तव	१३२
१०	कवि बालमुकुन्द गुप्त	श्री प्रबोधनारामण सिंह	१७१
११	सर्वतोमुखी अष्टात्री	श्री कृष्णप्रसाद	१७७
१२	विस्मयंता कविबालमुकुन्दगुप्त	श्री कल्याणमल सोडा	१८७
१३	गुप्तजी की भाषा और भाषाविषयक प्रतिक्रिया	श्री सुर्वदेव भारती	२०६

परिशिष्ट

गुप्तजी के अग्रजिन्हास निबन्ध

१	भाषाशानी की सन १९	१
५	टिप्पण ३	५
३	बारमासमी भाट	७
८	आदर्श सुदर्श	९
५	नाविकावद	१२
६	अप्रीतिर्वा घनाम्नी	१८
७	रात्रभक्ति	२४
८	त्रिदे सो रीते काम ।	२९
९	ईसी-गुपी	३२
१०	कमलन से ललकड	३६



बालमुकुन्द गुप्त : एक सूर्यांकन

श्रद्धाजलि

सीताराम सेकस्रिया

श्री बासमुकुन्दजी गुप्त का जन्म घाट के एक सौ वर्ष पहले हुआ था। इस वर्ष उनका जन्म छत्ताम्बी महोत्सव मनाया जा रहा है। जिस समय गुप्तजी का जन्म हुआ था और उनका कामन-यास्मन सिक्ख भीरु संस्कार हुए थे वह युग भारत का एक विद्यम युग था। उस युग ने हमें हर दिशा में अनेक विद्यम पुरुष दिये। इस युग में जो लोग अपने जिये और काम कर गये उन महापुरुषों के जन्म-छत्ताम्बी-उत्सव सिक्खे चार पाँच वर्षों से मनाये जा रहे हैं।

इन बड़े लोगों की अपने-अपने क्षेत्रों में विशेष रैन रही है। इन लोगों ने जिस क्षेत्र में भी काम किया उसी क्षेत्र में भारत के मौरव को इतना बढ़ा दिया कि इतना लम्बा समय गुजर जाने पर भी इन महान् पुरुषों की याद बनी हुई है और देश कृतज्ञता के साथ उनका आदर करता है। उस आदर के दिन पूज्यवर गुप्तजी के प्रति अट्ठा प्रणम कर तथा उनके कार्यों की याद कर, समाज नहीं प्रेरणा प्राप्त कर सके इसके लिए जमह-जमह छत्ताम्बी आयोजन तथा गुप्तजी की साहित्यिक रैन पर नागा कपों पर प्रकाश डाला जा रहा है यह खुशी की बात है।

श्री बासमुकुन्द गुप्त संस्थापिकी समारोह समिति की ओर से गुप्तजी पर एक आलोचनात्मक पत्र प्रकाशित हो रहा है। गुप्तजी कलकत्ते से भारतमित्र का सम्पादन करते थे। वह समय हिन्दी के लिए प्रयत्न करने का समय था उन दिनों कलकत्ता हिन्दी का विशेष केन्द्र बन गया था। हिन्दी के अनेक साधक विम्वर और साहित्यकार उन दिनों कलकत्ते में थे और बाहर के लोग कलकत्ते की ओर केला करते थे। आज कलकत्ता उस समय से कम से कम आठ दस गुना बड़ा है और वही हिन्दी भाषी लोगों की संख्या भी हिन्दुस्तान के किसी

एक नगर के हिन्दी वापियों की संस्था से बहुत अधिक है। इसके
 बसावा यहां साधन तथा अनेक सुविधाएँ भी दूसरी जगहों से बहुत अधिक हैं।
 उन दिनों का आज किसी बात से मुकाबला नहीं किया जा सकता जब
 भारतीयों को ओरों के घर जाकर पढ़ कर गुनाह पढ़ता था बिना पैसे के।
 पाठकों का ऐसा अनाम साधकों के तिम जुनौती थी और न हिन्दी के अनन्य
 सेवक साधक और शिषक तथा साहित्यकार इस तप में तप रहे थे कि किस
 प्रकार हिन्दी जगत हो फल-फूल फैले पनये। मुन्तजी ने उस समय जो तप
 किया था जिस प्रकार हिन्दी को संस्थापित सिंहास, लबाया और हिन्दी पत्र
 कारिता की जो सेवा की गहन विषयों को अपनी प्रभावमय भाषा द्वारा सरल,
 सहज बनाकर उपस्थित किया वह सदा स्मरणीय है। मुन्तजी की हिन्दी सेवा
 या हिन्दी पत्रकारिता हिन्दी जगत् में सदा आधारभूमि रखेगी। आज एक ही
 बर्ष बाद ही नहीं जब कभी हिन्दी पत्रकारिता के इतिहास पर विचार होमा
 तब मुन्तजी को याद और भ्रष्टा के साथ स्मरण करना पड़ेगा। मुन्तजी और
 उनके साथी उस समय जो कार्य करते थे उससे कमकता हिन्दी जगत् में सम्मान
 का तथा महत्त्व का स्थान रखता था। आज आदमी तो बहुत है साधन भी
 प्रचुर है पर कोई भी तपस्वी नहीं बिकता जो हिन्दी की सेवा करना अपना
 जीवनोद्देश्य बनाये। मैं मानता हूँ कि जिस स्वाधीन देश की अपनी भाषा न
 हो ऐसी भाषा जिस भाषा को धीरे-धीरे के साथ अपनी राष्ट्र भाषा कह सके
 वह देश स्वाधीन देशों की श्रेणी में गिना नहीं जा सकता उसकी स्वाधीनता
 अचूरी है उसका विकास असम्भव है। पराई भाषा के आश्रय से सोचन और
 बनने वाला देश स्वाधीन कैसे? भारत के कोटि-कोटि लोगों का विकास
 करना है उनको शिक्षित करना है तो वह किसी भी पराई भाषा के द्वारा या
 उनके आधार पर हा नहीं सकता। करोड़ों लोगों के लिए अपनी भाषा चाहिये।
 कुछ लोग जिस भाषा को समझ सकें या उनसे लाभ उठा सकें ऐसी भाषा ही
 हमारे लिये-वड़े लोगों की भाषा बनी रहे या मामी जाय तो फिर देश-जान के
 क्षेत्र में कभी विकसित नहीं हो सकता। देश के विकास के लिए तो उसकी
 अपनी भाषा होनी सभी बड़े विकासमान होना। आज मुन्तजी की पठशापिका
 पर हर आदमी का जो मुन्तजी के प्रति भ्रष्टा निबन्धन करना चाहता है प्रयत्न
 होना चाहिये कि जिस भाषा को जगत करने के लिए मुन्तजी न अपने जीवन
 का सर्वश्रेष्ठ समय, शक्ति और श्रम दिया उसका जल हृदय के ऊपर है और
 उनको तथा ऐसे महापुरुषों की स्वर्गीय आत्मा को भ्रष्टा प्रदान करने के लिए

हम प्रण करें कि बिम भाषा की उपासना करने में उन महान्-भाषाओं ने
 अपने आपको स्वीछाकर दिया है। हम उसको देश की उपरिधीन और गौरव
 शील राष्ट्रभाषा बनायेंगे। यही मन्त्री खड़ा होनी युष्तजी के प्रति। मैं ईश्वर
 से प्रार्थना करता हूँ कि वह हमें सही मार्ग पर चलने का भारत को विकास
 मान देना बनाने का बल दे जिससे भारत औरव के साथ हिन्दी को अपनी
 राष्ट्रभाषा कहने में समर्थ हो। ऐसी हमारी भाषा हिन्दी है हिन्दी हो सकती
 है हिन्दी ही होनी। हमारा मानस इसे स्वीकार करे और हिन्दी विकसित हो
 जिसमें भारत का विकास निहित है। यदि युष्त जयन्ती से हमें प्रेरणा मिल
 सके और हम सज्ज होकर हिन्दी को उन्नत रूप दे सकें तो यह हमारी सच्ची
 अर्पणा होनी युष्तजी के प्रति।



जन्म १८६५ ई०

स्व० बाबू बालमुकुन्द गुप्त

मृत्यु १९०७ ई०

हे भारत के भक्त भारती के गायक हे भली महान् !
समुद्र समर्पित श्री चरणों में असा-सुमन भाव अम्कान ॥

बाबू बालमुकुन्द गुप्त • जीवन परिचय

डॉ० रामसेवक पाण्डेय

मालेन्दु गुप्त के अत्यन्त सेलक, द्वितीय यज्ञ के नियतिता तथा उसमें संजीवनी शक्ति का संचार करने वाले बाबू बालमुकुन्द गुप्त अद्भुत प्रतिभा-संपन्न व्यक्ति थे। बार्न में उन्हें के सेलक तथा पत्रकार होने के कारण उनकी भाषा में रसावली चप्टी और तीखी मार करने की अपूर्व क्षमता थी। उनकी भाषा जन जीवन से सम्बद्ध तथा वस्तु-सत्य से सटी हुई होती थी। संस्कृत के अप्रचलित शब्दों से पाठकों को आकर्षित करने से उन्होंने सदा अपने को पूँचक रखा। उनकी भाषा साफ-सीधी और टकसामी होती थी साथ ही बहुत जोरदार और पैरो-उसमें एक छन्द भी चप्टी का नहीं होता था।

गुप्त जी राजनीतिक दृष्टि से बहुत प्रबुद्ध तथा जागरूक कैलक थे। उन्नीसवीं शदी के अन्त तथा बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में जब ब्रिटिश साम्राज्य का आर्तक सर्वत्र व्याप्त था उस समय भी गुप्तजी ने निर्भीकतापूर्वक अपनी सजीव लेखनी से तत्कालीन भारत की राजनीतिक वास्तवता का यथार्थकी भूमिका पर बड़ी मार्मिकता से चित्रण किया। विश्व धाम्नु क बिहूँ गुप्तजी के सीले व्यंग के उबलन्त प्रमाण हैं। इन बिहूँ का ऐतिहासिक महत्त्व है। साथ ही इनका इनका व्यापक प्रभाव पड़ा कि कितने ही सेलक शिवशम्भु बामने के बिदे उस्मुक हो उठे।

गुप्तजी सवातन धर्म के अत्यन्त उपासक होते हुए भी कृपासहृदता के परम विरोधी थे। प्रवृत्तिशीलता के दावेस में परम्परागत प्रत्येक कार्य-अंश-नियम को बाढ़ि बड़ किन्ता ही गुप्त और गुपीत परिस्थितियों के अनुकूल नहीं न हो अन्तीवार करना उनका स्वभाव के बिच्छ था। अपनी प्रत्येक वस्तुओं हीन

मन्त्रे वाली मावना के वे कटु आलोचक थे। भारतीय समाज के अंतर्विरोधों का उद्घाटन करने में तनिक भी संकोच नहीं करते थे।

उन्नी अपने समय के उर्ध्व धीर हिन्दी के सपना और रम्यातिरम्य पत्र पढ़ते थे। पत्रों के व्यवस्थापक उन्हें अपने पत्र में जाने के लिए बख्तर की उम्मीद करते थे। जिस पत्र को मुन्तजी ने हाथ में लिया वह जमक उठा। मुन्तजी के कारण ही 'भारत मित्र' उस समय का बहुत सक्रियताशी पत्र बन गया। इस पत्र के द्वारा मुन्तजी ने राष्ट्रीय चेतना पैदा की और विदेशी आदमी के उदात्त प्रभाव को रोका। भारतीय संस्कृति की रक्षा तथा देश और धर्म के प्रति लोगों में अनुराग पैदा करने के लिए अथक प्रयत्न किया। उनके अंत्यकाल में 'भारत मित्र' हिन्दी जगत की एक प्रधान संस्था बन गया। मुन्तजी के कारण कलकत्ता की हिन्दी गद्य के निर्माण में गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ। भाषाविद् आलोचक परिचायक तथा साहित्यिक विचारों में रचिसने वाले बाबू बालमुकुन्द मुन्तजी का संक्षिप्त जीवन परिचय निम्न सिद्धित रीतियों में प्रस्तुत है।

अभ्य पारिवारिक परिवेश तथा माध्यमकाळ

बालमुकुन्द मुन्तजी का जन्म हरियाणा प्रान्त के अन्तर्गत रोहताक जिले के मुड़ियानी नामक ग्राम में सन् १८६५ में कार्तिक शुक्ल चतुर्थी को हुआ था। इस गाँव के निवासी घोड़ा के व्यवहार के लिए प्रसिद्ध थे। हरियाणा प्रान्त का मुड़ियानी सम्प्रदाय नाम है जिस कहा जाता है कि छह ही वर्ष पूर्व मुड़ियानी नामक छोटा राजपूत ने बताया था। मुन्तजी के जन्म काल में इस गाँव में पठनों की विस्तारवादी थी। इस गाँव का सम्बन्ध यज्ञी से घाये हुये तीन माइनों मन्दावी मुरजोदनी धीर बजात खाँ से बताया जाता है। इस समय मुसलमानों का शासन समाप्त हो गया था पर सिक्का पारसी ऊर्दू के माध्यम से ही जाती थी। यह अवसरानुरूप का युग था। जब अपने प्राचीन आदर्शों की नवीन परिवेश में प्रतिष्ठित करने की चेष्टा बनवती हो चुकी थी।

एकटा बुद्धिमान मुड़ियानी में बगधीराम बालों के नाम से विख्यात था। इनके पूर्वज व्यवसायी थे इन व्यावसायिक सविन्याय के अनुसार में स्थान परिवर्तन किया करते थे। आरंभ में वे रोहताक जिले के 'डीबन' नामक ग्राम में निवास करने थे इन में डीबनिये कहलाता थे। इनके बाद 'अजमेर' में इनके पूर्वजों ने अपना निवास स्थान बनाया। व्यापारिक लक्ष्य के लिए इनने भी सोझर

कौशली नामक ग्राम में रहने लगे थे। इसी परिवार के सासा ब्रह्मदीरामने मुद्रिपानी में रहना प्रारंभ किया था। इन्हीं के नाम पर 'मुद्रिपानी' में गुप्त जी का कुटुम्ब विस्थापित है।

गुप्त जी के पिता का नाम सासा पुरनमल और पितामह का नाम सासा सौरभ नाम था। गुप्तजी के दो भाई और दो बहनें थीं। इनमें से ही ग्रेण्ड थे। गुप्त जी के छोटे भाई सासा मुजराय और रामेश्वर दास 'मुद्रिपानी' में निवास करते हुये अपने वैयक्तिक व्यवसाय और साहूकारी केन्द्र केन्द्र की व्यवस्था करते थे। गुप्तजी का विवाह संस्कार रेवाड़ी के प्रसिद्ध 'छाजूराम बालों' के कुटुम्ब में सासा मंगलप्रसाद जी की पुत्री भीमती धनार बेबी के साथ सन् १८८० में हुआ था। इस समय उनकी अवस्था पन्द्रह वर्ष की थी। प्रथा के अनुसार किछोरबराह में विवाह हो जाने पर भी गुप्तजी के बौद्धिक और चारित्रिक विकास में कोई बाधा नहीं पड़ी।

गुप्तजी के तीन पुत्र और दो पुत्रियाँ उत्पन्न हुईं। पुरी में ग्रेण्ड सासा नवलकिछोर गुप्त मैथिले सासा मुरारीलाल और कनिष्ठ सासा परमेश्वरी सासा जी हैं। उनके मझले पुत्र सासा मुरारोबाल का स्वयंवाह जीवनवस्था में ही हो गया। स्वर्गीय बाबू बालमुकुन्द गुप्त सम्मिलित कुटुम्ब प्रथा के समर्थक और पोषक थे। उनकी पुष्प और प्राचीर्षा से सासा भी यह परिवार सम्मिलित कुटुम्ब में रहकर परम्परा स्नेह और सद्भावना से जीवन-यापन कर रहा है। संभाव्यतः इस परिवार के मुलिया है बाबू नवलकिछोर गुप्त। श्री परमेश्वरी सासा तथा बाबू बंछीवर के सहयोगसे कमलता महामरीचें नं० १४० महारामाजी रोड पर स्थित सासा नवल किछोर एण्ड बंछीवर कर्म पुर्म सङ्गमठा के साथ बन रहा है।

शिक्षा

गुप्तजी के पिछे एक निरन्तर सं ज्ञात होता है कि उनकी विद्या दश वर्ष की अवस्था में प्रारंभ हुई थी। आपने लिखा है "सन् १८७१ के साविर में पाकि (मिराक) स्कूल में दाखिल हुआ था। उस वर्ष पंजाब में इन्ग्लैंड गदरने गीम मजदूरी की धजस में थे। उन्का बाबू भीमूद न था। कामजों पर मजिद-से निगकर पढ़ाई जानी थी।" उस समय सात्र कल के समान वैज्ञानिक

१ गुप्तजी द्वारा लिखित कामपुर के उद् मुद्रिपानी पत्र 'जमाना' दिनांक ८ नं० ६ (जून सन् १९०७) पृ० ३४४।

साधनो से सुसज्जित विस्वविद्यालय नहीं थे। ग्रामीण स्कुल भी सर्वत्र नहीं थे। पाठ्य पुस्तकें भी नाम मात्र का ही उपसर्ग थी। तत्कालीन पठन-पाठन की स्थिति आजकी अपेक्षा बेसी दयनीय थी यह भी इस निबन्ध से स्पष्ट हो जाती है। 'तहसील-उत्त-तहसील' नामकी एक किताब उर्दू की पहली किताब और उर्दू के छात्रों का काम देती थी। उर्दू की पहली दूसरी और तीसरी किताबें बनीं जकर भी अगर वह सब स्कुलों तक नहीं पहुंच सकी थी। ऐसी भी उस समय की शैक्षणिक व्यवस्था जिसमें हिन्दी के विशिष्ट लेखक वा शैक्षिक विकास हो रहा था। इन उद्धृत पद्य से स्पष्ट हो जाता है कि बुलंदी की आरम्भिक गिना उर्दू में हुई थी।

उस समय 'मुझियानी' महरसे के मुन्शी बजीर मुहम्मद और साहब प्रधानाध्यापक थे। वे उर्दू फारसीके अच्छे विद्वान थे। धारमसे प्रतिपादित बालक बालमुकुन्द पर उनकी बड़ी कृपा रहती थी। मुन्शीजी ने बालक गुप्त के स्वभाव और चरित्रिक विशेषताओं के सम्बन्ध में इस प्रकार अपने विचार व्यक्त किये हैं "महरमिनी (बात्याबन्धा) की हाजत में बालमुकुन्द मेरे पास पढ़ने लगा। उन्ही वक्त से जातारे बुलन्द इकबाली के गुमाया होने लग। वह तबियत वा बकी (चेतनशील) था और उसीवक्त से भीरो फिज, सफाई और सुबराई से काम करता था और तबियत पर रहम और इन्साफ बरजों कमाल था। वह सील उन्मू (विद्योपार्जन) में बहुत बढ़कर था कभी लेख न हुआ पाँच साल में पाँच जमाअत प्रायमरी स्कुल धरसी बत्तरीज (उत्तरोत्तर) हासिल की और उन्नेशद इस्मी ज्यादा पैसा करली। कोमे महाजमान में पहले पहल यही गल्प हुआ जिसने उन्मू उर्दू फारसी हासिलकरके अपनी कोम में इस्म पैसावा और यहाँ तक कि फिन्नाई बीवर फरीक परभी इस पत्र में सबकन (महसुबज्जाना) केमया। मुझे उसकी तहसील उन्मूमी की हासिल पर भीर बरने में बड़ा ताज्जुब आता था बुलानी बुलन्द याद आती थी कि वह बार परफरिबार जिसकी जो बुझदेगा चाहता है। खबरदारी बता है।

छरगरी तीर से बहुतहफा और लड़कों के साथ पढ़ने बैठा। अपनी जहाजत बुन्नी और जानकारी से बन्द भोज में इस्मी तरफकी हासिल करने लगा इन सबहु में मेरा दिल भी बनिस्बत और लड़कों के इसको तालीम देने पर बहुत मूनबग़्जह होना था। यह तरफकी रज कर बीवर फरीक के पोष लड़क उमने बरन इमद (दान) करने से और ईजार सानी के साथ मोटे ईश करने से उमने गाव धम्मर लड़के महाजमान बुनदे करीब की यह धोनी

बरदाष्ट न करके बर बैठ रहा करते थे लेकिन यह हिम्मतवाला कभी न बैठ। बहुत एहरियात से तहसील उमूम में मसकफ रहा बिस्वकत आतिर इम्तिहान जमायत पंचुम जो बकुरम कोसली में हुआ था सासा बसदेव सहाय एडिस्टेंट इन्स्पेक्टर मुम्तहिन थे उस खूबी के साथ इम्तिहान में कामयाबी हासिल की, कि मुम्तहिनी भी छायासी रिसाई और मुजनुदिए भिजाज का पर बाला साहिब डिपुटी कमिस्तर बहापुर विला राहतक से रिलाया और उसके आतिर को बुलाकर सासा बसदेव सहाय ने समझाया कि उसका तहसील उमूम के लिये बामे भेजो। उसबकत एडिस्टेंट इन्स्पेक्टर साहिब ने परमाया कि मुजा पंजाब में इस हजार सड़कों का इन्तहान बाजतक से चुका हू कोई सड़का इसजहानत का और नियाइतका नहीं बेला। अगर बाये तामीन न रिलाओवे तो इफ्तमकी करोग ?

इस उदरण से मुत्तजी के स्वभाव, प्रतिभा तथा अन्धधराय को समझने में यकीन सहायता मिलती है। अपने अन्धधरायों के समान वे हतोत्साह नहीं हुए बल्कि दूसरों के ईर्ष्या-ह्रैष से उन्होंने प्रेरणा प्राप्त की और पूर्ण सहिष्णुता से साथ प्रतिभा का परिचय दिया। इन्हें परीक्षा में उच्चतम स्वान प्राप्त हुआ। उस करने में प्रमुक्त हो जातिबी रहती थी अकमान धीर हिन्दू महाजन। अकमान बीड़ों का अन्धधराय तथा लीकरी करता थे धीर महाजन लोम बुकान जारी करते थे। महाजनों में बालक मुत्त पहला व्यक्ति था जिसने उन्नु पारसी में यह योग्यता प्राप्त की। अपनी कक्षा में ही नहीं बल्कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मुत्तजी ने अपने हम गौरवमय स्वान को मुखिय रखता।

मुत्तजी के पिता पूरनमनजी एडिस्टेंट इन्स्पेक्टर के मुजर्न अपने पुत्र की प्रतिभा और काबलमना की प्रशंसा सुनकर हर्षातिरेक से प्रवृत्तित हो उठे। किसी पिता के लिए इसप्रकार पुत्र की प्रशंसा अभिमान का कारण होती है। वे घर आकर बालक मुत्त के भाबी-गिदरए की योजना बनाने लग। किन्तु बिपि का विधान कुछ धीर ही था। पूरनमनजी अस्वस्थ हो बस धीर एक साधारण चीन से १४ वर्ष की अवस्था में लहगा उनकी मृत्यु हो गई। इस समय बालक बाममुन्द की अवस्था केवल बीसह वर्ष की थी। वे पिता की दीनम-निनम छाया से बंचित हो गये। मुत्तजी के कुछ पितामह लाबा गोरबन दाम जी धान पुन के अनामविद निधन से ममहिद हो उठ। वे बुढावरणा में इनने बिपम बोध को नहीं संमान सक। पुत्र की मृत्यु के बाद एते दिन लामा गोरबन दाम जी का जीर्न धरीर टूट कर गिर पड़ा। बालक मुत्त को बीसह वर्ष की अवस्था में

ही पिता और पितामह के सीतल स्नेह से बंभित होना पड़ा ।'

पिता और पितामह की मृत्यु से गुप्तजी की उच्चशिक्षा की धामा पर पानी फिर गया । बौद्धिक विकास और साहित्य अध्ययन के स्वार्थ पर पैतृक व्यवसाय को संभालने की चिन्ता करनी पड़ी ।

गुप्त जी के पिता अपने भाइयों में सबसे बड़े थे और इन्हें भी व्यवसाय सम्बन्धी सभी हिमाय खाते को सम्भालनेकी आवश्यकता पड़ी । सेन-देग तथा बकाया बसुंसी की व्यवस्था का भार भी बालक गुप्त के ही कंधे पर आया । इस अपरिचित कार्य-भार से ये लड़के भी बिचलित नहीं हुए । बड़े उन्साह तथा उत्प्रेरणा के साथ इन्होंने परिवारिक आर्थिक व्यवस्था को व्यवस्थित होने से बचाया ।

परिस्थितियों से बिसह होकर इन्हें पिता की मृत्यु के बाद पाँच वर्ष का समय घर पर ही व्यतीत करना पड़ा । इस समय गुप्त जी ने पुर्णियाली के फरसी उर्दू के बादावरण से पूरा पूरा ज्ञान उठाया । इनके मुँह मुँसी बजीर मुहम्मद ली आदिम फ़ारिज उर्दू फ़ारसी के विख्यात विद्वान के । इनके सम्मान और सहयोग से गुप्त जी ने इन प्रापाधों का यत्नीर अध्ययन किया । इन पाँच वर्षों में इनके छोटे भाई व्यावसायिक कारीगरियों को अच्छी तरह समझने लगे थे । व्यवसाय सम्बन्धी साथ उत्तरदायित्व अपने छोटे भाई को सौंपकर जाना जंग के उद्देश्य से गुप्तजी दिल्ली आये । यहाँ गिल्सी हाई स्कूलके बौद्धिक हाउस में रहकर अपने अध्ययन साथ लोके समय में ही इन्होंने 'मिडिल' की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली । इस परीक्षा में उत्तीर्ण होने से प्रमाण स्वरूप एमिप्लेंट रजिस्ट्रार पंजाब युनिवर्सिटी के कार्यालय से इन्हें उर्दू में सिखा हुआ एक बार्ड मिला । इनका रोल नम्बर २८९० था । यह कार्ड २ जुलाई सन् १८८९ को मिला था । इससे यह प्रमाणित होता है कि २१ वर्ष की अवस्था में गुप्त जी ने मिडिल परीक्षा पास की थी । उस समय इस परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाना बड़े सम्मान और गौरव का विषय था । इस समय एक गुप्तजी ने उर्दू में लिखने का अच्छा ध्यास कर लिया था और इनकी गणना उर्दू के अच्छे लेखकों में होने लगी थी । मुँसी बजीर मुहम्मद ली के गणक ने गिना की मृत्युके अमसर पाँच वर्ष की अवधिमें इनको गिलानी पूरी तरह रोज बनी थी ।

इन बीच गुप्तजी की रोहताक जिला के मज्जर निवासी पं० बीनरवासु धर्माजी से मित्रता हो गई थी । धर्माजी उर्दू के लेखकों में प्रसिद्ध हो चुके थे । १८८५

में धर्मा जी बुद्धावन धाम पहुँचे और उन्होंने मयुरा से 'मयुरा अलवार' नामक मासिक पत्र निकाला। पं० दीनबमानुजी इस पत्र के सबसेसर्वा अर्थात् व्यवस्थापक सम्पादक तथा प्रकाशक सब कुछ थे। मूण्ट जी अपने नाम मुद्रिमाजी से ही 'मयुरा अलवार' में नियमित रूप से लिखकर परिचित दीनबमानु धर्मा जी सहायता करते थे।

सन् १८८१ ई० में मूण्ट जी के जीवन में नया मोड़ आया। वे धर्माजी के परामर्श से 'अलवारे बुनार' के सम्पादक बनकर बुनार गये। इस प्रकार सन् १८८१ ई० में प्रवेश किया। बुनार रहकर मूण्ट जी को अपनी प्रतिभा संपादनकला तथा भाषा की विकसित और परिष्कृत करने का स्वर्ण-सुयोग प्राप्त हुआ। स्वल्पकाल में ही 'अलवारे बुनार' संयुक्त प्राप्त का सर्वश्रेष्ठ मजबूत घोषित हुआ। मूण्ट जी की सम्पादन कला की द्वावि चारों ओर फैल गयी। व्यवस्थापक इनकी संपादन कला की निपुणता से इस प्रकार अभिभूत हुए कि 'मूण्ट जी को अपने अपने पत्रमें साने के लिए उनमें होड़-बी सब गयी। उस समय पं० दीनबमानुजी साहू के सन् १८८१ ई० का सम्पादन भार ग्रहण कर चुके थे।

पं० दीनबमानु धर्मा हिन्दू धर्म के प्रबल समर्थक थे। सनातन धर्म की रक्षा के अनिधाय से हिन्दुओं को संगठित करने के निम्ने सन् १८७७ में इन्होंने हरिद्वार में एक बृहत सभा आयोजित की। इन सभा में विभिन्न पक्षों के सम्पादक व्यवस्थापक तथा अन्य विख्यात व्यक्तित्व एकत्रित हुए थे। 'अलवारे बुनार' के सम्पादक बाल मुकुन्द मूण्ट जी इस सभा में सम्मिलित हुए थे। धर्माजी इन सभा के संयोजक थे तथा उनके प्रयत्न से 'भारत धर्म-महामण्डल' की स्थापना हुई।

साहू के मुँही हरसुल राय इस सम्मेलन में मूण्ट जी से मिलकर बृहत प्रभा कित हुए। उन्होंने प्रयत्न किया कि मूण्ट जी किसी प्रकार 'कोहिनूर' साप्ताहिक का सम्पादन कार्य स्वीकार कर लें। मूण्ट जी ने मूण्ट जी पर दबाव डालने के निम्ने पं० दीनबमानु धर्मा को विवश किया। धर्मा जी के अनुरोध को टालना मूण्ट जी के लिए असंभव प्रभाव था। परिणामस्वरूप मूण्ट जी ने 'कोहिनूर' का सम्पादक पत्र स्वीकार कर लिया। सन् १८८८ से सन् ८९ तक मूण्ट जी ने 'कोहिनूर' का सम्पादन किया। इनके सम्पादन काल में पत्र को आभासीन चरमता मिली। साप्ताहिक से यह पत्र सप्ताह में दो बार निकलने लगा कुछ समय के परवान ही मण्डाह में तीन बार निकलना आरम्भ हुआ। मूण्ट जी के

सम्पादन काम में ही यह पत्र दैनिक हो गया। इन तीन चार वर्षों के सम्पादन काम में गुप्तजी का व्यक्तिगत एक सुप्रसिद्ध सम्पादक और लेखक के रूपमें पूर्ण रूपसे विकसित हो चुका था। वे उर्दूमें यह भी पत्र समान कुशलताके साथ लिखते थे। उनकी रचनामें 'मुसवस्ता' नामक पत्रों में प्रकाशित होती थीं। 'मुसवस्ता' नामक पत्रों को मखनऊ के निसार हुसैन और कन्नौज के रहीम ओ इतर बेंचते थे प्रकाशित करते थे। वे मासिक पत्र पत्रावली होते थे। उर्दू की पत्र रचना में गुप्त जी उर्दू के हास्यरस के नामी छापर मिर्जा सितमखरीफ को अपना उस्ताद मानते थे। गुप्तजी का उरनाम 'घाब' था जिसका अर्थ आनन्द होता है। गुप्त जी आनन्दवादी थे।

'माछ-प्रवास' नामक उर्दू के मासिक पत्र से गुप्त जी का संबंध था। इस पत्र में सनाउन अर्ध सम्बन्धी लेख प्रकाशित होते थे। 'अबधपंच' में भी उनके लेख प्रकाशित होन रहते थे। गुप्त जी के निबन्ध बड़ी उत्सुकता से पढ़े जाते थे इनके पाठकों की संख्या बड़ी तीव्र पनि ने बढ़ रही थी। सन् १८८६ से लेकर ८९ तक तीन वर्षों तक गुप्त जी ने उर्दू पत्रों का सम्पादन किया। जिन पत्रों को इन्होंने स्पर्ध किया था वे इनकी सम्पादन कला की निपुणता तथा पढ़ी और पैनी शृङ्ख से कमक उठे थे।

हिन्दी पत्रकारिता की ओर

गुप्त जी का सम्बन्ध 'कालाकांकर' के दैनिक पत्र 'हिन्दीस्वान' से उसी समय स्थापित हो गया था जब वे 'अबधारे' जूनार का सम्पादन कार्य छोड़ कर जाने नाब 'गुड़ियानी' चले गये थे। इन्होंने १९-८७ को 'हिन्दीस्वान' कार्यालय 'कालाकांकर' के नाम एक पत्र लिखा था जिसमें उक्त पत्र की दैनिक प्रति आम पर गुप्त जी ने स्थानीय संवाद 'हिन्दीस्वान' में जेबने का बचन दिया था। इस प्रकार संवादवादा के रूपमें इन्होंने हिन्दी पत्रकारिताके क्षेत्र में प्रवेश किया।

हिन्दी के अल्पपत्र के विषय में ६४ १९०१ के 'भारतमित्र' में प्रकाशित 'हिन्दी की उम्र' की पूर्ण निबन्ध में इन्होंने लिखा है—“मैंने मित्रिम क्लाम में हिन्दी पत्रों की ओर हमारी हिन्दी-विद्या मित्रिम क्लाम तक पहुँचे में बूढ़ी हो जानी थी। जाने और रिताव नहीं कि पढ़ कर बिद्या पढ़ावे। उस समय तक हिन्दी मठ की मही स्थिति थी। बादू हरिश्चन्द्र की मृत्यु के प्राय दो वर्ष बाद गुप्त जी कियेव जग से हिन्दी की ओर ध्यान देने लगे। तेन गुप्त जी का

मागरी हिन्दी से सांस्कृतिक संबंध तो 'समाचल' तथा 'सूर सागर' के पाठ से बचपन से ही था।

सन् १८८९ के प्रारम्भ में मुम्बई में होने वाले भारत वर्ष महामंडल के द्वितीय अधिवेशन में मुन्त जी 'कोहेनूर' सम्पादक के रूप में तथा महामन्त्री पं० मदनमोहन मालवीय 'हिन्दोस्त्वान' सम्पादक के रूप में सम्मिलित हुए थे। 'हिन्दोस्त्वान' हिन्दी का प्रथम दैनिक पत्र था। व्याख्यानदायक पं० बीन इयारक हमी ने मुन्त जी को महामन्त्री से मिलवाया। मालवीय जी की सूझ बुद्धि ने 'मुन्त जी' की प्रतिभा तथा कार्य-क्षमता को समझा और वे अपने साथ उन्हें काराकाँकर लेते गये।

सन् १८८९ के अन्तिम दिनों में मुन्त जी 'हिन्दोस्त्वान' के सम्पादकीय विभाग में सम्मिलित हुए। यही से हिन्दी पत्रकारिता का अध्याय मुन्त जी के जीवन में जुड़ता है।

पुन्य मालवीयजी से सम्बद्ध होने के कारण इस पत्र को उस समय देश के सभी प्रतिष्ठित विद्वानोंका सहयोग प्राप्त था। भारतेन्दु के अनन्य भक्त पं० प्रताप मारायण मिश्र जी सम्पादक मंडल में थे। इसी समय 'ब्रजभाषा' और लड़ी बोली के प्रश्न को लेकर 'हिन्दोस्त्वान' में कुछवाद-विवाद चल रहा था। मुन्त जी ने भी इस विवाद में भाग लिया था। उन्हें कभी कभी नाम पर आपत्ति थी।

सम्पादक की जगह 'हिन्दोस्त्वान' में मालवीय जी का नाम क्षमता का धीर मिलने काय सम्पादकीय विभाग में वे थे सभी सहायक सम्पादक की श्रेणी में थे। मालवीय जी बकसल घरीला की तैयारी में लग गये इन्होंने पत्र से उन्होंने अवकाश ले लिया। इसके बाद राजा रामपाल सिंह न सम्पादक का पद अपने लिये सुरक्षित रखा तथा सहायक सम्पादक राजा साहू की सहायक समिती के रूप में नाम करने लगे। उस समिति के मतिया से बादू बालमुकुन्द मुन्त।

मुन्त जी स्वास्थ्य सुधारने की बुद्धि से सन् १८९१ में आरम्भ में कुछ समय के लिये घर चले गये थे। उन्हें जनवरी की अन्तिम तिथि तक बालाकाँकर जोट घाना था पर किसी कारणवश वे नहीं आये। राजा साहू मुन्त जी के स्वगत राजनैतिक विचारों से परिचित थे ही अतः पहली फरवरी सन् १८९१ ई० की उन्होंने यह आज्ञापन प्रचारित कर दिया—“मुन्त जी को आज आना चाहिये था। सो अगम निगम समय पर नहीं आये इन्होंने हमारे चले जाने पर (राजा साहू विचारन जा रहे थे) उनका केग जान योग्य न हवा कारण पचनमेंट के बिच्छू बहुत कड़ा मिलने है अतएव हम स्थान

के योग्य नहीं है।^१ इस आरोप के अनुसार गुप्तजी को उक्त पत्र से पूजक हुना पड़ा। यह प्रथम अवसर था जब एक स्वतंत्र विचारक तथा देशभक्त सम्पादक को किसी पत्र से हटना पड़ा था।

जब तक मामूलीयजी इस पत्र के सम्पादक थे तब तक राजनीतिक विषयों के प्रकाशन पर कोई प्रतिबन्ध नहीं था। उनके पत्र से पूजक होते ही नीति में सामूल परिवर्तन हुआ। जिस पत्र में मासवीयजी के सम्पादन-काल में पं० प्रतापनाथरण मिश्र का 'बैरछा स्वागत' जिसमें देश की तत्कालीन स्थिति का वास्तविक चित्रण है, प्रकाशित हुआ था उस पत्र की नीति सहसा परिवर्तित हो गई और गुप्तजी को उक्त पत्र से पूजक होना पड़ा।

हिन्दोस्थान से पूजक होने पर गुप्तजी का ध्यान अंग्रेजी के अध्ययन की ओर गया। अबतक के अनुभव से वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे थे कि उच्चकोटि के सम्पादक के किम्वदन्ती का ज्ञान आवश्यक है। उनके साथ गुड़ियानी में अंग्रेजी का ज्ञान प्राप्त करने की कोई व्यवस्था संभव नहीं थी अतः उन्होंने बाहरी मित्रों से सहायता ली। पं० श्रीधर पाठक पत्रों द्वारा अंग्रेजी कर्मों का उच्चारण तथा प्रयोग करके उन्हें भेजते थे। गुप्तजी ने महामना मासवीयजी से भी पत्र द्वारा सहायता के लिये अनुरोध किया था पर मासवीयजी उस समय बकालत की तैयारी में व्यस्त होने के कारण सहायक नहीं हो सके। पत्रों द्वारा अंग्रेजी-ज्ञान प्राप्त करने में सहायता मिले बालों में वे धीतिकाप्रसाद उपाध्याय तथा धर्मतन्त्राचार पत्रिका के सम्पादक बाबू मोतीलाल घोष के नाम उल्लेखनीय हैं।

पर पर रहते हुए गुप्तजी ने अंग्रेजी का ज्ञान प्राप्त किया था तथा उन्हें पत्रों के लिये पर्याप्त मात्रा में निबन्ध और कविताएँ मिली थीं। 'भारत प्रताप' का सम्पादन भी बर पर रहते हुए उन्होंने किया था। इन समय गुप्तजी के घर पर 'बगवानी' 'हिन्दी बगवानी' सखनरु से प्रकाशित उन्हें पत्र 'हिन्दुस्तानी' 'जन्मभूमि' और कथकता से सोम द्वारा प्रकाशित हिन्दी 'महामास्य' आदि पत्र पहुँचते थे और वे उन्हें ध्यानपूर्वक पढ़ते थे।

सन् १८७२ में हिन्दी बगवानी में 'महोत्सवदिनी' बगला उपन्यास का प्रकाशन आता' नामक हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हो रहा था। उस पत्रके व्यवस्थापक और संपादक श्री धर्मनाथ बख्शी से और वे ही अनुवादक भी थे। हिन्दी

१. गुप्तस्मारक ग्रन्थ—पृ० ३३.

२. श्रीधर पाठक के तीन पत्र तथा मासवीयजी का पत्र मन्त्रालयस्रोत गुप्त के पुस्तकालय में सुरक्षित है।

अनुवादकी भाषा होयनूरी तथा मूल भाषों से कटी हुई थी। इस लघु के साथ और भी दूसरी कवियों की और सम्पादक का ध्यान पुस्तकी ने पत्र लिखकर आह्वान किया। उक्त पत्र की वास्तविकता इस प्रकार थी— 'साहित्यकी मर्यादा विनाशने वाला यह कोण मनुष्य है जो 'मजेतमिनी' उपन्यास की मिट्टी बराल कर रहा है।' इसी विषय से सम्बद्ध एक दूसरा पत्र उन्होंने अपने मित्र पं० मुबनेस्वर मिश्र को भी लिखा जो हिन्दी बंगवासी में काम करते थे। इस दोनों की प्रतिनिध्या यह हुई कि हिन्दी बंगवासी में पुस्तकी को बुलाने के निवेद्यी अनुत्तमान बकवर्ती तथा पं० मुबनेस्वर मिश्र ने सम्मिलित प्रयास प्रारम्भ किया। कई महीनों के परस्पर पत्र-व्यवहार के पश्चात् सन् १८९३ ई० में पुस्तकी ने सहायक सम्पादक के रूप में कार्य प्रारम्भ किया। पाँच वर्षों तक इस कार्य को उन्होंने बड़ी कुशलता से संभाला। इस समय तक पुस्तकी ने हिन्दी पत्रकारिता में प्रतिष्ठि प्राप्त कर ली थी और एक कुशल सम्पादक के रूप में उनकी पहचान होने लगी थी।

इसी बीच पुस्तकी के अत्यन्त आदरणीय मित्र पं० दीनदयाल शर्मा के सनातनधर्म पर कृतकता में विद्वत्तापूर्ण भाषण हो रहे थे। धर्मात्री सनातनधर्म के प्रबल समर्थक तथा प्रभावशाली व्याख्याता थे। धार्मिक उत्साह में एक दिन पन्द्रह हजार रुपये की अच्छी रकम भी जम्मे में इकट्ठी की गई। इस धन राशि को लेकर 'बंगवासी' ने धर्मात्री की कटु आलोचना प्रारम्भ कर दी क्योंकि इस धन का उपयोग वह अपने अनुसूच करना चाहता था। पुस्तकी के मित्र पं० दीनदयाल शर्मा की निन्दा बमझ भी सदा 'हिन्दी बंगवासी' से समाविष्ट विरोध की भाषणा में उन्होंने अपना सम्बन्ध विच्छेद कर दिया। 'हिन्दोस्त्वान मे राष्ट्र प्रेम के कारण उन्हें पकड़ होना पड़ा था तथा 'हिन्दी बंगवासी' से मित्र के प्रति कर्तव्य तथा स्वाभिमान की रक्षा के लिये उन्होंने सम्बन्ध विच्छेदन कर लिया और धर्मात्री के साथ हो अपने साथ मुहिमानी बने गये।

कलकत्ते के पीछा में यहाँ के कुछ तथा गानितल्लय साहित्यकारों से पुस्तकीका अनिष्ट सम्बन्ध हो गया था। इनके व्यक्तित्व की गरिमा तथा पत्रकारिता की निपुणता से सभी प्रभावित थे। 'हिन्दी बंगवासी' से सम्बन्ध विच्छेद होने ही 'भारतमित्र' के तत्कालीन धार्मिक नाबू जयन्ताप शर्मा ने जो बड़े दूरदर्शी थे तथा जिन्होंने यह भी समझ लिया था कि पुस्तकी

सम्पादन से उनके पत्र की प्रतिष्ठा बढ़ जायगी इन्होंने अपने पत्र में जाने के लिये धार्मिक किया। वे किसी मूल्य पर अपने पत्र में गुप्तजी को लाना चाहते थे। इसीमें उन्होंने गुप्तजी से 'भारतमित्र' के संवाक्यका भार संभालने का अनुरोध किया। गुप्तजी ने जाने के पहले उन्होंने गुप्तजी से एक प्रकार वचन भी ले लिया था। गुप्तजी को घर पर रहते हुए अभी एक महीना भी नहीं बीता था कि कमकरी से जगन्नाथ दासजी का तार उन्हें २४ दिसम्बर १८९८ को मिला। तार इस प्रकार था कृपया १०वीं के पहले यहाँ निरवत रूप से पहुँचिये उत्तर दीजिये'। वचनबद्ध होने के कारण गुप्तजी इस तार की ज़ेम्मा नहीं कर सके। १० जनवरी सन् १८९९ को उन्होंने कमकरी के सिद्ध प्रस्ताव दिया। यहाँ पहुँचते ही उन्होंने प्राथमिक सिद्धाचार और व्यवस्था के बाद 'भारतमित्र' का सम्पादन अपने हाथ में लिया। १६ जनवरी सन् १८९९ की पहली प्रति गुप्तजी के द्वारा सम्पादित होकर प्रकाशित हुई। लगभग ८ आठ वर्षों तक निरन्तर इन्होंने भारतमित्र का सम्पादन किया।

गुप्तजी ने सन् १८८६ में उरु के श्रेष्ठ पत्र 'अकबारे' बुमार के सम्पादन से पत्रकारिता-जगत में प्रवेश किया था और इस बराबर श्रुतता का अन्त उस समय के हिन्दी के उत्कृष्ट दैनिक 'भारतमित्र' के सम्पादन तक चलता रहा। कमकरी के अस्वास्थ्यकर वातावरण तथा अत्यधिक मानसिक धम के कारण इनका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा था। इन्होंने निरन्तर आठ वर्षों तक पत्र की व्यवस्था तथा सम्पादन का भार संभाला तथा हिन्दी साहित्य को समृद्ध करने के लिये अत्यधिक प्रयत्न किया। धम की अधिकता के कारण सर्वप्रथम पावन शक्ति क्षीण हुई उसके बाद कष्ट तथा बीमारी के कारण गुप्तजी का हृत् पुष्ट शरीर तथा के लिये निर्बल तथा रोमरुम हो गया।

गुप्तजी के गिरल स्वास्थ्य का पता जब पं. शीतदयालु शर्मा को लगा तो उन्होंने शिमला में एक पत्र मिला जिसमें सर्माजी ने इन्होंने अपने स्वास्थ्य पर ध्यान देने की सलाह दी। इस पत्र के एक एक पक्ष पर ध्यान देने का भाव तथा महरी समवेचना व्यक्त होती है—'धम अग्राह्यनीयतया है इस बातसे जबाब नहीं मिला। धाम आगवो भगवान के ज्योत्स्न की बधाई देता हूँ। मर जीवन में मर ४५वीं जन्मात्मी है। सब गुण हैं केवल धाम आपके धर्म का ही दित है। उन्ही के दिय इस जगत् के उन्मत्त में उन्मत्त आपकी तन्मूर्तनी के दिय प्रापेता कर रहा हूँ। यह मार्ग ही महीना भगवान में प्रापता वास्ते

गिरिगिराव भीठ गया तो क्या वह हमारी न मुझे। इलाज में सुस्ती थीर
 अपरवाही न कीजिये। कंजुमी छोड़कर इलाज कीजिये ।

सर्माभी का उपर्युक्त पत्र पाकर गुप्तजी जलवायु परिवर्तन के लिये बसकता
 के पासही बैठनाच जाने की उद्यत हुए। गुप्तजी का स्वास्थ्य दिनोंदिन
 गिरता जा रहा था। इस समय की शारीरिक स्थिति का वर्णन स्वयं उन्होंने
 अपनी डायरी में इस प्रकार लिखा है। २ अगस्त सन् १९०७ मंगलवार
 राट पर पड़े-पड़े दिन जाता है भूल है न प्यास है न दस्त ही होता है। दिन
 भर पानी पड़ता रहा। तेज हवा चलती रही। किबाड़ बन्द रखन पड़ते हैं।
 न कुछ दृष्टता है न कुछ पचता है। आज बहुत दिन पीछे डायरी के हाथ
 लगाया। सबेरे तबियत खराब थी। दोपहर कुछ अच्छी।

२ सितम्बर सोमवार को जब बसनाच जाने की तैयारी हो रही थी। उस
 समय की शारीरिक अवस्था का वर्णन करते हुए वे लिखते हैं—“आज बैठनाच
 बावहवा बसलने को जान की तैयारी है। असबाब सामा और छेभी मियां
 बांध रखे हैं। सब लोगों को उनका कर्त्तव्य समझ दिया। बसा बहुत ही
 बोधी होने पर भी तबियत पर कुछ फुरती है।”

१ सितम्बर मंगलवार को वे बैठनाच पहुँचे। वहाँ स्टेशन पर पहुँचते ही
 चौकी बर्षा होने लगी। बड़े धम के साथ वे बर्मपासा तक पहुँच सके। पत्र
 सामा के जिन कम में उनके रहने की व्यवस्था हुई थी उसमें बैठनाच
 केदिया जाने वाले थे। बठिनाई के साथ वहाँ रहने की व्यवस्था हुई। उनकी
 डायरी के पृष्ठों को देखने से यह ज्ञात होता है कि डायरी लिखने का
 वायवम ६ सितम्बर तक ही चल सका था।

स्वास्थ्य साम के विचार स गुप्तजी एक महीने के लिये बैठनाच गये थे पर
 स्वास्थ्य सुधार में कोई लाभ होने न देखकर उन्होंने अपना घर मुड़ियानी जाने
 का विचार किया। उन्होंने बैठनाच में ११ १ ०७ की गवमक्रिणोर गुप्त वे
 नाम एक बार्ड लिखा जिसमें यह लिखा था—“जब दो बजे रात की
 तुम पढ़ बोवे मैं तयार ज्येष्ठार्म पर मिलूँगा। जहाँ तक बनेगा यही इन्तजाम
 रहेगा। कुछ माफ़ करूँ तो धन्य मिलेगा उत्तर पढ़ना। और क्या
 निर्गुं अमीम बालमुमुग्गुण्ण।”

१ दस्त मुकुन्द स्मारक पू० १७२
 २ ०१
 ३ .. पू० १७३
 १७५

निश्चित कार्यक्रम के अनुसार बाबू नवलकिशोरजी रात को दो बजे बैरनाथ स्टेशन पर पहुँचे। दिल्ली जाने के अभिप्राय से गुप्तजी स्टेशन पर माड़ी की रोजीवाकर रहे थे।

जमाना के सम्पादक तथा गुप्तजी के स्नेहभाज्य भुषी दत्तानाथवरणजी नियम कानपुर स्टेशन पर पूर्व सूचना के अनुसार उनसे मिलने के लिये उपस्थित थे। नियमजी अपने साथ प्रेमचन्दजी को भी साथ लाये थे। गुप्तजी अपने बलिष्ठ मित्र नियम से मिलकर उस कमराकम्पा में बहुत प्रसन्न हुए। आरम्भ में 'सिधसगम्' के चिट्ठे की गुप्त रखने की आवश्यकता भी इसलिये सर्वप्रथम नियमजी द्वारा सम्पादित पत्र 'जमाना' में इसका प्रकाशन हुआ था। यह दो साहित्यिक मित्रों की अन्तिम भेंट थी। उस वृत्त्य की मार्मिकता का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। इस भेंट का विवरण निगमजी ने अपने संस्मरण में इस प्रकार लिखा है— 'मिलते समय जो रसा रसने में आई, उसकी कभी कल्पना भी न की जा सकती थी। लताहार बीमारी ने उन्हें इस अवस्था को पहुँचा दिया था। उस समय किसी बात का कि यह अन्तिम भेंट है, और दूर-मृत्यु सोचते समय कानपुर में अधिक दिनों तक निवास करने का वचन पुरा न होने देनी। वह हासिक उन्माह की उम्र में और वास्तविक प्रेम कभी विस्मृत नहीं किया जा सकते।' नियमजी की अभीष्टता और निराशा देखकर गुप्तजी ने कहा था— 'मेरा हाँचा देन तो सदैव अच्छा हुआ तो फिर मिलने। अब हम समय तो उठा भी नहीं जाता नहीं तो दो दो तीन दिन का अवकाश ही ठहरते।'।

गुप्तजी दिल्ली पहुँचने के बाद अपने साथ गुडिबानी आता चाहते थे पर समुदायवालों के आग्रह पर हकीम साहब से इलाज कराने के लिये दिल्ली में ही नाभा लक्ष्मीनारायण की परमेश्वरता में ठहर गये। औषध और उपचार से कोई लाभ नहीं हुआ। अन्तिम समय में गुप्तजी के मजले आई तथा उनका योग्य पुत्र उनके समीप थे। मृत्यु के दिन पं० शिवबल्लभ शर्मा भी बड़ा पहुँच गये थे। १८ नवम्बर सन् १९०७ के रात्रि समय ५ बजे गुप्तजी का स्वर्गवास हुआ। मृत्यु की सूचना पं० शर्मा ने 'भारतमित्र' के महाशय गणेशदास को पत्र द्वारा इन शब्दों में दी थी — "मैंने पहुँचने पर उनका अन्तकरण गुप्त ही गया कारण सूँझ रहा जोड़े। कम जारी अवस्था की और यही गुप्त की प्रम में दो बार बड़े आने हाथ मेरे गये

में डाले। ताकत गुप्तार न थी एक टो बड़े को कहना था कहा। मगावस पीने का बरत वा बही पिसाया गया। मैं १२ बजे उनके पास आया और पाँच बजे उन्होंने हमेशा के लिये हमसे सम्पर्क हासिल की। रंज का अन्त नहीं है। मेरा कूबज बाजू टूट गया। ज्यादा मैं इस बदन कुछ नहीं निभ सकता।^१

मुत्तजी की अमार्मिक मृत्यु के समाचार से 'भारतमित्र' परिवार के छोटे-बड़े सभी सदस्य शोकविह्वल हो उठे। इस परिवार न मामिक पीड़ा से आधिन अपने उद्गारों को २१ सितम्बर सन् १९०० की प्रातः भारतमित्र का काला बोर्डर देकर इन सबों में अभिव्यक्त किया।

“बृहस्पतिवार ता १७ सितम्बर को इस बजे एकाएक किसी से मुत्तजी के निधन का समाचार मिला—शोक है कम अन्ध्या के ५ बजे बाबू बाममुकुन्द की मृत्यु हो गई। इस तार की पढ़कर हमलोग अवाह हो पडे। क्या उन्हें ! जिन्होंने हिन्दी 'बंगवासी छोड़ने के बाद भारत मित्र को बलाकर अपनी ओजस्विनी केतकीके प्रभाव से हिन्दी समाचार पत्रों में सर्वोच्च मानन का अधिकारी बना दिया जिसकी आठम्बर-रक्षित सरस और मधुर भाषा पर हिन्दी के पाठक मुग्ध थे जिसके फलस्वरूप हुए मेलों ने देश समाज और भाषा का बहुत कुछ उपकार और सुधार किया अमरिगुन हिन्दी पाठक पैदा किये जिसकी हँसी से भरी हुई छापें और कबितायें पढ़कर लोम लोट पोड हो जाते थे जिसके उर्दू केन्द्र अपने साप्ताहिक पत्रों में छाप कर बन्ध होने के लिये उर्दू के बड़े नायक ग़दिर सरसते और तफ़्ती पर तफ़्ती से जते थे जो तीव्र और व्यस्य गरी मानोचना निभने में सिद्धास्त न जिसको करी बहने में निमी की परवाह न थी जो साहित्य सेवा सर्वसेवा और देश सेवा को ही मुख्य कर्तव्य समझते थे जिन्होंने अपनी अवस्था का अधिकोश इन्हीं कामों में बिताया और प्रविष्ट में निभने बड़ी आपा भी जान बही हिन्दी और उर्दू भाषा के मुकवि मुनेजक और ममानोचक बाबू बाममुकुन्द मुत्त बरस ४२ लाभ की अवस्था में इस असार संसार को छोड़ गए। हिन्दी साहित्य कपी बन में सिद्ध की तच्छ विचरणा करने वाला पुरप अपना गस्वर बाघोर त्याग कर पश्चात्त्या में सीन होमया। मुत्तजी की जीवनी में बहुत कुछ गुणनै समझने और नीगने की बातें हैं। उनकी हास्यमयी मूर्ति आँनों के लामने नाच रही है। उनकी मुग्गाबनी

और उनका स्वभाव याद करके हृदय अभीर हो रहा है और सेज्जी का आने बड़ने नहीं देता ।

मुत्तजी के स्वभाव आत्मसम्मान के भाव तथा उनके ससक्त बहुमुखी व्यक्तित्व का बहुत ही जीवित चित्र उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट उभर आता है । इस सर्व सम्मानित पत्रकार के निबन्ध पर अन्य भाषा के पत्रों ने भी उन्मुक्त होकर उनके गुणों को स्मरण किया तथा उस मृतात्मा के प्रति संवेदनायें प्रकट की थीं ।

स्टुडमैन ने मुत्तजी को इस प्रकार स्मरण किया था—'मुत्तजी बड़े अनुभवशील और सुयोग्य लेखक थे । गत बीस वर्ष से पत्र-सम्पादन कार्य करते थे । हिन्दी भाषा की उन्नति के सम्बन्ध में उनकी चेष्टायें बहुत कुछ सफल हुई हैं ।

बंबसा के पत्र 'द्विचक्षाही' ने निम्नलिखित रूपमें अपनी व्यक्तित्व समर्पित की थी—'गुप्त महाशय हिन्दी और उर्दू भाषा के सुकवि सुसंस्कृत और सुममासोचक थे । उनके समान सुवक्ता सम्पादन हिन्दी संसार में नितान्त दुर्लभ है । उनकी चेष्टा से 'भारतमित्र' की अमाननीय उन्नति हुई है । 'भारतमित्र' में उनकी मधुर-हास्य-रसपूर्ण कविता तीव्र व्यंग्यपूर्ण रचना अथवा कठोर समालोचना और गाम्भीर्यपूर्ण ओजस्विनी प्रबन्धावली पढ़कर हमने विरोधी पक्ष को भी मुक्त कंठ से प्रशंसा करनी पड़ती थी । स्वदेश के प्रति उनकी प्रीति असाधारण थी । स्वदेशी आन्दोलन के वे बड़े पक्षपाती थे । स्वदेश और हिन्दी-साहित्य की सेवा में उन्होंने अपिबोध समय व्यतीत किया है । उनकी चेष्टा ने हिन्दी परिपुष्ट और परिष्कृत हुई और हिन्दी साहित्य के प्रति बहुत सोची का अनुराग बढ़ा है । विनय प्रेम सत्यनिष्ठा तेजस्विता प्रभृति गुणों का वे विभूषित थे ।

इसी प्रकार अन्य पत्रों तथा पूज्य महामना मानवीयजी जैसे नेताओं ने बड़े सम्मान के साथ मुत्तजी की स्मरण किया था । वे अपने समय में हिन्दी के दीर्घस्थ पत्रकार और उस भावशील स्वरूप प्रदान करने वाले थे । वपानीय बय भी अग्रायु में ही उनकी मृत्यु हो गई, फिर भी हिन्दी भाषा का उन मंत्रीवनी शक्ति से विभूषित कर दिया जो सदा केवल हिन्दी भाषियों के लिए ही नहीं बल्कि समस्त भारत का विराजमान प्रेरणा का साधन बनी रहेगी । मुत्तजी का हृत्किन्व उनके मध्य पार्श्व की धारकता रखने के लिए पयोग्य है । हिन्दी के जिस सुयोग्य विरले को उन्होंने धन्य वन्दन से सीखा है वह बात हम में निरंतर पुनित और विचलित होता रहेगा ।

वालमुकुन्द गुप्त की राष्ट्रीय भावना

श्री मुनीश्वर झा

उन्नीसवीं सदी का अन्तिम चरण भारतीय राष्ट्रीयता के निर्माण का महत्वपूर्ण काल है। उस युग में देश के कोने कोने से राष्ट्रीय जागरण की लहर उत्थित होती थी। राष्ट्रीयता के अमर उपासक और स्वतन्त्रता के सेनानी के रूप में बाराभाई गौरीजी बालगंगाधर तिलक साक्षात् जाग्रत रूप में सुप्रेम नायक बन जाते जैसे लोकनायक भारत की स्वतन्त्रता का निमायेपण कर रहे थे। रामकृष्ण परमहंस विवेकानन्द पण्डित देबेन्द्रनाथ जैसे मनीषी अपनी अमृतवाणियों से जनजागरण का पात्र कर रहे थे।

राष्ट्रपति की कोई हुई कुण्डलिनी जाग उठी थी। पराधीनता से मुक्ति पाने के लिये समस्त राष्ट्र संघर्षोद्यत हो उठा था। कमकला बम्बई और लाहौर तीन नगर उस युग में राष्ट्रीय संघर्षता के तीर्थ बन गये थे। इनमें कमकला का महत्व सर्वाधिक था। वही तत्कालीन राजनीतिक यज्ञ का पीठस्थान हो गया था। प्राचीन काल में ही भारत का पूर्वाञ्चल ज्ञानि के नियंत्रित रहा था और उस युग में इसका केन्द्र कमकला था।

साहित्य युग का प्रतिनिधित्व करता है स्वान नाम और परिस्थिति के आवेदन-निमित्तों से ही साहित्य की उदात्तता आती जाती है।¹ उन्नीसवीं सदी के भारतीय जागरण की प्रतिनिधियों में कमकला का जो महत्व था वह बाराभाई और प्रयाग का नहीं। बाराभाई में भारतेन्दु का उदय हुआ था और उसने समय का लाभ दिया था। उसके चलने हिन्दी जगत् में नयी चेतना आई थी। प्रयाग में भी त्रिवेणीजी म आग बसकर भाव और भाषा के मर्मार्जन क्रिय। किन्तु बालमुकुन्द गुप्त ने अपनी साहित्यिक

¹ इंग्लिश सैन—ला रिजोउपी ट लार पृ ३४

भाषणा से हिन्दी जगत् में जिस सन्धिय और सप्राण राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति की वह बसकरो में ही संभव थी। इस महानगर के सामयिक महत्त्व का उचित मूल्यांकन न होने से राष्ट्रीयता के प्रहरी गुप्तजी का मोरम अभी तक उपेक्षित रहा है।

इसका विषय है कि बालमुकुन्द गुप्त स्मारकसम्वत् को प्रकाशित कर भी बनारसी चतुर्वेदी और श्री भाबरमस्तन समी दो विद्वान् सम्पादकों ने इस दिशा में योगदान दिया है। इन दोनों का प्रयास स्तुत्य है किन्तु इस धुमानुष्ठान में अभी और निरूपण की आवश्यकता है। इन्हीं के सन्धों में हिन्दी के उस प्रणम्य पुजारी देशभक्त सम्पादक आद्य संस्कृति के समर्थक एवं श्रेष्ठ समालोचक गुप्तजी के प्रति अपनी अपनी बड़ा अर्पणिया अर्पित करने का कर्तव्य और अधिकार तो हिन्दीसाहित्य के सभी व्यासकों का है।

वस्तुतः बालमुकुन्द गुप्तजी का व्यक्तित्व हिन्दी-साहित्य के लिये वरदान स्वल्प है। भारतेन्दु और द्विवेदी युग की सन्धिवेला में जबतीर्ष इस आशोक का मूल्यांकन बिठना हुआ है पयोष्य नहीं है। क्योंकि इसने तो भारत और भारती दोनों को समान रूप से ज्योतिष किया है।

यदि भारतेन्दु हिन्दी यमन के पूर्वोक्त थे तो बालमुकुन्द भारत और भारती के मित्र। दोनों आशोक पुरुष थे। दोनों एक ही परम्परा में जाये थे किन्तु दोनों की भूमिका भिन्न थी दोनों के रूप भिन्न थे। दोनों ही प्रसिद्धी शान्त की दुर्भिक्ष के विरोधी थे। किन्तु एक में शीम का दूसरे में आशोक एक में कवि की भावुकता थी दूसरे में सैनिक की कर्मठता। दोनों का अपना-अपना महत्त्व है। दोनों हमारे राष्ट्रीय मन्त्रागारण के अमर पायक थे और राष्ट्र निर्माण में दोनों ने अपनी रीति से अर्थ बढ़ाया था।

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध तथा आगे आगे अंग्रेजी सत्ता मुद्दूह हो चुकी थी। भारत की एभ्युता और संस्कृति के लिए सङ्घर्ष समय आ गया था। भारतीय जीवन की प्रगति के लिए और उसके सामाजिक राजनीतिक तथा आर्थिक विकास के लिए अंग्रेजी शासकों को चिन्ता न थी। उन्हें तो शोषण के लिए राज्य की स्थापना थी थी। जीक की तरह वे भारतीय रक्त पीकर मारते जा रहे थे। अपमानित अक्षेत्रित असहाय जनता मूक थी।

जनता की मुक्तबागी को भारतेन्दु ने सर्वप्रथम अपनी सेनानी द्वारा लिखित करने का पथ लिया था। समकालीन दुर्घन्यव्यवस्थाओं को साहित्य में बहिष्कृत कर के तथा स्वर नाथ से और उन्होंने जनचेतना को जाग्रत किया था। भारतेन्दु के इस महान् आदर्श को लेकर पं० प्रतापनारायण मिश्र बालकृष्ण भट्ट राधाचरण बोस्वामी जैसे अनेक सेनानी उनके भंडे के नीचे साथ साथ बढ़ते दिखाई दिए थे। भारतीय वाक्परायण का अन्वयण उन्होंने किया था। विदेशी शासन की धरोहरों के बीच विकास की और उनकी समन नीति की निन्दा उन्होंने की थी। द्रोणित और पीड़ित जनता को देशप्रेम के मूत्र में उन्होंने पिलोया था।

भारतेन्दु के असमय जन्म हो जाने पर उस ज्योति को अक्षुण्ण बनाए रखने में बालमुकुन्दजी अतिथीय थे। अपने समय में वे राष्ट्रीय भावना और नव मोहात्मिक चेतना के कर्मचार बन गए। "बाल मुकुन्दजी का स्मरण करते ही वे सब पूर्वज स्मृति लिखित पर आ जाते हैं जिसके कारण हम अपने स्वल्प को पहचान सके हैं। व्याख्यान-वाचस्पति भारतवर्ष-केशरी पंडित होमरदासु धर्मो महाप्राण पंडित मदनमोहन मासवीय पंडित प्रतापनाथमल मिश्र पंडित जगन्नाथ चक्रवर्ती श्री मोती लाल घोष पंडित महावीर प्रसाद द्विवेदी पंडित श्रीधर पाठक आदि अनेक पूर्वजों का स्मरण बालमुकुन्दजी मृत्पुत्र स्मरण के साथ ही हो जाता है। वे सब महानुभाव उनके सहयोगी सहकर्मी और समानधमा थे। बाबू बालमुकुन्दजी भारतवर्ष में हमारी भाषाके निर्माता हमारे भाषा के सम्पादक एवं हमारे सत्य के निर्देशक थे। आज हम जो कुछ हैं वह इन्हीं पूर्वजों के परिश्रम के फलस्वरूप है। जिस समय हमारे देश में स्वतंत्रता थी जिस समय हमारी बांगी मूक थी जिस समय हमारे हृदय स्वप्न हीन थे उस समय इन अग्रजव्यक्तियों ने एक संलग्नता की ओर उन व्यक्ति से हमारा वह भारतीय आकाश प्रकम्पित हुआ। उस वायु तरंग का आन्धोमित करने वालों में बाबू बालमुकुन्दजी मृत्पुत्र का विशेष स्थान था।"

बालमुकुन्दजी बड़े निर्भीक थे। आपत्तुमी उन्हें पर्यट न थी। महान् उद्देश्य ही उनके लिए जीवन था। देश वासियों में देशप्रियता की भावना उद्दीप्त करना वे चाहते थे। जन वस्थागत उनका ध्यान था। अपने विचारों की स्वाधीनताक निष्ठा उन्हें "वाक्पाकीकर" के पत्र 'हिन्दोन्मत्त' के सम्पादकीय विभाग में "व्युत्त"

१ पं० बालमुकुन्दजी सभी 'महीन'—वे जिन्होंने प्रकाश पाया था।

ना पड़ा क्योंकि वे 'गवर्नमेंट' के बिना बहुत बड़ा सेवा मिलते थे। किन्तु वे पने आदर्श से विचलित नहीं हुए। उनके लिए साहित्य-साधना अत्याचार। अत्याचार के बिना मानवता की बाणी थी। 'कॉन्कर' को छोड़कर वे सफ़ा चले आये। कमकस ने उन्हें काबू बना दिया और उसकी शक्ति हिन्दी जगत् में निहाल हो गई। पूर्वाञ्चल में हिन्दी जगत् का सूर्य उदित हो और अपने प्रथम अलोक से ही उसने नव आभरण ला दिया।

रबपूर्ण राष्ट्रीय संस्था काँग्रेस की स्थापना के साथ ही गुप्तजी की साहित्य साधना शुरू हुई थी और उनकी बाणी युग को बाणी थी। पश्चिमोत्तर प्रदेश के छोटे साठ कालविन ने उस समय काँग्रेस के प्रति अपना विरोध मान्य कर दिया था और 'जी-हुजुरी' में सर सीयद अहमद खाँ ने उस विरोध में पत्र लिखा था। वही सीयद जिसने कभी लेखन से दूर रहना था 'हिन्दू मुसलमानों' में एक ही जल से बहता हूँ। क्या अच्छा होता जो मेरे एक ही जल की बिसल में उन लोगों को सदा एक ही जल से रंजित करता? पठनका स्थापना हो गया था। उसी सीयद ने हिन्दुओं की गामियाँ एक दे दी थी। वेस बात गुप्तजी का हृदय विजुम्ब हो उठा और उन्हास 'सर सीयद का बड़ापा' तिर्यक एक लम्बी कविता निकी। प्रत्यक्षी नोकरशाही के विनाश की अनहम की ओर उन्होंने धाड़े हाथ लिया और उसकी बड़ी मर्तना की। उदाहरणार्थ 'संस्कृत' प्रस्तुत की जा सकती है —

बहुत या बड़े बड़े बाबा बसिग भीत बुझाती है
छोड़ सोच भीत से मिलो जो सबका सोच मिटाती है।
नोर भी कहती है रहते हमको किस लिए मुसामे हो
धों भीने पर मरने हो क्या लोहे का मिर लाये हो ?
बहुत नाम पाया बाबाजी अब तुम इनका काम करो
जो कुछ नाम कमा शाना है उसकी मर बदनाम करो ॥

और कुछ जाने —

बहुत दिन गए बचपुता देने आँसू टपटप गिरने से
नैन गुम्हारे धीन हीन लोगों में कभी न फिरते थे।
जहाँ बाटूकारी की गाने बाटूकार तुम बनते हो
जाने हाथ स्वतन्त्रता को रखके आज ही बनते हो

मरने बड़े नीचे हैं पर प्रहार अर्थकर है।

देश में दुःख हैय व्याप्त था। मुफ्तजी की चिन्ता सभी भी किस प्रकार मारत को गरीबों भिड़ जाय। आर्थिक दासता और वैयर्थ्य को व्यर्थपूर्ण भाषा में नहीं उन्होंने यों व्यक्त किया —

हे बनियो ! क्या धीम जनों की नहीं सुनते हो हाहाकार !
 जिसका मरें पड़ोसी मुझा उसने भोजन को बिनकार !
 मुझा की मुझ उनके भी म कहिए किस पक्ष में जाने,
 जिसका पेट पिटा भोजन से ठीक नाकलक भर जावे ।

X

X

X,

काम सर्व की ही कुपकारे नुबे भयानक बलही ह
 घरती की सारों परतें जिसमें आवा ही बसती है ।
 सभी लुके मेशनों में बहु बटिम किसानी करते हैं
 नये तन बाधन बननारी पिटा पाना करते हैं ।
 जिस बबसर पर अभीर सारे लहपाने सज्जते हैं
 छोटे बड़े लाट साहब धिमने में बिन उड़ते हैं ।
 उस बबसर में मरलप कर दुनिया बनान उपजाते हैं
 हाथ बिभाता उसका भी मुलुख नहीं जाने पाते हैं ।
 जन के दूत उस पलों से ही उठना से जाते हैं
 जहा बिबारे दुल के मारे निमदिन पचपच परें किसान
 जब बनाज उत्पन्न होय तब सब उठना से जाव सपान ।

दक्षिण अंग्रेजों की अमान भोगि आदि के प्रति अपने अस्तित्व का मुफ्तजी ने
 बितनी लड़ाई से व्यक्त किया है। सच्ची प्रगतिशीलता मुफ्तजीवन के साथ
 सचिव सम्पर्क स्थापित करने में और जनता के समय पीड़ा और बेरमा के
 प्रति सहानुभूति रखकर प्रगति के लिए आह्वान में होती है। प्रगतिशीलता
 जनकल्याण लेकर होती है। हमारे मुफ्तजी सच्चे अर्थ में प्रगतिशील थे।
 उनका भिए सवार उपर मानुष साथ की बात थी। इसलिए उनकी वाली राष्ट्रीय
 उत्थान की स्थायी सम्पत्ति है। 'बहु बलिता मुफ्तजी के राष्ट्रीय बिभागों का
 दर्पण कही जा सकती है। बहु एक बलिता ही देश और देशवासियों के प्रति
 मुफ्तजी के हृदय की अनुभूति की गार्धी के लिए पर्याप्त है। उसमें नाट्यकार
 देशप्रेमियों की विषकार और हृदयहीन धनिकों को अपने गरीब देश भाइयों
 के प्रति उपेक्षाभाव के लिए खुली पत्रकार बताई गई है २

उनकी यह जनजागी कहीं दपटी नहीं दिखाई पड़ती। समस्त रचनाओं में अप्रतिम बेप म प्रकाशित होती है। यही तक कि देव-देवियों के स्तुतिस्तोत्रादि में भी हीन पुनियों के प्रति उनकी समवेदना का भाव बिद्यमान है। कुछ पंक्तियाँ सीधिए —

का हे जगती पूजा करे तुम्हार ।
 पैठरुके निस्तारि है हा हा कार ।
 उबर भरन हित अन्न रह्यो घरमाह जो ।
 शान्त इस मा माय काइ मुखरि नयो ॥
 भेंट परे जो माय कहा हम पास है ।
 कबल आनिम जल अन्न भस्मी लसि है ॥^१

इस हा हा कार में नैराश्रय भाव नहीं है। आश्रय है। विद्रोह की भावना है। रागों में प्राण फूँक देने की क्षमता है। भावुक हृदय को झकझोर कर कर्मक्षेत्र में दूब पड़ने की प्रेरणा प्राप्त होती है।

१८८९ से १८९९ तक 'हिन्दोस्तान' और 'हिन्दी बंगलासी' के अपने सम्पादन काल में युष्टजी ने जो कुछ लिखा उसमें एचि का तेज अवलम्ब था, किन्तु उसमें केवल उपकासीन उष्णता थी। १८९९ में जब उन्होंने "भारतमित्र" का सम्पादकीय पत्र चलाया किया तब भारतीय जनजागरण के यमन म बालागल सम्पादक का मार्तण्ड बन गया। भारतमित्र के सम्पादक युष्टजी ने स्वतंत्रता संघाम में युगान्तर ला दिया। वे तत्कालीन उप राजनीति के पीछे बन गए थे। वे निर्भीक थे ही तब और निर्भीक हो गए। उनकी कैबरी निर्भीक होकर चलने लगी।

कागी चन्द्र नमरी की गोमा तब लुट गई थी। कमरुते में भारतीय राजनीति के विभिन्न घर मूर्त की तरह अक्षतीर्ण होकर गन्तबी ने भारतेन्दु के आलोचकों को अपने प्रथम प्रकाश पुष्प के रूप में विकीर्ण किया जिससे वे "भारत" और "भारती" दोनों के मित्र बन गए। कमरुते का भारतमित्र सम्पूर्ण हिन्दी नमाल के आगे का उत्पन्न बन गया। उस पत्र द्वारा युष्टजी ने राष्ट्रीय उत्थान में सर्वतोभावेन योग दिया। अहंकार होंग और घुमायी के पक्षों पर उनका केन शीघ्र उपा करने। जिन दिशा में उन्होंने लिया उनमें एक नवीन जीवन और नई स्फूर्ति लायिका होती थी। उनके लेखों से राष्ट्रीयता की

६ अमरनी हीरक कविता हिन्दी बंगलासी, २३ सित १८९५

७ पत्रकार पुस्तक युष्टजी-पंक्ति श्रीरामजी शर्मा बालमुकुन्द १ भा० पृ० ५० पृ० १९०

प्रचण्ड महार फैल गई जिससे साम्राज्यवाद का हृदय काँप उठा। स्वतंत्रता संग्राम के सुप्रीमो अण्डों में धाले बहने की प्रेरणा हिन्दी-जगत को उनसे मिलने लगी और वे हिन्दी जगत के सोवनायक बन गए।

उस समय संयम का विरोध चल रहा था। जनता में घोर असन्तोष हो गया था। स्वतंत्रता के सेनानियों पर पुलिसकी काठियाँ बरस रही थी। किन्तु सेनानी अपने अधिकारों के लिए सीमा छाने लगे थे। 'बन्दे मातरम्' का राष्ट्रीय गीत गूँज रहा था। देशप्रेमी नेता एक एक कर जेल जा रहे थे। गुप्तजी के सम्बंधों में सुरेन्द्रनाथ ने बङ्गाल की जेल का दौरा किया तो बम्बई की जेल का मान बढ़ाया था। यद्यन्तः और जवाबदे ने लाहौर की जेल की बही पद प्रदान किया। लाहौरी जेल की भूमि पवित्र हुई। उसकी भूख देश के शुभचिन्तकों की आँखों का अध्ययन हुई। जिन्हें इस देश पर प्रेम है, वह इन दो युवकों की स्वाधीनता और साधुता पर अविमान कर सकते हैं।^५

गुप्तजी के देश प्रेम की पवित्र मन्त्रालिनी वहाँ देखने को मिलती है। भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम के लिए उन्होंने जेल को हीर्ष माना, "जेल में कृष्ण ने जन्म लिया था भारतीयों को जेल माता के लिए आमन्त्रित करते हुए उन्होंने जो कुछ कहा वह हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन के यन्त्रामुख्य की आज्ञा है।

"जा जेल और-कर्मों दुष्ट हत्यारों के लिये है जब उसमें सज्जन-साधु मिश्रित स्वदेश और स्वाधीनता के शुभचिन्तकों के चरण-स्पर्श हों तो समझना चाहिए कि उस स्थान के दिन फिरे। ईश्वर की उस पर क्या दृष्टि हुई। साधुओं पर सज्जुत पढ़ने से शुभदिन आते हैं। हमसब सब भारतवासी धोक सन्तान मूलकर प्रार्थना के लिये हाथ उठावे कि धीरे-धीरे दिन आवे कि जब एक भी भारतवासी जोरी बर्तनी दुष्टता, व्यवहार, हत्या मृत-सन्तान, जान आदि दोषों के लिये जेल में न जाए। जाय तो ऐसा और जाति की प्रीति और शुभचिन्ता के लिये। दीनों और पद-वर्धित निर्बलों को सबलों के अत्याचार से बचाने के लिये हारियों को उनकी भूमों और हारिक दुष्टता से नाशवान करने के लिये और सरकार को सुभक्षण देने के लिये। यदि हमारे राजा और घामक हमारे सत्य और स्पष्ट भाषण और हृदय की स्वच्छता को भी दोष समझे और हमें उनक लिये जेल में तो बीसी जेल हमें ईश्वरकी इया ममभार स्वीकार करना चाहिये और जिन हज्जतियों से

हमारे निर्यौय देश-जान्चकों के हाथ बगैँ उन्हें हेममय मामूपण समझना चाहिये । इसी प्रकार यदि ईश्वर में इतना सक्ति न हो कि वह हमारे राजा और शासकों को हमारे अनुकूल कर सके और उन्हें उदारचित्त और स्वाश्रय बना सके तो इतना अवश्य करे कि हमें सब प्रकार के दोषों से बचाकर श्वाय के भिये जेस काटने की क्षमि दे जिससे हम समझें कि भारत हमारा ॥ और हम भारतके । इस देश के विना हमारा कही ठिकाना नहीं । रहें इसी देश में जाहे जेल में जाहे घर में । जब तक जिये जिये और प्राण निकल जायें तो यही की पवित्र मिट्टी में मिल जायें ।^९

साई कर्जग की कामी करतूतों को जनता के सामने रखने के लिए मुन्तबी ने बहुत से लेख लिखे और अनेक कविताएँ लिखी । साई कर्जग के नाम सिव मन्मु के चिट्ठे तो राजनीतिक व्यंग साहित्य के अनमोद रत्न हैं और मुन्तबी के निर्भीक व्यक्तित्व के मूर्तिमान प्रतीक हैं । चिट्ठों की भाषा सीधी पर चुनती सी है । व्यंग्य बाणों से उन्होंने विदेशी शासन की दुर्नीति झूठा और कर्जगी की अनाकूल किया । सिवमन्मु के आठ चिट्ठों का महत्व स्वतंत्रता प्राप्ति आन्दोलन में विनिष्ट है । उनमें गुप्तबी ने साई कर्जगके भारत विरोधी कार्यों को एक एक करके गिनाया और देशवासियों में देश भक्ति और राष्ट्र प्रेम की भावना भरकर उन्हें आत्म बलिदान के लिए प्रस्तुत किया ।

सिव मन्मु भगिनी हैं किन्तु सत प्रतिभान भारतीम हैं । भारत का कल्याण ही उमे काम्य है । वह कर्जग से कहता है —

‘साई साई ! आपने कछाड़ के नाम वाले माहों की बाबत साफ़ कहा था कि वह सोय बड़ा नित्य हैं और हम सोय कुछ दिनों के भिये आपके वह “कुछ दिन” बीत गये । जबकि पूरी हो गई । अब यदि कुछ दिन और मिलें तो वह निमी पुराने पुष्प के बग न समझिये । छम्ही की भाषा पर सिव मन्मु राजा यह बिट्ठा आपने नाम भेज रहा है जिसमे इन प्राणे दिनों में तो एक बार आपको अपने कर्मण्य का लयाम हो ।

जिम पर पर आप साफ़ हुण, वह आपका भीन्नी नहीं—जकी नाब संयोन की मानि है । आने भी कुछ आता नहीं कि इन बार छोड़ने के बाद आपका इनने कुछ सम्भव रहे । किन्तु जिनने दिन आपके हाथ में पति है उतने दिन कुछ करन की मानि है ।’^{१०}

९. बाणमुकुन्दगुप्त निबन्धावली—प्राज्ञोपादि जीर्णक बीस पु० २३०-२३८

१०. भारतमित्र ११ अप्रैल १९०३, वनाम लार्डकर्जन

माई कर्म के कर्मियों के सेवा जोना के लिए और सामयिक उपदेश के लिए पित्रसम्भु का दूसरा बिट्टा उमटिए —

“जो बटस है, वह टस नहीं सकता । जो होनहार है वह होकर रहती है । इसीसे फिर वो बपों के लिये भारत के बाबूराय और गबनर जनम होकर माई कर्म आते हैं ।

इस समय भारतवर्षी यह सोच रहे हैं कि आप क्यों आते हैं । और आप यह जानते भी हैं कि आप क्यों आते हैं । यदि भारत-वासियों का मन बसता तो आपको न जाने देते और आपका वध करना तो और भी कई सप्ताह पहले का बिराजते । पर दोनों ओर की बात किसी और ही के हाथ में है । निरे बेबस भारतवासियों का कुछ बच नहीं है और बहुत बातों पर बस रखने वाले कई कर्मों को भी बहुत बातों में बेबस होना पड़ता है । ”

धर्म की राज्य की कठोर बातवाओं के बिना निर्भीक भाव से प्रतिवाद करना गुप्तजी जैसे बेधमकत साहित्यकार का ही काम था । इस विषय में उनका साहस देखते बनता है । बसता और बदन की भीषण परिस्थितियों में किसी भी मानकों की बन्दु मनोचना करना बीषट का काम था । वह उनके नैतिक बल और आत्मश्रेय का निर्देशन है । सिव सम्भु सम्राट के माध्यम में उनकी आत्मा बोलती है ।

पर मुता है कि जबके बिद्या का उद्यार धीमात् बकर करेने । उपकार का बरमा देना महान् पुरुषों का काम है । बिद्या ने आपको यनी किया है इसलिये आप बिद्या को यनी किया चाहते हैं । इसमें कङ्कलां से छिनकर आप अनिर्घोको बिद्या देना चाहते हैं । इससे बिद्याका वह वष्ट बिट जावेगा जो उस कङ्कलाओं को यनी बनाने में होता है । नीब पड़ चुकी है नधूना कायम होने में देर नहीं । अब तक परीब पड़ते थे इससे अनिर्घो की निगाह होती थी कि वह पड़ने नहीं । अब गरीब न पड़ सकेंगे इसमें यनी पड़े न पड़े उनकी निन्दा न होगी । इन तरह माई कर्मों की कथा उन्हें बेपड़े भी निमित्त कर देगी । ”

बामयुक्तुज जी सम्पदिष्टा और स्पष्टबादिता के प्रतीक थे । नीबी बात बहन और निगन के अन्तर्गत वे जो कुछ बहना होता था नाक बहने और नीब में ऐसे स्थाप्य कर देने थे जिनमें कथावाचन सी चीज होती थी । इस प्रकार वे

११ वही दूसरा बिट्टा धीमान का स्वागत बामयुक्तुज गुप्त निबन्धावली पृ० १२२

१२ बामयुक्तुज निबन्धावली पृ० १२५

पाठकों को यथावसर उल्लासते रहते थे। उनके संबोधनसीस व्यक्तिगत के परिपार्श्व में व्यंग्य विधान होने के कारण व्यंग्यो में माबोद्बोधन की समूह पूर्व क्षमता होती थी। शब्द सीधे होते किन्तु अथ अग्निस्फुरस्सिग की तरह सकय सिद्ध करते थे। एक और बहुत बुरा काम करने की साई कर्जन बिट्टा कर रहे थे। वह अपने अपने बंगाल के दो टुकड़े कर कानने की बात सोच रहे थे। इस बात को वह बड़े अन्याय से छिपाते रहे प्रजा के पुछने पर कुछ उत्तर नहीं देते थे। वाटन साहेब ने बम्बई से कमकसे आकर टीनहास में साई कर्जन के एंठ सराब इरादे के बिच्छ एक व्याख्यान दिया जो बड़ी धूम का व्याख्यान था। पर फल कुछ न हुआ अन्त में स्पष्ट हो गया कि साई कर्जन बंगाल के दो टुकड़े करना चाहते हैं।

इतने अन्याय के काम करके भी साई कर्जन का मन नहीं भरा था। उन्होंने इससे भी बढ़ कर अन्याय करना चाहा। अपने हाथों से यह भारतवासियों की बहुत कुछ हानि कर चुके थे। इस बार मुह से भी काम लिया। इस देश की विज्ञा पद्धति को यह इससे पहले बिगाड़ चुके थे। अब उन्होंने यह और किया कि कमकसा विश्वविद्यालय के सिनेटहास में कमबोकेशन का उत्सव करते हुए भारतवासियों को भूटा और बेईमान कहा और उनके साहित्य पर बड़ी चोटें की। उसका फल यह हुआ कि उस समय तक जो भारतवासी अंगरेजी सरकार और अंगरेजी अफसरों का बड़ा अवयव करते चले आते थे वह सब उठ गया। समाचार पत्रों में साई कर्जन के इन अविचारों की बड़ी बड़ी आलोचना हुई और बंगाल के शिक्षित लोगों ने कमकसे के टीन हास में एकत्र होकर साई कर्जन के कामों की खूब बड़ी आलोचना की। भारतवर्ष में यह पहला दिन था कि इस देश के एक गवर्नर जनरल को प्रजा की ओर से भड़क मुलनी पड़ी। इससे पहले ऐसा नहीं हुआ था। कमकसे की भौति बम्बई आदि बूमरे प्रांलों में भी साई कर्जन को भड़क बताई गई थी। ११

कर्जन के जाने जाते १६ अगस्त १९०५ को बंग भंग हो गया था। इससे मुलगी का रूप आहत हो उठा था। विबलाम्मु शर्मा के बिट्टे में संबोधन पील रूप की अलपेइला का तलस्पर्शी स्पन्दन देखा —

'माई साई को इन देश में जो कुछ करना था वह पूरा कर चुके थे। यहाँ तक कि अनन गव इरादों को पूरा करते करते अपने शासन काम की इनिष्ठी भी करने ही कर कमलों न कर चुके थे। जो कुछ बरमा रह भी गया हो तो

उसके पूरा करने की शक्ति माई नहीं है। आपके हाथों से इस देश का जो बुरा बन्ना होता था वह हो चुका। एक ही तीर आपके तर्कस में और बाकी का उससे आप बङ्ग भूमि का बल्लस्थल छेद चले। अब यही बाकर आपकी शक्ति समाप्त हो गई।

अब क्यों का क्यों है। बङ्ग देश की भूमि जहाँ की बही है और उसका हर एक मगर और बाँव जहाँ था वहीं है। कड़कता उठाकर श्रीरामजी के पहाड़ पर नहीं रक्त सिंहा गया और घिसाव चढ़कर हुगली के पुल पर नहीं आ बैठा। पूर्व और पश्चिम बंगाल के बीच में कोई नहर नहीं खुल गई और दोनों की अलग अलग करने के लिये बीच में कोई चीन की छी दीवार नहीं बन गई है।

कितने चुनते छन्द हैं? सक्ता है, धमछेव होने पर भारत माता के मुख से निकली दारों की पुकार है। दुःख है, हमारी नीर नहीं टूटी हम एक के बाद एक मलतिमाँ करते गये। मुल्तजी के बाबलोक के बाबलोक की रखा हमने न हो सकी। कान मूँद लिये छोड़े घेर ली। काय कि हम सैन लते तो हमारी मातृभूमि की आकृति कुछ और होती।

साहित्य जन्म-हृदय तक पहुँचने का सामन है। उसमें दूध से पकायन का कोई स्वाद नहीं होता। साहित्यकार तो बाल्यदर्शी होता है, वह वर्तमान की तह में पैठकर ही भविष्य के लिए समोचमग्न का निर्देश करता है। मुल्तजी उसी कीटि के साहित्यकार थे। उन्होंने अनेक व्यंग्यप्रबन्ध लिखे मिल जिनमें साह बर्जत साईं मिस्टो मायससिब साईं मारीं पूरे बमाल क छोटे साट कुतर आदि उनके व्यंग्य के छिफार बने थे। इनके बृहत्तम में देश की जो बुधेति हो रही थी उसका बीता बानता लाक्य उन्होंने बीचा इनके बृहत्तमों पर निर्मम प्रहार किया। इनकी विषमताओं का यहस्योपवादन कर बनना में अब जागरण लाता मुल्तजी का सङ्ग था। सभी निबन्धों में देश प्रक्ति की अम्ल-समिता प्रवाहित होती थी क्योंकि धर्मजी सामन के प्रति बिडोह का स्वर प्रत्यक्ष अपका अप्रत्यक्ष रूप से सर्वत्र था। प्रवाग स्थान पर छात्रों के साथ एक अद्वेज घोर के बुध्वंशवार को देलकर उनही अत्यर्थ्यता मोल उठी थी—‘रेल में सुभ पाता हो तो बिलायत में पैदा होने की प्रार्थना करो। मन् १९०६ में कांग्रेस महाविधान में अभ्यसप में बागमार्द मोरोजी ने देश प्रेम का पान बिधा था जिसमें भारत विरोधी टाइट्य आफ इंग्लैड को

भारतीयता के विरुद्ध आग उगमने का धक्का मिला था। उसको लेकर गुप्तजी ने लिखा—इसबार बिसायत के प्रधान पत्र टाइम्स की बड़ी मिरचें लगी हैं। उसने बड़ी गीबड़ममकी दिखाई है। उसकी समझमें मैं हिन्दुस्थानियों को स्वाधीनता या स्वराज्य का नाम ही भूँह से न निजामता चाहिए।^{११}

बयान में बिरोही शासन की दुराचारिता का बिना उन्होंने इन शब्दों में अंकित किया—‘पूर्व बंगाल में फुलरसाही आरंभ हुई और पश्चिम बंगाल में फजर साहब की अमनदारी में कुछ-कुछ उसकी गलत होने लगी। मैदानों में मजा का होना बन्द किया गया लड़कों का झुंड निकम्मा और उनका (बन्दे मातरम) बहना रोका गया। स्कूलों के लड़कों पर जल्पाचार होने लगे। यहातक कि बरीसामझी कान्ठरेन्स पुलिस ने साठी के ओर से बन्द की मोमो को मारा-पीटा और सुरेन्द्रबाबू को पकड़कर उनपर बुरमाना ठोका’^{१२}

अंग्रेजों की नीति आरज से भेद भाव पैदा करने की थी। मुसलमानों को हिन्दुओं की अपेक्षा अधिक अधिकार देकर हिन्दुओं से अलग रखना अंग्रेज चाहते थे जिससे भारतीय राष्ट्रीयता में अचरोप आ पाय। भारतीयों में मतभेद की मृत्तिका अंग्रेज शासन अमाण रखना चाहते थे फलतः भारतीय कौंसिलों में मुसलमान सदस्यों के निर्वाचन की एक बिशेष व्यवस्था उम्हाने की थी। इसको गुप्तजी ने हिन्दुओं तथा अन्य जातियों के साथ अग्याय माना। इसका विरोध करते हुए उन्होंने कहा—‘आज नहीं कोई एक बर्ष स माली साहब भारत के शासन सुधार का राग अनाप रहे थे पर क्या किया? पहाड़ लोहकर बरसी बुझिया निकाली है। आपकी मूल पैबदार बातों का उत्प इतना ही है कि बड़े लाल की तथा प्रान्तीय कौंसिलों में अमीदार और मुसलमान ~~हल~~ और बड़ाने जाय।

अमीदार और मुसलमान ठी अब भी कौंसिलों में बैठे हैं और पहास भी बैठ चुके हैं पर यह कमी न देना कि गकने भी किसी उचित या अनुचित तरकारी काम पर खू भी की हो आलोचना की कौन कहे! केबल हाठक पुनरा की भाति यह साथ बैठे रहते हैं और गफमरों की हूँ में हूँ मिताने हैं।^{१३}

दुमरी आर अंग्रेजी सरकार बयान पर खता हो गई थी। सिरीमल राजगोह

११ भारतमित्र—गीदक ममकी शीर्षक सेल १९०६।

१२ भारतमित्र, १९०६।

१३ " आसनसुधार " १९०६।

ने अचरित में जन नायकों की वह जेल के मेहमान बना रही थी। नार्मी नाइब से पंजाब के एक सम्पादक की सिडीशन में पकड़ने की आशा भी गयी थी। पर एक की जगह दो की सच्चाई हुई। 'इण्डिया' का एडीटर रिचर्डसन सिडीशन के लिये पांच साल की जेल भेजा गया और कहा गया कि तुम पर दया की जाती है। और 'हिन्दुस्तान' का सम्पादक बह कर जेल भेजा गया कि उसीके प्रस में 'इण्डिया' का सिडीशन आता सम्बर दिया था। जब इस तरह से एक इन्फेमें दो शिकार हो तो अलवार निम्नने वाले ईश्वर के निवा और किसी घरण में जाव।

इपर बपाल में देखिये तो मर्हा भी सिडीशन बतरह बचकर लगा रहा है। जाने कुछ न था पर अब बचकल में घर घर मनी-मनी में मौजूर है। 'बुल-स्त' सम्पादक मृणेशनाथ दत्त इस समय कड़ी जेल भोग रहे हैं। 'साबना प्रेम' जिसमें छपता था कुर्क कर लिया गया।

उसी मुम में पंजाब के सपुत मामा असबंतराय आता आजपतराय तरवार बनीत सिंह जैसे महान् बालिकापी नेता मानुमुनि के लिए सबेस बलिग्न कर रहे थे। दूसरी ओर वही बाटवारी और लायन्टी के काबल देगावोही भी कम न थे। उन अवबन्तों की फटकार में मुप्ताजी ने लिखा था—^{११}

मक्के सब पंजाबी अब है लायन्टी में बकनाथूर
मारा ही पंजाब देवा जन जाने की है लायन्तपूर।
लायन्त है सब सिपल बरीड़े बनी भी सब लायन्त है
मेड़ रहनिये बनिये बुनिये लायन्टी के बाबल है।
धर्मसमाजी पक्के लायन्त लायन्त है जलबारे आम
दयानिदियों ना तो है लायन्टी से ही काम समय।

X X X X

परा पैरा नाथू पैरा सब घर हमकी मस्ती है
लायन्टी लाही में अब मुसे से भी कुछ मस्ती है।
बेबल दो दिगलायन्त है बा एक लायन्त एन बनीत
दोनों गये निकाले जमने यही निमीको है कुछ प्रीत।

X X X X

इन सबमें आता सागो ना कुछ भी नहीं इमाका है
लायन्त भोगों के घर में दिगलायन्टी ना पारा है।

१० भारतमित्र सिडीशन का मुग शीर्षक लेस १९००

११ पंजाब में लायन्टी शीर्षक कविता बालमुन्द मुग निबन्धावली पृ० ६४२-४३।

पेट बन गये हैं इन सबके नावस्ती के मुझारे,
बसा नहीं जाता है थक कर हाँप रहे हैं बचारे ।

कितना लीला व्यर्थ है ? जलम परिचय है तद्रूप असतोष है । काजपत और
जलीत जैसे देव प्रेमियों से तत्वाधीन राजनीतिक विग्रहम में आशोक का सजन
कवि का आवर्ध है ।

गुप्तजी न इसी प्रकार की बहुत सी कविताएँ लिखी थीं । जिनमें उनकी राष्ट्रीय
मता की अभिव्यक्ति हमें मिलती है । सन् १९०५ तक अपने रचित पद्यों का
संग्रह 'स्फुटकविता' के नाम से छापाकर उन्होंने भारतीयों के पाठकों को उपहार में
दिया था । भूमिका में उन्होंने लिखा था— 'भारतमें अब कवि भी नहीं है कविता
भी नहीं है कारण यह कि कविता देश और जाति की स्वाधीनता से सम्बन्ध
रखती है । जब देश देश का और यहाँ के लोग स्वाधीन थे तब यहाँ कविता
भी होती थी । उस समय की जो कुछ बची बची कविता अब तक मिलनी है
वह बाहर की वस्तु है और उसका बाहर होता है । कविता के बिना अपने
देशके प्राण और अपने मनकी मीज बरकार है । इस पराधीनो में यह सब बातें
कहाँ ? फिर हमारी कविता क्या और उसका मूल्य क्या इससे उसे तुल्यबन्धी
ही नहना ठीक है । पराधीन लोगों की तुल्यबन्धी में तो कुछ अपने कुछ
का रोना होगा है और कुछ अपनी गिरिबद्धा पर पराई हँसी होती है—वही
दोनों बातें हमतुल्यबन्धी में है ।

गुप्तजी अपनी कविता को अपने ही तुल्यबन्धी कहें । पर उनकी कविता-कविता
का शृंगार है । यहाँ मधसिन्धुन नहीं है पत्नीकारी भी नहीं है किसी
प्रकार का कृत्रिम परिष्कार नहीं है किन्तु यहाँ कविता के प्राण अपने प्राण
जैसे हैं । जन जीवन का साहचर्य है लोक जीवन की भावना है । जैसा कि
पहले कहा जा चुका है गुप्तजी लम्बे धर्म में प्रवृत्तिशील हैं । उनकी कविता
समाज की भावना है जन जीवन का भीत है । मानुषी के निर्माण का
अवगान है । मनु-निर्माण का संदेश है । जगत् प्रयोजन न 'यत्न' है और न
अपेक्षित । प्रयोजन केवल शिवतरागवे है देश समाज और राष्ट्र के उत्थान
का उद्घोष है । उदाहरणार्थ उनकी कविता पोलिटिक्स होती का एक पद्य—

टोरी जायें निबल जायें । होमी है भई होमी है ।
भारतवासी गैर मनायें । होमी है भई होमी है ।
निबल जायें टोरी जायें । हुण मार्यो सचिव हमारे ।
भारत में सब बच नचायें । होमी है भई होमी है ।

महि कोई सिबरस नहीं कोई टोरी । जो परमात्मा छोड़ी मोरी ।
 दोनों का है पन्थ अचोरी । होमी है, गई होमी है ।
 अब भी समझे भारत गई । तुम्हें तुम्हारी वषा बनाई ।
 धाप सही जो सिर पर आई । होमी है गई होमी है ।
 करते फुलर बिदेसी बर्जन । सब गोरें करते हैं बर्जन ।
 जैसे मिष्टो जैसे बर्जन । होमी है, गई होमी है ।

टोरी या सिबरस सब धंधल एक ही हैं । उनसे भारतवासी का बन्ध्याण
 नहीं है । वे सबके सब अचोरी हैं । उनसे उधारता की भाषा नहीं की जा
 सकती है । भारत का भाष्य-विधान भारतवासियों के हाथ है । स्वतन्त्रता सी
 जाती है बी नहीं जाती । 'युध्यस्व नियतज्वर' — यही देशवासियों के लिए
 गुप्तजी का सन्देश है । गुप्तजी की राष्ट्रीयता यही है उनकी कविता
 की भावयुग्मि यही है ।

इसी प्रकार 'कर्जन-फुलर' दीपक कविता में इन दोनों की खूब 'कुत्सीड़ी'
 बनाई गयी है । अन्नजी साम्राज्यवाद पर सीरी बोट है तिलमिला देने वाला
 प्रहार है । बिद्रोह का मग्न है ।

नानी बाली टेसू सात । कहती हैं तुम्हें सब हास ।
 मास नवम्बर कर्जन साट । उलट बस सावन का ठाट ।

फुलर बंन को गद्दी देकर । बस दिने धपमासा मुँह छेकर ।
 फुलर बंन न की बह बंन । सब बयाल हो गया बण ।

सड़कों से की खूब लड़ाई । मुरगा की पसटन बुलवाई ।
 दिया माठरम् बन्दे बन्द । और समाईं टोकी बन्द ।

और स्वहेरी का बबबाया । अगह जयह पर सद्ग बसबाया ।
 बपीसाल में की बह करनी । निरुकी महिमा जायन बरनी ।

अन्ततक सड़कों से लड़ । जानिर को उल्टे मुँह पड़े ।
 पकड़ा पूरा एक न सात । आप गये रह गया सकास ।

खूब बचन मुस्कर का पाला । पर जानिर को हूबा दिवाला ।

आत्मसम्मान और आत्मनिर्मिता के अभाव में राष्ट्रीयता की आचार्यता
 बुर नहीं होती । देश या जाति के विचारों तथा भावनाओं के प्रतिबिम्ब के
 रूप में प्रत्येक समाज की भाषा का निगिष्ट महत्त्व है । राजनीतिक अथवा अन्य

भारत में अपनी भाषा का घनादर अपने आपकी मजबूती है। गुप्तजी इस ओर भी सजग थे। वे समस्त भारत की एक भाषा और एक लिपि के समर्थक थे। मविष्यद्व्याप्त की भाँति उन्होंने कहा था—“यद्यपि बँगला मराठी या हिन्दी भारतवर्ष की अन्य कई भाषाओं से हिन्दी घनी पीछे है तथापि समस्त भारतवर्ष में यह विचार फैलता जाता है कि इस देश की प्रधान भाषा हिन्दी ही है और वही यहाँ की राष्ट्र भाषा होने के योग्य है। साथ साथ यह भी मानत जाते हैं कि सारे भारतवर्ष में देवनागरी लिपियों का प्रचार होना उचित है।”

“अतएव इस समय बंगे की जो संसारव्यापी भाषा बना रहे है और सबमुख यह सारी पृथ्वी की भाषा बनती जाती है। वह बने उसकी बराबरी करने का हमारा मकसद नहीं है। पर तो भी यदि हिन्दी को भारतवासी सारे भारत की भाषा बना सकें तो बंगे की क बाद दूसरा बड़ी पृथ्वी पर इसी भाषा का होगा।” इस कथन में किन्ती व्यावहारिकता थी और साथ ही किन्ती बड़ी ऐतिहासिक उपसक्ति ?

जिस प्रकार राष्ट्रभाषा के रूप में वे हिन्दी की प्रसिद्ध चाहते थे उसी प्रकार राष्ट्रलिपि के रूप में देवनागरी की। हम एक होकर भी एक दूसरे को समझ नहीं सकते थे। एक ही कोठी में बस गुमास्ते इस प्रकार के हरफ भिन्न थे। एक के हरफ दूसरा सहसा नहीं समझ सकता। अपने इन हरफों के पीछे वह सोच बिछा ही लो बैठ। यदि यह सब बसर एक होकर देवनागरी बन जायें तो किन्ती अच्छा हो ?

प्रचलित सभी भारतीय लिपियों में उन्होंने देवनागरी को सर्वाधिक वैज्ञानिक और उपादेय माना। उनकी दैयानुरागिता एक लिपि चाहती थी। इस लिए उन्होंने उर्दूवासी से कहा—“हम उमीद करते हैं कि जो लोग हिन्दी उर्दू के लिये अपना करते हैं वह समझ लें कि हिन्दीवासी क्या चाहते हैं और उनकी क्या गरज है। उर्दूवासी न किसी लिपि का अपना करना वह नहीं चाहत हैं और न उर्दू को नुकसान पहुँचाना चाहते हैं। मगर नागरी हरफ का माने हिन्दुधर्म में जबरन फैलाना चाहते हैं। जिससे संस्कृत में लिखी हुई उक्तों की वही-वही भाँति आ जायें। सब हिन्दुओं और हिन्दुधर्म की सब कुवर्तों

२२. राष्ट्रभाषा और लिपि “ ११०

२३. भारतमित्र १९०४-भारतकी भाषा शीर्षक निबन्ध “ १५९

२४. भारतमित्र १९०२ ई., वाजसकिन्द निबन्धावली पृ १६५

को एक करने के लिये यह कोशिश होती है। हिन्दी और उर्दू को हिन्दू एक ही जवान समझते हैं और मुसलमान भी पहले उर्दू को हिन्दी ही समझते थे। सावकर देहलीवाले। मगर सज्जनम्मासों में इसमें बरबी के बसफाज माहक ठस-ठसकर इसे बुराई जुबान बना डाला है। १५

गुप्तजी की साहित्यिक साधना उर्दू में ही आरंभ हुई थी। इसलिए उन्होंने जो कुछ हिन्दी उर्दू के विषय में कहा उनके चिन्तन और मनन का प्रतिफल था। किसी प्रकार का पूर्वग्रह नहीं था—यदि था तो एकमान होगा प्रेम का। देश का सर्वसमाज ही उनके लिए लक्ष्य था।

बालमुकुन्द गुप्तजी अपने युग के पत्रकारपुङ्गव थे। पत्रकारिता के माध्यम से उन्होंने साहित्य में राष्ट्रीयता का प्रतिनिधित्व किया था। नवजागरण की पृष्ठभूमि में जिस राष्ट्रीय भावना का विकास मारतेन्दु से आरम्भ हुआ था उसके मायक गुप्तजी थे। बलकल में रख कर उन्होंने अपने समय में हिन्दी जनता का नेतृत्व किया था। सक्रिय राष्ट्रीयता का उद्घोष उनकी समय साहित्यिक साधना में हुआ। नवयुवकों को स्वतन्त्रता के निमित्त उत्तेजित किया और उन्हें राष्ट्रीय नवजागरण की नई बेतना का महापाठ पढ़ाया— १६

घामो एक प्रतिमा करे, एक साथ सब जीवें मरें।
अपनी जीवें आप बनामो उनसे अपना धर्म सजामो ॥

‘एक साथ सब जीवें मरें’—उसी सामूहिक जीवन के स्पन्द में गुप्तजी की राष्ट्रीय भावना का चरम प्रतिकलम है। इसे जनवाद कहें या प्राकटिक। कोई अन्तर नहीं पड़ता क्यों कि उनके लिए ‘अहिंसा मां पुण्यं’ के स्थान पर ‘हिंसा मां पुण्यं’ राष्ट्रीय जीवन का अवतार था।

ऐसे महान् युगपुरुष को सम्प्रदायवादी कहना उनकी राष्ट्रीयता का अपमान है। वे ‘हिन्दुपन’ पर और बैठे थे किन्तु सम्प्रदायवादी नहीं थे। उनका ‘मारतमित्र’ हिन्दुओं की तरफ़वारी करता है और वह तरफ़वारी किंगी मजहब वाले से सफ़ाई करके नहीं पूनरे मजहब को अपने मजहब में गिनावे के लिये नहीं केवल हिन्दुओं की मुन्दी घामी और राजनीतिक तरफ़वारी है। १७

२५ जमाना (१९०६) में प्रकाशित बालमुकुन्द गुप्त निबन्धावली १०६
२६ इष्टकविता—स्वदेशी आन्दोलन
२७ मारतमित्र—१९००

कारण हैं। अपनी भाषा का घनादर अपने आपकी अवस्था है और भी सजग थे। वे समस्त भारत की एक भाषा और एक लिपि। अविच्छिन्नता की भाँति उन्होंने कहा था—“यद्यपि बँगला भारतवर्ष की अन्य कई भाषाओं से हिन्दी धनी पीछे भारतवर्ष में यह विचार फैलता जाता है कि इस देश की प्र-
ही है और वही यहाँ की राष्ट्र भाषा होने के योग्य है। मानते जाते हैं कि सारे भारतवर्ष में देवनागरी अक्षर उचित है।”

अब इस समय अंग्रेजी का संसारव्यापी भाषा बना सारी पृथ्वी की भाषा बनती जाती है। वह बने उ-
हमारा मकसद नहीं है। पर तो भी यदि हिन्दी का
की भाषा बना सके तो अंग्रेजी के बाद दूसरा बर्बा
होया।^१ इस कथन में कितनी व्यावहारिकता
बड़ी ऐतिहासिक उपमन्य ?

द्विज प्रसार राष्ट्रभाषा के रूप में वे हिन्दी की प्रति-
राष्ट्रमिति के रूप में देवनागरी की। हम १-
समझ नहीं सकते थे। ‘एक ही कोठी में इस घुमा-
निगल है। एक के हरेक दूसरा सहसा नहीं समझ :
वे पीछे वह नोन बिछा ही तो बैठ। यदि यह सब अ-
बन जावे तो स्थिति अच्छी हो ?’

प्रचारित सभी भारतीय लिपियों में उन्होंने देवनागरी
और उपदेश माना। उनकी दैर्घ्यानुसंधिता एक विधि
उन्होंने उद्बुधार्थी में कहा—“हम उमीद करते हैं कि
निवे प्रगढ़ा करण है वह समझ लेने कि हिन्दी
उनकी क्या मर्ज है। उद्बुधार्थी से किसी विस्मय का
चाहते हैं और न उद्बु की मुकमान पहुँचाना चाहते
है मारे शिमुमान में उद्बु फैलाना चाहते हैं। त्रिज
उद्बुने करीब-करीब आ जावे। सब शिमुमानों की रति

२२. राष्ट्रभाषा और लिपि “ २१०

२३. भारतमित्र १९०४—भारतकी भाषा नीरवक निवन्ध

२४. भारतमित्र १९०२ ई. बाबुमुकुन्द निवन्धावली।

भारतमित्र के तेजस्वी सम्पादक

श्री कृष्ण विहारी मिश्र

कसकरो की हिन्दी पत्रकारिता के तीसरे दौर का नेतृत्व भारतमुकुन्द मुष्ण के हाथ में था जिन्हें अपनी जातीय निष्ठा और उच्च राष्ट्रीयता के कारण काकाकाकर के राजा रामपाल निहके 'हिन्दोस्वान' पत्रही नीकरीसे हाथ धोना पड़ा था। राजा साहब ने स्वीकारा था कि मुष्णजी 'गवर्नमेंट' के विरुद्ध बहुत कड़ा लिखते हैं अतएव इस स्वाम के योग्य नहीं हैं, ध्युत कर दिये जाय। इस पर टिप्पणी करते हुए पण्डित बनारसीदास चतुर्वेदी ने लिखा है कि 'हिन्दी पत्रकार कसा ने इतिहास में यह पायब पहना ही नीका था जब कि 'गवर्नमेंट ने बिगड़ बहुत बड़ा लेख' निम्न के कारण किसी पत्रकार को ध्युत किया गया हो। अपनी कड़ी नीति और जातीय निष्ठा के बावजूद मुष्णजी सर्वद्व अम्याय और अनीचित्य से लड़ते रहे। वे एक सचेत पत्रकार थे। जिन्हें युगीन चेतना की मज्जा की हर बड़कन की सही पहचान थी।

हिन्दी अलबार्' का इतिहास मिराने हुए 'भारतमित्र' के बैपिट्य के प्रमय में उन्होंने एक विशेष स्थिति का संकेत दिया है "जिनकी जो नाम है उसी पर बनने से उनकी उन्नति होती है। उनके बिगड़ने से बहुत मारी हाति होनी है। यह एक घटम मिज्ञान्य है। पर बुग है कि हिन्दुधों में गृध नीय इन मिज्ञान्य से बिचलित होकर अपने को कमशोर बना रहे हैं। क्या मुसलमान क्या कृस्लान सब अपनी अपनी नाम पर बनने हैं अपने अपने पम का आदर करत हैं अपनी अपनी धर्म की बागों पर बुक हैं केवय हिम्नू ही घटने हैं। यह बंग बुग की बाल है। मुष्णजी के पूरे कार्य-नाम में यह जानीय पीड़ा उनके मन में जमी रही। बनाविन् मही कारण है कि वे नद्व सचेत रहे। उनकी जापुनि का ही परिणाम था कि औचित्य के पक्ष

समय में उनसे कभी बुरा नहीं हुई। इस प्रकार 'स्य० गुप्तजी' ने सोहन पर सभाई, ईमानदारी और साफ़गोर्द की दूनी रसभर गढ़वाई, इन्हें अन्धकार और अनेकता के विरुद्ध अन्धकार सफ़र मचान दिया। अपने स्वार्थ बन तथा अपने आदर्श की खातिर उन्होंने यह कमी नहीं बिना कि 'हिन्दी-बहुवाणी' यद्यपि 'भारतमित्र' के हार्नोमर में पहुँचने से पहले अपने विचार स्वागम्य तथा आदर्श को खूँटी पर टाँचा हो और संभावना की खातिर तैयारी थाभा हुई वैसे लिखा हो। 'बयाबाणी' में जब एक बार दूनी गीतत्र लह ब अपने हान में हलचल खोसि इस्तिया हैरत, बने आय।

हिन्दी बंयबाणी में मित्रों के विशेष आग्रह-अनुरोध पर वे पचास रुपये केतन पर आय वे। १० अगस्त साल बचवर्ती ने लिखा है कि त्रिभु समय गुप्तजी न हिन्दी बहुवाणी में आकर हिन्दी मित्रने में परिश्रम करना आरम्भ किया था उन समय की हिन्दी से बहुमान हिन्दी की सुधना करने वाले मित्रोंने बड़ हैने कि हिन्दी भाषा के लिये मानो युगान्तर उपस्थित हुआ है।" बड़ क्यों तक गुप्तजी न हिन्दी बंयबाणी के माध्यम से हिन्दी की जो सेवा की उसका मुम्भावना स्वयं अनुमीन की अपेक्षा रमता है।

भारतमित्र क सम्पादक के रूप में गुप्तजी का दूसरी बार बतकना आयमत जनवरी १८९० क दूसरे मज्जाह में हुआ और १६ जनवरी १८९९ तक का "भारत मित्र" उनक हाथ सम्पादित होकर प्रकाशित हुआ।

सद राष्ट्रीय जागृति का बाल था। स्वदेशी के प्रति आग्रह बड़ रहा था। स्व राज्य का कार्य प्रगतिशील राष्ट्रीय मताओं के सामने स्पष्टतर होता जा रहा था, और राष्ट्रीय उन्नयन के बहुविध प्रयत्न आरम्भ हो गये थे। बबाम नेतृत्व बर रहा था और विदेशी शासन के प्रति अमंतोप बढ़ना जा रहा था।

धीमधी गताधीक आरम्भिक कार्य लार्डे कजरने कुछियों लिये बाकी बचिष्ठ रहे। भारतीय राष्ट्रीय दालि की बिचगि करने के त्रिभु कर्ज न माना प्रचार के बज्जों का आग्रह लिया था। कर्ज के समुत्पाण शासन की बर्षा करने

सार्द कर्जम के ऐसे कार्य थे, जिससे राजमन्त्र भारत की कमर टूट गयी और सारे देश में एक नई रिपरिट पैदा हो गई। जिसने हूंग-विच्छर बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक की सबसे बड़ी चुपटना भी जिस पर टिप्पणी करते हुये लोकमान्य निकट ने लिखा था कि सार्द कर्जम ब्याप्तियों की सम्पत्ति को कुचलना चाहता है क्योंकि इस तरह है कि कहीं से अंग्रेजी सरकार पर हामी न हो जाय। स्मरणीय है कि बनीय जातीय चेतना इसी समय की और उस की कि उस कर्जम प्राप्त हो गया था किन्तु इस मार्ग से भाग पान के लिये उसने जिस मार्ग का अवलम्बन किया वह उसके उद्देश्य के सर्वथा प्रतिकूल था। इस प्रकार 'सरकार की उत्तरोत्तर उस रूप धारण करने वाली समय नीति के कारण जब जाग्रत चेतना भी सम्पूर्ण विस्तृत और सहृदी होती गयी। देश के एक कोने में जो घटना होती थी वह सारे देश में फैल जाती थी। सरकार का प्रत्येक समय-काम देश में उत्पन्न असर करता था। सम्पूर्ण भारत में ब्याप्त के प्रथम के साथ अपनी सम्पत्तियों को और जोड़ कर आम्बोमन को अपाश सहृदय दे दिया।

बहाल के नेतृत्व का दायित्व उस समय पीढ़ी के हाथों में आ गया जिसकी शिक्षा और राजनीतिक सरकार पं० विनोद साहू और राजनाथरायण बोस के निर्देशन में हुआ था और जिसको आस्था प्राप्त थी कि समय और कार्य में अविचल थी। स्वायत्तता इनका मंत्र था और पूर्ण स्वराज्य इनका एकमात्र उद्देश्य था। इस प्रकार बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में जनतन्त्री राष्ट्रीय भूमिका को वियान्विनि मिली जिसका निर्माण उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुआ था।

स्वदेशी आन्दोलन की गति निरन्तर तेज होती गयी। उत्पन्न आन्दोलन को वैचारिक अवलम्ब देन वाला नै विविध चरित्र प्राप्त अरविन्द घोष और रबीन्द्रनाथ ठाकुर का नाम विशेष उल्लेखनीय है। भुवनेश्वर बनर्जी का नेतृत्व कायम ही था। विविधचरित्र प्राप्त अरविन्द और रबीन्द्र की बहुमूर्तता का राजनीतिक स्वार्थम्ब आन्दोलन के पक्ष में नहीं थी बल्कि इसका महत्त्व उद्देश्य था—राष्ट्र का आध्यात्मिक-युनान्तरण। इनके लक्ष्य राष्ट्रवादीयों में बंगाल में ब्रह्मसमर्थ उपध्याय धर्मिणीभुमार दास, मनो रजन पृथा ठाकुरा और भगिनी निवेदिता थी। अन्य बंगाली सम्बन्धों में प्रागोश जीपुदी, मधुसूदन रतून हीरेन्द्रनाथ दास और बित्तरञ्जन दास थे।

स्वदेशी आन्दोलन के धारण की जर्नी करते हुए 'म्यूंडिया' में विपिन चन्द्र
पाल ने २५ फरवरी १९०५ ई० को लिखा था हमारा आदर्श जिसे हम
स्पष्ट रूप से स्वीकार करते हैं जातिकारी हो सकता है और है भी ।

हमारी रेशमजिन केवल इसी अर्थ में राजभक्ति के निकट है कि
हम विधि-यात्नक हैं हमारे साथ राजभक्ति का बुराया कोई आचार नहीं ।
इसी प्रकार बन्ने मातरम् के माध्यम से १९०६ में विपिन चन्द्र पाल ने
भोपला की बी ति छत्र समग्र आ गया है जब नागरिकता सम्बन्धी उम्मीद तथा
सत्य और व्यक्ति स्वातंत्र्य की दृष्टि से हम अपने धर्मोपनिषद् को बता दें कि
उनके उत्तराधिकार के प्रति हम आभारी हैं किन्तु अब हम अपनी राजनीतिक प्रवृत्ति
और मुक्ति के प्रयत्न में उनके निवेदन से और अधिक पीड़ित होना नहीं
चाहते । उनके और हमारे दृष्टिकोण में स्पष्ट अन्तर है । वे ब्रिटिश सरकार
को कामम रखकर बस प्राप्त करना चाहते हैं । हम भारत को ब्रिटिश
परधीनता से पूर्ण स्वतन्त्र करना चाहते हैं ।

देव भक्ति की एक नयी धारणा मूर्त हुई कि 'स्वदेश माता है स्वदेश
भगवान है यही वैश्व विद्यामार्ग है यही विश्व आसीन अमृतस्थान का बीज
है । जैसे बीज भगवान का धर्म है उसकी शक्ति भगवान की शक्ति का
अर्थ है जैसे ही यह धर्म को बिना-बाधियों का तीस कोटि भारत-वासियों का
समुदाय धर्मोपनिषद् का धर्म है इन तीस कोटि मनुष्यों की वाच्य
दामिनी धर्मोपनिषद् विद्या बहुमुखात्मिका बहुवर्णधारिणी भारत जननी
भगवान की एक शक्ति है, माता जगज्जननी काली की देह विशेष है । उक्त
धारणा की अर्थ और स्पष्ट करते हुए श्री भरविन्द ने अपनी पत्नी के नाम
लिखे पत्र में कहा था कि अन्य लोग स्वदेश को एक एक पदार्थ कुछ भोग
गन्त वन पर्यटन नहीं कर समझते हैं, वे स्वदेश को माँ मानता है । उसकी छाती
पर बैठकर यदि कोई रातग रातपान करने के लिये उछल हा तो धक्का क्या
करता है ? निरिच्छ होकर भोजन करन स्त्री-पुन के साथ आभोर-धर्मोप
करने के लिए बैठ जाता है या नो का उद्धार करने के लिए खड़े पड़ता है ?
ये जानता है कि हम पवित्र धर्म का उद्धार करने का बल मेरे अन्दर है
गांधीयिक बल नहीं तबहार का बन्दूक लेकर मे मुझ करने नहीं आ रहा है
ज्ञान का बल है । ज्ञान मेरे एकमात्र तेज नहीं है अज्ञान भी है वह तेज
ज्ञान के ऊपर प्रतिष्ठित होता है । स्मरणीय है कि श्री भरविन्द का भूमाव
धर्म बल की ओर भी धर्म का और शक्ति की उपासना में अपनी पूरी

भाषा भी । प्रत्यक्ष राजनीतिक गतिविधिया के साथ ही प्रचलन हिंसापरक संघर्षों में भी उनकी रुचि थी । अस्तु ।

रबीन्द्र बिस्मिलियात साहित्यिक थे । राजनीति उनका विषय नहीं था तथापि स्वदेशी आन्दोलन में उन्होंने सक्रिय भाग लिया । उन्होंने अपने भतीजे बालेन्द्रनाथ टैगोर के सहयोग से कमरुद्दौलत में एक स्वदेशी वस्त्र मंडार खोला था । राष्ट्रीय विद्या पद्धति को प्रायोगिक रूप देने के लिए सठठ प्रयत्न किया था । अनासक्त्यक राजनीतिक भार से जब स्वदेशी आन्दोलन की रचनात्मक पक्षित धीमे-धीमे सभी तो रबीन्द्रनाथ ने ससत अपना सम्बन्ध तोड़ लिया । रबीन्द्रनाथ के भारतीय मन्त्रालय को ऐतिहासिक महत्त्व देते हुए बजाहरामान नेहरू ने लिखा है वह राजनीतिज्ञ नहीं थे लेकिन वह हिन्दुस्तानी जनता की आजादी के प्रति इतने सचेत और इतने आसक्त थे कि वह हुये-या ही अपने काय और समीप के ऐंग्लो-सैनिक सैनिकों में नहीं रह सकते थे । राजनीतिक घटनाक्रमों से उन्मत्त होकर उन्होंने प्रायः भारतीयों और ब्रिटिश सरकार को बेवकूफ कर दिया था । बीमबी घताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में बंगाल में जो स्वदेशी आन्दोलन बना उसमें उन्होंने भाग लिया ।

इस युग के बंगालियों में 'युगांतर' संघ्या और 'बन्धेमातरम्' तेजस्वी पत्र थे जो युग जनता के अधिक समीप थे । 'बन्धेमातरम्' अरविन्द घोष और बिस्मिल नास के सम्पादकत्व में प्रकाशित होता था । इनका आदर्श था कि प्रत्येक राष्ट्र को स्वच्छन्दता देना और न्याय रहने का अधिकार है और यह कि जन राज्य बनना—राज्यपति का अधिकारण भारतीय पुनर्जागरण के लिए पहली शर्त है और इसलिये समस्त भारतीय जनता को इन आदर्शों की ओर केन्द्रित करने का बन्धेमातरम् आग्रह करता था ।

यही बंगाल और भारतीय भारतीय परिवेश का बीमबी घताब्दी का प्रारम्भिक वर्षों का विचार हिन्दी पत्रकारिता को बहुत प्रभावित किया था । यों कहना चाहिये कि हिन्दी पत्रकारिता इस भारतीय आन्दोलन के प्रति पूरी तरह सचेत रही और उसने अपने दायित्व का पालन किया । भारतीय राष्ट्रीय महासभा ने १९०६ के बसवता अधिवेशन में पहले पत्र स्वराज्य दाय का प्रयोग किया था । बसवता पत्रिका (१९०६) के सम्पादन

या माई बीरोबी ने 'जीपनिबेधिक शासन' के स्थान पर स्वराज्य सभ की
पेक्षा की थी। बंगमंग ने समग्र राजनीतिक परिदृशको में बहल दिया था।
बसकी चर्चा ऊपर की गयी है और जिससे हिन्दी पत्रकारिता का नयी पंक्ति
पर नया स्वर दिया था।

साई कर्जन के दिल्ली दरबार में अंग्रेजी समाचार पत्र-सम्पादकों के साथ
परतमिन्-सम्पादक बाबू बासमुकुन्द गुप्त भी सम्मिलित हुए थे। ११ अप्रैल
१९१६ के भारतमित्र में विषयम्मु के चिट्ठे और सभ की पहली किस्त
(नाम साई कर्जन) प्रकाशित हुई। सम्पादक गुप्तजी ने मांगी साई
र्जन की सकारते हुए बड़ी माफ माया में उनके कृत्यों का उद्घाटन
किया आपने साई साई। जब से भारतवर्ष में पचारे हैं बुलबुलों का
बन ही देया है या सचमुच कोई करने योग्य काम भी किया है? जाली
जाला लपान ही पूरा किया है या यहाँ की प्रजा के लिये भी कुछ कर्तव्य
काम किया। एक बार यह बातें बड़ी बीरता से मन में विचारिये। आपकी
शरत में स्थिति की अवधि के पाँच वर्ष पूरे हो गये जब यदि आप कुछ
न रहेंगे तो मूर में मूलजन समाप्त हो चुका। हिसाब कीजिये नुमायशी
नामों के सिवा काम की बात आप कौन सी कर चके हैं और भड़कवाजी
के सिवा झूठी और कर्तव्य की ओर आपका इस बैस में धाकर कब प्यान
रहा है इन बार के बजट की बनूता ही आपके कर्तव्य काम की अन्तिम
बनूता की जरा जने पड़ तो जाइये फिर उसमें आपकी पाँच साल की निष्ठ
बचछी करनून का कर्ज है? मान बारम्बार सपने को भविष्य तुमतरफ से भरे
कामों का वर्णन करते हैं। एक बिस्त्रोरिया मिपीरिपल हॉल और बुरस
दिल्ली दरबार। पर जरा विचारिये तो यह दोनों काम शो' हुए या
'झूठी'? बिस्त्रोरिया मेमोरियल हाल जम्ब पेट भरे अमीरों के एक हाँ बार
देग आने की बात होगी। उसमें दरिनों का कुछ कुछ बट जायेगा या भार
नीय प्रजा की कुछ दगा उम्मत हो जाये एसा तो आप भी न समझते
होये।

कर्जन के दायित्व की ओर नदिन करने हुए गुप्तजी ने बड़ी कड़ी माया में
बहा था जिन पर पर आप आग्रह हुए, यह आपका मौक़ी नहीं—नदी
नाम मधीय की बात है। आपने भी कुछ आया नहीं कि इन बार छोड़ने के
बाद मानना इनमें कुछ मन्थव रहे। किन्तु जिनने दिन घापटे हाथ में पकित
हैं उठने दिन कुछ करने की भी शक्ति है। जो कुछ आपने दिल्ली आदि में

कर दिखाया कर उसमें आपका कुछ भाग था पर वह सब कर दिखाने की शक्ति आपमें थी। इसी प्रकार जाने से पहले हम देश के किन्हीं अगली काम कर जाने की शक्ति आप में है हम देश की प्रजा के हृदय में कोई स्मृतिमन्दिर बना जाने की शक्ति आप में है। पर वह सब सब हो सकता है कि बैंगी स्मृति की कुछ कदर आपके हृदय में भी हो। स्मरण रहे पापु की मूर्तियों के स्मृतिचिह्न से एक दिन किस का मैदान भर जागा। महाराज की स्मृतिमन्दिर मैदान की हवा रोक्ता था या न रोक्ता था पर दूमरों की मूर्तियां इतनी हो जायेंगी कि पचास पचास हाथ पर हवा को टकरा कर चम्का पड़ेगा। जिस देश में साईं भैरवों की मूर्ति बन सकती है उनमें और किस किसकी मूर्ति नहीं बन सकती। साईं साईं क्या आप भी चाहते हैं कि उसके आस पास आपकी एक बैंगी ही मूर्ति खड़ी हो ? 'वह मूर्तियां किस प्रकार की स्मृति चिह्न हैं ? इस दृष्टि देश के बहुत से बन भी एक बड़ी है जो किसी काम नहीं धा सकती। 'सुसासा बात यह है कि प्रकार 'शो' और 'इयूटी' का मुचाबिला कीजिये। 'शो' को 'शो' मम मिये। 'शो' 'इयूटी' नहीं है। साईं साईं आपकी दिल्ली दरबार की आद कुछ दिनों बाद उतनी ही रह जावेगी जितनी सिक्खाम्मु सर्मा के मिर में बामरूपन के उस सुस स्वप्न की है। इसी कम में मारतमिह के ११ मितम्बर १९४ के अंक में बायसराय के कर्तव्य पीरक स 'सिख दाम्मु के चिट्टे' और पठ की सोमरी छिन्न प्रकाशित हुई जब कर्जन दूसरी बार भारत क चर्नरजनरम हाकर आय। उनके बापों का समुचित मूल्यांकन करते हुए गुलजी न किया बा कि आपन गरीब प्रजा की ओर न कभी दृष्टि गामकर देता न मरीबों ने आपको जाना। अब भी आपकी बागों ने आपकी वह चैप्टा नहीं पाई जानी। इससे स्मरण रहे कि जब धारने पद की स्थापन कर आप फिर स्वदेश में जावेयें तो चाहे आपको अपने चित्त ही मुगलीवन करने का धबगर मिये यह तो कभी न वह मक्के कि कभी मागन की प्रजा का मन भी अपने हाथ में किया बा। इतिहास हम जान बा साक्षी है कि जो सामा' प्रजा क पराजय पर पूरी सहानुभूति के साथ उतर कर उसके दुःख दर्द के समीप नहीं पहुँचना उमकी ममक में जानबानी सहन और बिबम भीय भावा में उसे आ-बाय बोध नहीं देना और उस मक्कन महानुभूति नहीं देना तो चाहे वह निगता भी पराजयी क्यों न हा सामिन बन क बिल पर बिजय नहीं प्राप्त कर पाता। साईं कर्जन हम दृष्टि में बहुत ही अगपन

धामक था । उसे शामिल बर्ग की चिन्ता नहीं थी उस बर्ग के लोगों के मनोभाव का जरा भी ध्यान नहीं था और अवसर उनके प्रेमबिन्दुओं पर प्रहार किया करता था । कलकत्ता विश्वविद्यालय के अपने प्राण में कर्जन ने ब्रुम के लोगों को मिथ्यावादी तथा सत्य का अनावर करने वाला कहा था । यह भारत की गरिष्ठता पर सीधा प्रहार था जिसका उत्तर 'भारतमित्र' के माध्यम से गुप्तजी ने दिया था 'जिस देश को धीमाग ने आदर्श सत्य का देश कहा और वहाँ के लोगों को सत्यवादी कहा है उसका नामा तमूना क्या भीमातू ही है ?

अपनी सत्यवादिता प्रकाश करने के लिए दूसरे को मिथ्यावादी कहना ही क्या सत्यवादिता का सबूत है ।

बड़ी पीड़ा के साथ गुप्तजी ने अपनी बात पूरी की है कि 'यह देश भी यदि बिलासत की भाँति स्वाधीन होता और वहाँ के लोग ही यही के राजा होते तब यदि अपने देश के लोगों को वहाँ के लोगों से अधिक सम्पन्न साक्षित कर सकते तो आपकी अवस्था कुछ बहानुपी होती ।

भारत आप के लिए मोम्य भूमि है । किन्तु इस देश के वालों आबनी इसी देश में पैदा होकर अवाध कुलों की भाँति घटक-भटक कर मरत ह । उनको दो हाथ भूमि बैठने को नहीं पैर भर कर लाने को नहीं जैसे बिचड़े पहन कर उमरें बिना देने हैं और एक दिन यही पड़कर भुपचाप प्राण में देने हैं ।

कभी इस देश में आकर आपने गरीबों की ओर ध्यान नहीं दिया । कभी यहाँ की दीन भूमी प्रजा की दशाका विचार न किया । कभी इस मीठ घग्घ मुताकर यहाँ के लोग को उत्साहित नहीं किया—फिर विचारिए तो गान्धिजी यहाँ के लोगों को आपने किस रूप के बरते में री ? पराधीनता की सबक की मैं बड़ी भारी चोट होती है ।

माई लार्ड ! इस देश की प्रजा को जान नहीं चाहते और नह प्रजा आपको नहीं चाहती फिर भी आप इस देश के सामक है और एक बार नहीं दूसरी बार घामक हुए हैं यही विचार बन इन धपबूझ अनन्य बाह्यण का नया फिर-निरा हो-हो जाता है ।

नहना न हाना कि साम्राज्यवादी के बिजड इगमी नहीं बात केबन नहीं नह मरना है या देश ने लिए, देशोन्माद के लिए प्राणोत्पार्ण करने को हर क्षण उद्यत रहना हो । उस ब्रुम के हिन्दी पबवार जी कुछ पिगने के यह मुचिचार्मि होता था और देश के लिए भारी से भारी प्रयत्न भेजत-भेजने की

मदैव उनकी मानसिक तैयारी रहती थी। पं० मासमसाम जनुबेदी के मरने में कहें कि 'परमेश्वर' देवों का सच्चा पत्र-सम्पादन विवेची राजकर्ताओं से सीखा मोहा सेना उनके स्वाधों पर बिना किमके पैर रखता होता है। बाबू बालमुकुन्द गुप्त का पत्र-सम्पादन इसी कोटि का था। उनकी कम्पनी और करनी में कहीं लाई नहीं थी। जिस दखि भारतीय जनता का गुप्तजी ने उत्प्रेम किया है उनके दुःखद्वय में गुप्तजी सक्रिय बनि सेते थे। डिबेदी युग के प्रमूख साहित्यकार स्व० पं० भोवन प्रसार पाण्डेय ने एक ऐसे प्रसंग की कथा की है उनके सम्पादन काल में 'भारतमित्र' का प्रचार मध्यप्रदेश जैसे सुदूर प्रांत के शायों में भी था। इसका कारण था शायी जनता के दुःख-द्वय समाव अभियोग के समाचार गुप्तजी नहीं सहानुभूतिपूर्वक प्रकाशित करते थे।

देहात के गाँवों में इधर उस समय कुल्लू नहीं थी। मरुत लालाब पोखर तथा नदी या नाले के पानी से लोगों का निर्वहण हुआ करता था। जमबुट का समाचार पं० दलिंगर ने 'भारतमित्र' में प्रकाशनाथ भेजा था। वे 'भारतमित्र' के साहक थे। देहात से आग हुए समाचारा पर गुप्तजी विचार प्यास रखा करते थे। समाचार छपकर आया तो उनके साध-साध सम्पादक हाथ निमित्त एक टिप्पणी भी छपी हुई हेतमें में आनी। गिणली में सम्पादक ने लिखा था कि रियासत सरकार ऐम गाँवों में कुर्बा सुबहा कर जल-कष्ट निवारण क्यों नहीं करती? कहने का अभिप्राय यह कि वे भारत के नगरों और शायों के सुधार एवं उत्थान के हेतु एक सच्चा मित्र की भानि बनने कर्तव्य-मानन में निरन्तर तत्पर रहा करते थे। इस प्रकार स्पष्ट है कि गुप्तजी की दृष्टि एकान्वी नहीं थी वे देश के एक छोटे बग को दृष्टि में रखकर जातीय व्यवस्था देनवाले पत्रकार नहीं ब और न तो उनके मन में कभी मुक्तिवादा से समझौता करने की दुर्बल प्रवृत्ति ही जगी। इसी १९०५ के भारतमित्र में जो विशाई सम्पादन किया था उसमें कई महत्त्वपूर्ण प्रसंग उद्घाटन व जिनकी कथकला आज स्थायीत भारत में भी उषों की स्पर्श बनी हुई है। "क्या अंग कन्द करके मनमाने हृषम नमाना और रिली की कुछ न सुनने का नाम ही घामन है? क्या प्रजा की बात पर कभी काज न देना और उमारी बहाकर उमारी मर्जी के विरुद्ध जिह न मर काम बिग कने जाना ही घामन कहना है? एक काम तो एका बनाइए जिनमें आगन जिह

छाड़कर प्रजा की बात पर ध्यान दिया हो। जेसर और वार भी चेरने-बोटने स प्रजा की बात सुन सेते हैं पर आप एक मीका तो ऐसा बसाइए जिसमें किसी अनुरोध या प्रार्थना सुनने के लिए प्रजा के लोगो को आपने अपने निकट फरकमे दिया है और उसकी बात सुनी हो। नादिरशाह ने जब शिन्धी में कस्मे आम किया तो आगिफजाह ने तलवार गले में बासकर प्रार्थना करने पर उसने कस्मे आम उसी दम रोक दिया। पर बाठ करोक प्रजा के दिङ्मिङ्गाकर बन बिच्छेद न करने की प्राथना पर आपने वार भी ध्यान नहीं दिया।

नादिर स भी बढ़कर आपकी जिह है। कर्जन को इस जिह के चलते १६ अक्टूबर १९०५ ई की बय-बिच्छेद होकर रहा जिसकी देशव्यापी गहरी प्रतिधिया हुई और जिसपर 'भारतमित्र' के माध्यम से २१ अक्टूबर १९०५ ई की बालमुकुट यण न टिप्पणी की थी कि "भारतवासियों के भी में यह बात कम गई कि राज्यों में भक्तिभाव करना बुधा है प्रार्थना करना बुधा है और उनके आगे राता गाना बुधा है। दुर्बंस की वह नहीं सुनते। बाणी की यह निर्भीरता आज के पत्रकारों में दुर्लभ है।

दीक्षम-निवारण के निष्ठ भारतवासियों ने सक्ति की उपासना सक्त की थी जिसका सबत पहले दिया जा चुका है। सरकार की दमन-नीति की प्रतिधिया रितनी पड़ती होनी थी और आतीय-आमुनि को उससे कैठ नया संचार मिलता था दमन उन्मत्त किया गया है। पूर्वी बवाल के भर्नर सर फुनर ने विधिष्ट नामगि को पसकी दी थी कि 'ममब है मूल-मरबी करनी पड़। फुनर माहब की बमबी का बकाब देने के लिए बालमुकुट यण ने साइस्ता की का मन—फुनर माहब के नाम दिया जा जिसके द्वारा फुनर की आत्यन्तिक भगतिप्लुता और बरबाबा पर करारा ब्यस्य प्रहार किया गया था। और पाउर में फुनर को एक बोस्ताना ससाह देने हुए सभारक ने लिखा था रैयन के दिल में 'मृगाफ का सिरका बैठना है जुम्स का नहीं।

घपने कामा न नाबिन कर बो कि तुम इन्सान हो मृषातम हो यहाँ की रैयन को पालने आये हो नापों को मिरि हासत न उठाने आये हो। भोग यह न समझे कि ममबबी हो ना मृदातम ही घपने पतलब के लिए हम बुद्ध के सदकों को 'बम्बेमानरम्' कहने से भी बन्द करने हो। गन की दूसरी रिग्न १८ घनम् १९०६ को 'भारतमित्र' में छपी थी जिसकी अन्तिम परिउपा दम प्रसार है 'तुम बन्ध अव कहने से ही क्या है? पर जो तुम्हारे आनमनि होन है वह मूल ग्यों कि जमाने के बहने दरया को साठी

मार के कोई नहीं रोक सकता। दूसरी की तय करके कोई कुछ नहीं रह सकता। अपने मुस्क को जानो धीरे लुहा लोकोठ ने तो हिन्दुत्वाम के भोग को कभी-कभी कुपायेकर से याद करना। जमाने को देखते हुए यह एक बहुत बड़ी बात थी। सत्य का समर्थन करते समय कभी बात का निजना निवात स्वाभाविक है। सत्य का समर्थन पत्रकार के लिये एक अनिवार्य युग यामा जाता है।

मुफ्तजी की प्रतिम ध्वजि इतनी पुष्ट थी कि धनक विभागा में के अपनी अभिव्यक्ति सामानी से दे पाने से। भारतमित्र में प्रकाशित चिबधम्मु के बिदु और छाहस्ता ली के अठ बीसी ही वर्षा मुफ्तजी द्वारा लिखित और भारतमित्र में प्रकाशित 'टेम्पु' की भी होती थी। निःसन्देह 'भारतमित्र' राजनीतिक पत्र का किन्तु मुफ्तजी ने उसे एकामित्त से बनाया और स्वयं भाषा साहित्य व्याकरण साहित्यिक संस्मरण बर्म इत्यादि विषया पर लेख लिखकर 'भारतमित्र' में प्रकाशित किये और उसे धनेश्वरि पूर्वता से। एक बार 'आर्यावर्त' ने 'भारतमित्र' के नाम और उद्देश्य से धनमणि लिखाते हुए समत आरोप लगाया था जिसके उत्तर में बाबू बालमुकुन्द मुफ्त ने एक लम्बी बह्यवत् की थी 'भारतमित्र' भारतवर्ष का कायक है। भारतवर्ष हिन्दुओं का देश है—हिन्दुओं की इसमें प्रधानता है। हिन्दुओं ने ही भारतमित्र को जन्म दिया है जिन लोगों ने इस बनाया है वह हिन्दू हैं और जो इसकी लिखत हैं वह भी हिन्दू हैं इनीसे भारतमित्र हिन्दुओं का तरफदार है और वह तरफदारी निमी मजहब बाने से सफाई करके नहीं दूसर मजहब को अपने मजहब में मिसाने के लिये नहीं बल्कि हिन्दुओं की मुस्ली मामी और राजनीतिक तरफदारी है।

हिन्दुस्तान में ही 'आर्यावर्त' और 'इन्द्रमित्र' जैसे आदि पत्रों को देगिता वह अवैध जानि के किम प्रकार तरफदार हैं। पोलिटिकल रीति से जो कुछ तरफदारी स्वजाति की करनी चाहिए सो वह करते हैं। स्वजाति प्रम स्वदेमानुषंग मनुष्य का धर्म है। हम एक भाग अपने महपोषी 'आर्यावर्त' से कहते हैं। वह यह है कि यदि आपके भी कोई देश हो आपके भी बार्ड जानि हो आपके भी कोई धर्म हो और जग धर्म में कुछ भी अज्ञा जलि की जान हो तो उसका पालन कीजिए, उसकी तरफदारी कीजिए हम उसकी प्रणाम करते हैं और हमारे लिय भी आगीबार्ड कीजिए कि हम अपने धर्म में सदा पड़े रहें। इस तरह की निराना-वही घोर बहाना-मुनी शाय 'भारतमित्र' के माध्यम से होनी रही।

‘भारतमित्र’ के माध्यम से भाषा और व्याकरण सम्बन्धी जो विवाद शुरू हुआ था उसका भी ऐतिहासिक महत्त्व है। यद्यपि इस विवाद में व्यक्तिगत भावोंस भी दिखाई पड़ता है और एक ने दूसरे के व्यक्तित्व पर भी आक्रमण किया था किन्तु आचार्य पण्डित महावीर प्रसाद द्विवेदी और बाबू बालमुकुन्द गुप्त के इस संबंध की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि व्याकरण-अनुराग को एक नया आयाम मिला। इस संबंध का ऐतिहासिक महत्त्व इससे भी शीघ्र होना है कि इस में उस युग के सभी मुख्य हिन्दी व्याकरण आचार्य और पण्डितों ने सक्रिय भाग लिया था—स्मरणीय है कि इसका प्रवर्तन गुप्तजी ने ही भारतमित्र के माध्यम से किया था। भारतमित्र ने लिपि के प्रश्न को भी बड़ा वैचारिक ढंग से उठाया था और भारतवर्ष की सामान्य लिपि के रूप में देवनागरी लिपि की प्रतिष्ठा के साथ-साथी और सतत प्रयोगी स्व-अस्तिम मारदाचरण मित्र के महान् उपक्रम का बालमुकुन्द गुप्त ने अपने लेखों द्वारा प्रमत्ता और पूर्ण सम्पुष्टि की थी। इस सम्बन्ध में गुप्तजी ने बतलाने भी आभास के अग्रिम-मई १९०६ ई० के अंक में एक बड़ा लेख लिखा था। दिवंगत साहित्यकारों का भाव-अनुष्ठान भी गुप्तजी द्वारा भारतमित्र के माध्यम से सम्पन्न हुआ था। अपने समयकालीन अनेक देसी विदेशी हिन्दी के उन्मायकों और हिन्दी-हिज-विभक्तियों के बारे में भारतमित्र लगातार बाबू बालमुकुन्द गुप्त ने लेख लिखे थे। वे निश्चय इस बात के प्रमाण हैं कि हिन्दी का उन्मायक पत्रकार अपने साहित्य के प्रति कितना सज्जत था।

भारतमित्र में मनु १० ५ में उर्दू अंगवर्गों का इतिहास और १९०६ ई० में हिन्दी संवाद पत्रों का इतिहास प्रकाशित हुआ था। स्मरण ‘भारतमित्र’ मन्नाचरण बाबू बालमुकुन्द गुप्त ही थे जो हिन्दी के साथ ही उर्दू के भी पत्रकार रह चुके थे और जिनका उर्दू धीरे हिन्दी भाषा पर समान अधिकार था। हिन्दी संवाद पत्रों का इतिहास प्रकाशन सम्पन्न भारतमित्र का मन्नाचरण मन्नाचरण साहित्यिक अचरान है जिसका सम्पूर्ण श्रेय गुप्तजी को है।

गुप्तजी को जब हम भण्ड बचकार कहते हैं तो हमका स्पष्ट अर्थ यह है कि उन्हें राजनीति की नजर की यही पहिचान थी भाषा पर लगावारा अधिकार था। वे हिन्दी के अग्रिम शैलीकार और विविष्ट साहित्यकार थे। अपनी विमर्श-ताओं को केन्द्र से जालदण्ड पत्रकार बन गये थे। इन प्रकार (५० श्रीरामगर्मा के शब्दों में) वे जर्मन युग के लक्ष्म और युग निर्माता पत्रकार थे। उनकी पत्रकारिता में चार चोर हममिये और मग गये थे कि वे इस समय

को उस राजनीति के पीछे थे : वे कीरे नरामतोड़ पत्रकार न थे जो टको की
 कातिर अपने विचारों को बचते हैं : जीवन का मूल्यांकन मुप्तभी रुपये पैसे
 से न करते थे बल्कि करते थे चरित्रमठन, कर्तव्यपरायणता सचाई और
 सच्चि ईमानदारी से, उनकी सेवनी द्वारा देश की बालमा की बन्तबन्ति—
 बाकानी की पुकार—मिपिबड होती थी । अहंकार, डोंप और मुझमी के गड्डो
 पर उनके डेज थोले जगसा करते थे : जिस रिखा ने जम्हूने लिखा उसमें एक
 महीन जीवन और नई स्फुति स्पन्वित होती थी ।

• • •

गुप्त जी के ठयंग्य-विनोद

श्री रघुनन्दन मिश्र

बालमुकुन्द गुप्त का नाम सामने आता ही जैसे एक युग सामने खड़ा आता है। मानू मृदित तथा मानू माया की सेवा करने वाले अनेक साधकों की भाँति प्रतिभाएँ मानस में उमर आती हैं। युग का आरम्भ हुआ या साहित्यकाश के कलाकर भारतेन्दु से। इनका संलग्नता सुनाई दिया सबजागरण का महान् प्रमाण हुआ। नवीन प्रेरणा के साथ साहित्य सचियों का एक स्रवण हो गया। भारतेन्दु मंडल ने साहित्य-साधना आरम्भ की और साहित्य के अनेक खेद अभिगच्छित होने लगे। कहानी नाटक उपन्यास निबन्ध काव्य एवं श्लोक आदि सभी प्रकार के साहित्य का सृजन आरम्भ हो गया। भारतेन्दु के पहले जहाँ केवल काव्य का सृजन होता था वहाँ उनके बाद पद्य के साथ साथ गद्य-साहित्य की रचना भी प्रचुर मात्रा में होने लगी। लड़ीबोली का स्तर अभी मुख्यचरित्र नहीं हो पाया था। अनेक प्रकार की समस्याएँ थी। उन्हीं समय में उत्पन्न मिला साहित्य के द्रोणाचार्य आचार्य महावीर प्रसाद त्रिवेदी का। भाषा का रूप सुस्पष्ट हुआ और सरस्वती के साधकों का एक दुर्गात बल अपनी मौलिक रचनाएँ भारती के पुनीत चरणों में अर्पित कर अग्रज को नव्य समझने लगा। सरमल मारायण गये तथा बालमुकुन्द गुप्त आदि इसी युग के अनमोल रत्न थे। उस युग की यह विप्लव लेखिका मौलिकता ओज तथा निर्भीकता आज वही दिग्दर्शनी बनी है। उनकी निष्ठा एवं साधना से आज भी साहित्य नवी प्रेरणा प्राप्त करने है। पश्चिमी युग में साहित्य का प्रकार-
— चरण सिन्धु बहू बगलई चीर बहू दिग्दर्शन सबको उत्तराधिकार में मही

मिले। गुप्तजी अपनी निर्भीकता के लिए प्रसिद्ध थे। जैसे उनकी प्रतिमा तो बहुमुखी थी और साहित्य का धामय ही कोई ऐसा क्षेत्र होगा जिस पर इनकी सेजगी परिचायित नहीं हुई किन्तु इनके व्यंग्य और विमोह साहित्य में अपना विशेष स्थान रखते हैं। इनके पहले इस प्रकार के व्यंग्य की कोई सुनिश्चित परम्परा भी नहीं बन पाई थी अतएव काव्य के साथ साथ उन्होंने एक परम्परा की स्थापना भी की।

इनके व्यंग्यात्मक निबन्ध साप्ताहिक 'भारतमित्र' में प्रकाशित होते थे और बाद में 'विजयधम्म' के चिट्ठे के रूप में प्रकाशित किए गए। हिन्दी और उर्दू दोनों भाषाओं के पाठक इन निबन्धों को बड़े चाव से पढ़ते थे। हास्यरस से भोज प्रीत भाषा में ऐसे व्यंग्य की रचना करना गुप्तजी का ही नाम था। उन निबन्धों में स्वदेश भक्ति की अपूर्व अभिव्यक्ति रहती थी। बमाला या गौरांग महाप्रभुओं का उनके शासन में रोना भी सुनाइ था। कोयल का कूकना अपनापन का और बुलबुल के गाने पर कटिज प्रतिक्रिया का 'इस कष्ट में बुलबुलों का कहलहामा है मना' किन्तु उसी बसाने में गुप्त जी व्यंग्यात्मक भाव छोड़ते थे। मय का लेश मात्र भी उन्हें अनुभव नहीं होता था। उन्होंने कई कर्जत के नाम विजयधम्म के चिट्ठे जिसे जो व्यंग्य-साहित्य के अद्भुत उदाहरण हैं। इन चिट्ठों के अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि गुप्त जी को एकात्मिक राजनीतिक विषयों तथा समस्याओं का विचार मात्र रहता था और उनके विरलेपण करने की पैनी दृष्टि एवं समता रहती थी। व्यंग्य इनने संवरण होते थे कि सीधे मर्मस्पर्श कर चोट पहुँचाते थे विजयधम्म नाम के नाम में चुर हो रहते थे पर सीधे जागते भारत के हि की विम्वता उनकी सजाती रहती थी। दृष्टनीति के नामे बाबरण में जावेदिया माछ-विरोधी कार्य उनकी समझ में आते थे। व्यंग्य की उजाला में उन बाबरण की मम्म कर उसका मम्म रूप प्रस्तुत करना विजयधम्म का काम था बंग-विक्टोर के प्रसंग में विजयधम्म कहने हैं —

"सब ज्यों का त्यों हैं। बंग देश की भूमि जहाँ थी वहाँ हैं और उसका हराण नगर जहाँ था वही हैं। बलकता जटावर बीराजुंजी के बहादुर पर नहीं रण दिया गया और गिलाब उड़कर हुगली के पुल पर नहीं था बीटा। पूर्व और पश्चिम बंगाल के बीच में कोई नहर नहीं गूढ़ गई और दोनों को घनग बनाने के लिए बीच में कोई बीज भी नहीं दीवार नहीं बन गई पूर्व बंगाल पश्चिम बंगाल से अलग हो जाने पर भी संयोजी शासन में ही बना हुआ है

धीरे पश्चिम बंगाल भी पहले की भाँति उसी शासन में है। किसी बात कुछ फर्क नहीं पड़ा। खासी क्यासी लड़ाई है। बंग-विच्छेद करके माई का ने अपना एक क्यास पूरा किया है। इस्तीफा लेकर भी एक क्यास ही पूरा किया और इस्तीफा मंजूर हो जाने पर इस देश में बड़े रहकर भी भीमान् प्रिंस आद बेन्ध के स्वागत तक उहड़ना एक क्यास मात्र है।

इतनी बुझती हुई बात इस प्रकार से निर्भीकता से लिख कर गुप्तजी प्रकाशित कराते थे। मनोरंजन के रूप में जी इतने सीधे व्यंग्य लिखना उस समय आसान काम नहीं था किन्तु भारत के अहित की कितनी बातें आमसराय तक धँपरेबी सामन हारा प्रस्तुत की जाती थी गुप्तजी उन सब की आलोचना कर के और 'भारतमित्र' में प्रकाशित कराते थे। एक बार साईं कर्जन हिन्दुस्तानिया को भूख कह दिया था। गुप्तजी को यह खोर अपना मातूम हुआ। गुप्तजी को कुछ नहीं हुआ। उन्होंने एक व्यंग्यभारत कविता लिखी।

“हम जो कहें वही कानून तुम तो हो वीर पतकून।
हमसे सच को सुनो कहानी जिससे मरे मूठ की नानी।
सच है सच देश की बीज तुमको उसकी वहाँ समीज।
बीरा को मूठा बनसाना अपने सच की डींग बढ़ाना।
ये ही पक्का सच्चापन है सच कहना तो कच्चापन है।
बोले बीर करे कुछ और यही सभ्य सच्चे के तीर।
मत में कुछ मुँह में कुछ और यही सत्य है करमो गौर।
मूठ को जो सचकर शिपमाने सो ही सच्चा साधु बहादे।

इस प्रकार भारत तथा भारतवासियों का अहित एवं अपमान इनको कभी सा नहीं था। इनकी दृष्टि राजनीति बुराइयों तक ही सीमित नहीं थी समाज बुराईयाँ भी इनको पसन्द नहीं थी। उनको बुर करने के लिए मार्शियक व्यंग्य लिख कर लेते थे। पश्चिमी सभ्यता के से विरोधी थे भारतीय सभ्यता और संस्कृति के अग्रगण्य उपासक थे। अंग्रेजी सभ्यता महार भारत में आई। देश के नपयुवक 'द्वैत मिर्जा की छोड़ जीमू मिर्जा में जाने में ही नर्य का अनुभव करने लगे। नवयुवकियाँ भी उन बदल गयी। बीना और जानन उन्हें रबिकर प्रतीत नहीं होने से। बाइबिल धर्मोपनिषद् उन्हें ग्रिप मान्य होने लगे। इस प्रकार के अबाधनीय अनुकरण देश पर गुप्तजी की आत्मा निपटिमा उठी। उन्होंने "सभ्य सभ्यता की वि

मिली। पश्चिमी विचारों के रग में डूबी रहनेवाली नवयुवतियों के लिए ये
व्यंग्य देने वाला थे। एक मध्य महिला का विवाह 'देवी' व्यक्ति से हो
गया था। पश्चिम और पूर्व का मेल बैठता नहीं था। महिला कहती है—

बताओ आके मेरे पास किस तरह होगी पूरी आस ?
हँसी छाती है मुनमुनकर बताता नहीं कहाँ है घर।
बमम पूसा है किस जाँ पर कहाँ है जनों का 'बाबर'।
कहाँ है टनिस घर दिखसाव कहाँ मछली का बमा तलाव।
बाठ वह घमसी सब सटकी बहू जब भी मैं लुबट की।
मजा अब कुछ पाया है स्वाद शिला का आया है।

इस प्रकार के थे इनके व्यंग्य। इनमें देश एवं राष्ट्र का कस्याण निहित
रहता था। व्यंग्य के साथ ही साथ इनके हास्य भी कम भाकर्यक एवं
मनोरंजक नहीं थे। इनमें भी देश कस्याण की भावना भरी रहती थी।
गुप्तजी कत्ता की साधना केवल कत्ता के लिए नहीं करते थे। बल्कि इनकी
कत्ता की साधना जीवन के लिए थी। प्रेमचन्दजी की तरह ये भी कत्ता एवं
साहित्य के माध्यम से देश सेवा के पक्षपाती थे। "भस का स्वर्ण" लिख
कर उन्होंने भारत के घाममी जनों से स्वयं की घोर संकेत किया है। इसी
प्रकार 'घुन्नी का हाम' जोरबास जोमीडा आदि अन्य रचनाओं से भी
जिमी न किमी कुरीति की ओर संकेत किया है। अहिंसा आह भरने वाले
घोर प्रेम को बदनाम करने वाले आदिनों की वियोगजन्य पीड़ा का बिज उनके
गोपयेन और ओछेपन की घोर संकेत करता है—

माठी सम ताम रहो द्विरो
है राम जर्दो सब गाठ जर्दो।
एक बार सुबाबत हो तन मों
बरमासीटर भुईं फाट डर्दो ॥
जब हासर हँ हिय हार पापो
मरिबो तामों निचै टहड़यो।
विरहानम तान बड़यो मजना
बावानम मों अब जानि १२यो ॥

इसी प्रकार 'जोरनाम' के भाव भी कम मनोरंजक नहीं हैं —

अपना कोई नहीं रे ।

बिन जोर सिखाज जगत में कोई नहीं रे ।

मात पिता निज सुख लागि जायो अपने सुख के भाई ।

एक जोर ही सम जैसेही ऐसी सिखा पाई ।

X

X

X

X

हर में वर पीठ पे देके सुख से होसी गार्हे ।

उसी ठाम पे गार्हे जो सुख डोरी खेंच नचावै ॥

आज भी उनकी इस प्रकार की कविताओं को पढ़ कर हम कुछ सांख्यिक आनन्द का अनुभव करते हैं । अत्यन्त सहृदय रसिक विनोदप्रिय प्रकृति के होने पर भी गुप्तजी अपने सिद्धान्तों पर बटस रहने वाले ठेकस्वी पुरख थे । व्यंग्य और विनोद सीजे होने पर भी इतने सरस एवं सरप होते थे उस व्यक्ति को पढ़कर अपार आनन्द होता था जिस पर प्रहार होते थे । सर्वथा पेट की ही चिन्ता में निमग्न रहने वाले उत्कामीन अथवा सर्वकामीन पैदुओं पर क्रिया गया व्यंग्य किसके आनन्द का कारण नहीं बनेगा ?

सामो पेट बड़ा हम जाना

यह तो पामल फिरे जमाना ।

इस प्रकार हमने व्यंग्य और विनोद से हिन्दी साहित्य के अभाव की पूर्ति हुई । स्वस्थ परम्परा की नींव पड़ी स्वदेश प्रेम की भावना जमी तथा समाजवर्त एवं व्यक्तिगत बुराइयों की घोर लोचों का ध्यान आकर्षित हुआ । साहित्य निर्माण के साथ साथ स्वस्थ समाज के निर्माण का भी कार्य सम्पन्न हुआ ।

श्री वालमुकुन्द गुप्त की निबन्ध-शैली

श्री प्रमोद सिंह

मानव जो कुछ सोचता है अनुभव करता है उसे अभिव्यक्ति देना चाहता है। विचारों या भावों की अभिव्यक्ति-प्रकृति का नाम शैली है। संस्कृत 'रीति' और अंग्रेजी style छद्म इसके पर्याय हैं। रीति 'विनिर्दिष्ट-प्रचलन' को कहते हैं। अंग्रेजी style शब्द लैटिन stilus से निष्पन्न है। सत्रहवीं शताब्दी में stilus शब्द के विभिन्न अर्थ होते थे। शत्रु या हथौड़े से बने हुए नुकीले औजार, रत्ता के लिए प्रयोग में लाए जाने वाले हथियार आदि इसके उस समय के अर्थ हैं। उन्नीसवीं शताब्दी में यह शब्द नुकीली कलम आदि अर्थों का आह्वान हुआ। साहित्यिक दृष्टि से शैली के प्रमुख तीन अर्थ होते हैं जिन्हें प्रो० मिडल्लेन ने अपने अपनी पुस्तक Problems of Style में स्पष्ट किया है। उनके अनुसार उसके अर्थ हैं— (१) वैयक्तिक रस-वैलक्षण्य (Personal idiosyncrasy) (२) अभिव्यक्ति-तकनीक (Technique of exposition) (३) साहित्य की महत्तम उपलब्धि (Highest achievement of literature)।

प्रत्येक कलाके निर्माण के जितने-कितने कलाकार भी संवेदनाओं अनुभूतियों विचार आदि रहा करते हैं। उन्हें मूर्त रूप देने के लिये वह कुछ शौकतासी अपनाता है। उनमें रचना में सम्यक् का आगम होता है। कलाकार का व्यक्तिगत रचना-प्रक्रिया-क्रम में लगन रहना है। उसकी रचना शैलीके महत्तम रूप-निर्माणमें उनके उत्कृष्टतम मीमांसाबोधका प्रभाव निहित रहना है। साहित्य रचनामें भाषा-शक्ति और लक्ष्य-उत्तम जुड़ जाती है। यह एक स्वीकृत प्रथम ही बात है कि किसी साहित्यिक रचना-शैली पर रचनाकार के मानसिक संगठन और भाषादि के प्रभाव अतिरिक्त रूप से पड़ता है।

लेनहाबर ने ऐसी को आत्मा का स्पष्ट परिचायक माना है— *Style & physiognomy of the soul* बेस्टरफील्ड के अनुसार यह 'वैचारों का परिपाल' है। ऐसी की उत्कृष्टता इस बात पर निर्भर करती है कि उससे क्या-किसी में गवेषनाओं भावनाओं विचारों उत्पत्ति और अभिज्ञान (Intuitions) आदि की प्रभावपूर्ण या विभ्रान्तक अभिव्यक्ति उत्पन्न हुई है या नहीं। हर उत्कृष्ट रचना-ऐसी में हमारी इन्द्रियों पर अमानुष की मानसिक शक्ति का प्रभाव उत्पन्न करने की समता रहती है। (बेनिग्लेस सत्यों से आधिष्ठ रचना के स्वाधी महत्त्व का यही कारण है।) अभिप्राय यह कि रचना में सत्य शिव और सुन्दर की प्रतिष्ठ हेतु विविध और प्रभावपूर्ण ऐसी का होना प्रयोजनीय नहीं अनिवार्य भी है।

स्वर्गीय वामनकुन्द गुप्तजी निबन्ध-ऐसी की अविश्व रूप प्रदान करने में इस की उत्कामीय सांस्कृतिक राजनीतिक सामाजिक परिस्थितियों का महत्त्व पूर्ण योगदान है। निबन्ध-प्रदान-कला को भारतेन्दुमुनीय सेक्तों द्वारा एक पुष्प और व्यापक वरातम मिल चुका था। वामनकुन्दजी गुप्त ने अपनी रचना-ऐसी से उसे अधिक समतल बनाया सजाया और अधिक व्यापकता भी दी। उनकी रचनाओं से उनका समस्त ईमानदार और बुद्धिहीन प्रकार के अनिश्चित उनका एक गवेषनाधीन विचारवान राष्ट्रप्रेमी साहित्यकार का व्यक्तित्व भी प्रकटित होता है।

मजबूती रचनाओं का प्रागल्भ्य भारतेन्दुमुनीय है और शरीर द्वितीय वर्गीय। हिन्दी में उनका आधिष्ठ उर्ध्व साहित्य में होता है। युवाकाल में ही उन्होंने विविध उर्ध्व पक्षों का गन्तावन कर उर्ध्व के लक्ष्यप्रतिष्ठ सम्पादकों के गतिस्थानों में एक महत्त्वपूर्ण स्थान बना लिया था। भारतेन्दु-मंडन के लेखकों व० श्रीधर पाठक व० मदनमोहन मालवीय व० अयन्नाथप्रसादजी बनूँदी प्रभृति के प्रभाव में आकर उन्होंने हिन्दी लेखन-कार्य आरम्भ किया और अपनी अद्भुत भाषना के बल पर उस क्षेत्र में भी सम्माननीय पर प्राप्त कर लिया। 'हिन्दोम्बान' 'हिन्दी बंगवामी' 'सागरविष' आदि पत्र-पत्रिकाओं में सम्पादकीय रूप में तथा छद्मनामों (शिवराष्ट्र आदिवाराय आदि) से उनकी रचनाओं का प्रकाशन हुआ है। उनके निबन्धों की पढ़ने ही लग जाता है कि विमले के लिए उन्हें विषय-निर्वाचन-हेतु अधिक धन नहीं करना पड़ा होगा। यदि निम्नर रानीनोर का यह वचन कि निबन्ध रचना "एक अमरा

है जो दार्शनिक वैज्ञानिक आलोचक विद्वत्सनीय मित्र यष्ठी और विद्वत्पर
धारि की भूमिकाएँ ग्रहण करती रहती हैं। सत्य है तो यह मानना पड़ेगा कि
की काममुद्गन्धरी के निबन्ध—दीर्घगीत विद्वत्पताओं के कारण—उन भूमिकाओं
का निर्वाह सफलतापूर्वक करते हैं। उनकी रचनाओं की विषय-वस्तु का
सम्बन्ध जीवन के अनेक क्षेत्रों से है।

रचना-विषय की दृष्टि से विचार करने पर उनके अधिकांश निबन्ध व्यक्ति
निष्ठ या निबन्ध निबन्धों के अन्तर्गत आते हैं पर ऐसी दृष्टियों की भी कर्म
नहीं है जिन्हें हम वस्तुपरक या विचारप्रधान कहते हैं। इस द्वितीय श्रेणी
के अन्तर्गत आनेवाली रचनाओं में वैयक्तिकता का सर्वथा अभाव है। एसा
नहीं कहा जा सकता। इनका परतल मुक्त विचार प्रधान और धारो
वनात्मक है। इन्हें कई शीर्षकों के अन्तर्गत—मुख्यतः क लिए—हम रत्न सन्त
हैं। उन शीर्षकों में से प्रमुख हैं — आलोचनात्मक ऐतिहासिक चरित्र-वर्णन
आदि। इन प्रकार के भाग सभी तो नहीं हिन्दु अधिकांश निबन्धों में वैचारिक
गंभीरता का अभाव है। उनमें सन्निहित सरल भावुकता का सरल
प्रवाह पाठकों के अन्तर्मुख पर मधुर प्रभाव छाड़ता प्रतीत है।

वस्तुनिष्ठ निबन्धों में गुच्छरी की विषय-स्थापना और उनके प्रसार
आदि की रीति अत्यन्त ही सहज और सरल है। उनकी पत्रचारिता दीर्घी
से युक्त उनके उक्त निबन्धों में दीर्घगीत विविधता के दर्शन होते हैं। हिन्दी
भाषा उसकी भिन्न पुष्पकों की आलोचना साहित्यिक या इतिहास प्रविष्ट
व्यक्तियों आदि स सम्बन्धित विषय इस ढंग के रचना-प्रकारों में विचारार्थ
रहे पाए हैं। उनमें कुछ निबन्ध जैसे 'हिन्दी भाषा' व्याकरण विचार
'हिन्दी में हिन्दी' 'भाषा की अनस्थिरता' आलोचनापरक है। बंधना उर्दू
और हिन्दी पुस्तकों पर उनकी आलोचनाएँ हैं। उनका स्वल्प 'हिन्दू धर्म'
है। तथ्यों की सुल्लिखन और तर्कपूर्ण योजना उन विवेचन विनियम
की बजाय का अभाव बन्धु या भाषा सम्बन्धी मुद्रियों का उल्लेख—य शुरु
सामान्य लक्षण इन निबन्ध में मिलने हैं। ऐसे निबन्धों में मगर दूसरा क
भाषा-सम्बन्धी व्याकरण में अगिष्ठ अव्यावहारिक प्रयोगों का उल्लेख करना
है और मुख्यतः स्वल्प उनके परिभाषित रूप भी देता है। यहाँ बहु लक्ष
मीमांसक की तरह आन प्रविष्ट पढ़नेवाले तथ्यों का उल्लेख करता है और
द्वि उनका प्रभावप्रदान। आने पत्र के समयमें मैं तो हिन्दी विद्वान्

विपादन का उसका प्रयास परिलक्षित होता है, और न ही उस हेतु प्रयुक्त उदात्तों का कोई संकेत। बड़ी आत्मसज्जता के स्वर में तथा धारम्य साहचरिक एवं बोधयम्य बंध से गुप्तजी का विचारक तथ्यों का संकेत कर गया और बड़ी अपनी ध्वन्य तथा बृहत् मरी उक्तियों के प्रयोग से भी नहीं भूया। ऐसे स्वरों पर उसका निर्बैयक्तिक रूप तिरोहित हो जाता है। हर कहावतों मुहावरों ध्वन्यात्मितियों जैसे प्रयोगों से रचना नूतन साज सजा से अलंकृत हो उठती है। भाषा की अनस्थिरता निबन्ध में अनस्थिरता उक्त व्याकरण सम्मत नहीं है। लेखक यह स्वीकार करता है। पर इनकी उक्त धारणा के पीछे क्या सिद्धान्त है इसका उत्प्रेषण नहीं के बराबर है। उक्त निबन्ध का प्रारम्भ ध्वन्यमूलक है और उसमें मेलक बहुत दूर तक ध्वन्य और बृहत् मरी उक्तियों का उपयोग करता दिखाई पड़ता है। स्व० पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी की रचनाओं से उदाहरण प्रस्तुत कर उनकी भाषा सम्बाधी भूमि का उत्प्रेषण और मार्जन करता है। भाषा की सहायता से "उम्र जुदा-जुदा होती है" "भाषा का बिनाश" किसी भी "भाषा की स्थिरता या जाती है" "भाषा मिली जाती है" जैसे असंगत प्रयोगों से मुक्त पदों का उत्प्रेषण करने के बाद वह अपना संशोधन प्रस्तुत करता है और उत्प्रेषण पठकभाषी की अपनी कला का आशय लेता है। वो एक उदाहरण के इस स्पष्ट करने की अनुमति चाहेंगे।

'मन में जो भाव उठित होते हैं वे भाषा की सहायता से दूसरों पर प्रकट किए जाते हैं।

उपसृक्त वाक्य प महावीर प्रसादजी द्विवेदी का है। उसमें निहित अभाव का संकेत एवं उसका लिए अपन संशोधन की प्रस्तुत करने की ध्वन्य-विशेष में मरी गुप्तजी की बोली का एक नमूना देंगे —

"क्यों जनाब भाषा की सहायता से मन के भाव दूसरों पर प्रकट किए जाते हैं या भाषा से ? भाषा टीपों की सहायता से बसते हैं या टीपों से ? या अपनी बोली जानते हैं वे इस वाक्य को इस तरह लिखते— 'मन में जो भाव उठते हैं वे भाषा से दूसरों को सुना दिए जाते हैं। द्विवेदीजी तरजमे के भाषा तैयार करते हैं उनमें अनस्थिरता नहीं ? भाषाएँ नहीं ? निरुपार भी मराने मिगाने के लिए कवर बनकर गढ़े हो गये हैं। —

द्विवेदीजी के उपसृक्त उदाहरण में वाक्यों का अवयव संकेतित है। एक अन्य

उदाहरण हैं। डिबेदीजी ने मिल दिया 'हममें कोई सम्बन्ध नहीं कि पं० बलदेव प्रसादजी के शरीर के साथ हिन्दी का एक बहुत अच्छा लेखक हमें का के लिए तैयार हो गया। इस वाक्य के अर्थ को स्पष्ट करते हुए वासुदेव गुप्तजी ने पं० महावीर प्रसादजी डिबेदी पर जिस उक्ति का प्रहार किया है के कितनी प्रभावशाली है इसका परिचय निम्न पंक्तियों से मिलता है।

लेखक (पं० महावीर प्रसाद डिबेदी) ने एक अंग्रेजी श्रोत का टुकड़ा पीसकर हिन्दी की पिचड़ी में मिमाजा खाया है। यह वाक्य उसी तरह कुत्तियों भाइयों है और रसिकों का खाया है जिस तरह दो सऊरदार बाप-बेटों की सचारी का जानवर एक बाँस में बँधा हुआ उनके कंधे पर सटकता हुआ एक पुरुष घर में जाते समय भाइयों और लड़का खाता है।"

उपरोक्त अनुच्छेद का अंतिम अंश सम्बन्धित है। प्रचलित सोच-बोचों और मुहावरों को मजबूत रखना तथा इस प्रकार की लेखन शैली में चमत्कारिक प्रभाव उत्पन्न करने की कला में गुप्तजी निस्सन्देह अग्रणी हैं। गुप्तजी की उक्त प्रकार की टीका का रूप पुस्तकों आदि पर लिखी गई उनकी आलोचनाओं में भी मिलता है। 'तारा दीपक' निबन्ध में उसने स्वीकार किया है कि उक्त पुस्तक के लेखक को वे 'ऊँची हवा' में नहीं रहने देना चाहते बल्कि उन्हें कुछ नीचे उतार लाना चाहते हैं। आदि से लेकर अन्त तक लेखक उक्त पुस्तक की संवाद योजना से व्यक्त असोकोपयोगी प्रभावों को जागरूक बनाकर अपनी उक्तियों को प्रकट करता है और अन्त में उसे 'बसंत मरी बोली' तक बह डालता है 'अपनिता कुल' 'अमुमनी' 'अनी' रचनाओं पर प्रस्तुत गुप्तजी की आलोचनाओं का यही स्तर है।

ऐस आलोचना - प्रचारों का साहित्यिक दृष्टि से क्या महत्त्व है? हमका न्याय करना यहाँ धर्मियेन नहीं है। उनके उद्देश्य ने गुप्तजी की उक्त प्रकार की रचना-शैलीगत विचारणाओं की ओर संकेत करना ही प्रमुख उद्देश्य है। गुप्तजी पम्प्रीय-मे-गम्पीर विषय का प्रतिपादन करने हैं विन्तु कहीं भी उनमें मीरमना या आरोपणता नहीं आने पाती। हमका एकमात्र कारण है उनकी विनम्र शैली।

हिन्दी भाषा की भूमिका 'हिन्दी भाषा' 'देवनागरी लिपि' बनमान मानिक

पत्र' भादि कुछ ऐसे निबन्ध हैं जिनमें विषय के प्रति आग्रह भादि से अन्त तक बना रहता है। उनमें विचारों की स्थापना-रीति से संसक के पांडित्य का स्वरूप धमकता है। वहाँ सीसी नबेपछात्मक एवं तथ्य-निरूपिणी है। अपने मन्तव्यों या मितास्तों की पुष्टि के लिये उद्धरणों का उपयोग किया गया है। 'हिन्दी भाषा निबन्ध' इसका प्रमाण है। उसमें हिन्दी भाषा के विकासक्रम को प्रस्तुत करने का ढंग अत्यन्त पांडित्यपूर्ण है। उन निबन्धों की विचार धाराओं में कमकड़ता है स्वस्थ दृष्टि है। स्वतन्त्रता पर व्याख्यात्मक सीसी का उपयोग हुआ है। ऐसी जगहों पर लेखक का प्रयास उद्धरणों में निहित अर्थात् सीनिय-को स्पष्ट करना होता है। ऊपर लिखित 'हिन्दी भाषा निबन्ध' में गुप्तजी ने हिन्दी विकास की रूपरेखा को प्रस्तुत करने के साथ अमीर खुमरो का हिन्दी भाषा को अवधान एवं उसकी सीसीयत विसेयताओं का जहाँ विस्मयान करना शुरू किया है वहाँ हमें उनके उक्त सीसी मेड के उदाहरण मिलते हैं। अमीर खुमरो की एक पहेली "बीसों का सिर काट लिया ना मारा ना छून किया" के अर्थ-विस्लेषण में प्रयुक्त सीसीयत सरसता और सहजता का स्पष्ट आभास हम उद्धरण से ही जाता है —

"लुसक की यह बतानुरी है कि पहेली में वह किसी तरह उस बीज का नाम भी ले लेता है जिसकी पहेली होती है। यह नामून की पहेली है। बीसों के नामून काटे जाते हैं। इसमें लुसक बड़े बाचसे से कहता है कि बीसों का सिर काट लिया न किसीको मारा न छून किया। साथ ही नामून में अर्थ भी निहित पाया कि नामून भी छीक किए।

चरित्र-वर्णन के अन्तर्गत आनेवाले निबन्धों में लेखक का भावनात्मक स्तर काफी उन्नत है। यहाँ लेखक के पात्रों से सम्बद्ध की विचारों में सहानुभूति का स्वर विद्यमान है। उन निबन्धोंमें रचनाकार की पात्रोंके जीवन एवं चरित्र को प्रामाणिक रूप में उपस्थित करने की चपट दिव्याई पड़ती है। कुछ निबन्धों का प्रारम्भ तो घटपट भावमय और काव्यात्मक ढंग से किया गया है। लेखे स्वर्ण की भाषा लेखक के भाषों की अनुपायिनी है। लयता है जैसे सीसी की सीपुर्ण प्रदान करनेवाले अपने नम्र उपादानों ने मूल भाषा लेखक के भाषों के पीछे हाथ जोड़े रखी हा। 'अविचारित ध्यान निबन्ध' में उक्त कथन की पुष्टि के लिए सीसी एक उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है जिसमें काव्यात्मक ढंग भी प्राप्त होगी।

भाषा का अद्वितीय सुवस्त्र अब नहीं है। वह बस्तुता के मिस मोहमी मंत्र पूषनेवाला अब नहीं है। जो बस सात की उमर से साहित्य मसार में उचित होकर अपनी अपार पथोति फैला रहा था वह प्रतिमासामी साहित्याचार्य अब इस ससार में नहीं है। आज भारत रत्नविहीन है साहित्य भाषा विहीन है धारम व्यास विहीन है सनातन हिन्दू धर्म अम्बिकावत विहीन है। आज भारत की वह बीज लुट गई है जिसका फिर प्राप्त होना कठिन है। चारों ओर लम्बी रात के साथ यही सुनाई पड़ता है।

इतिहास प्रसिद्ध पात्रों जैसे 'अकबर बादशाह' 'टोडरमल' आदिस्ता का प्रभुत्व स्थितिओं पर भी पुष्टी ने मिली है। उपर्युक्त निबन्धों का रूप बटन काटी पुष्ट है। उनमें तथ्यों की सुस्पष्ट योजना पर ही लेखकों की दृष्टि अधिक रही है। भाषागत सरलता उनकी अपनी विशेषता है।

अन्तिमिष्ट दीर्घ के अन्तर्गत ध्यान वाले कामधुम्ब मुक्त के ने निबन्ध है जिसका प्रकाशन समय-समय पर उनकी सप्त-मासिक पत्र-पत्रिकाओं में होता रहा है। 'भारतमित्र' में प्रकाशित उपन-कोटि के निबन्धों के दो संकलन—'धर्ममन्त्र के चिट्ठे और 'चिट्ठे और अर्थ' नाम हैं—उपलब्ध हैं। मुक्तजी के निबन्ध का समर्थ परिचय लम्बी निबन्धा से मिलता है। उनकी शिष्य भाषागत, बली मरा है। मेखर ने स्वयं अपने को एक 'धर्मदी' माना है। उन निबन्धों की आद्यत पढ़ने से वह हम लु' ही आत्मविस्मृत हो उठते हैं। यह भी मस्ती का सा अनुभव करने लगते हैं। प्रो० कल्याणमल्लजी लोका का यह कथन कि श्री कामधुम्ब मुक्त की लम्बी रचनाओं में 'हरियाने की मस्ती और कलकत्ता का स्पष्ट परिचय मिलना पड़ता है' अत्यन्त सत्य है। उनमें व्यक्ति मंगक की चेतना-नरंगों में विचार क्षेत्र की मग्युत्त दिशाओं के मजसत आसामी को स्पष्ट कर महा प्रवाहित होनेवाली अद्भुत ननिमयता मिलती है। निबन्ध ही उनके कन-निर्माण में लक्षण को स्पष्टवादी एवं विनोदी प्रभुत्वों का बोध है। सामाजिक कुरीतियों सामर्थ्य व्यापारों जैसे बातों को मेखर मेखर ने एक लम्बा विचार और सामर्थ्य पर स्पष्ट बतर्पों का प्रयोग किया है। योरोपीय औद्योगिक क्रांति के पदचान् औद्योगिक मन्मथा का विवाम हुआ है। भारत पर उमरा प्रभाव १९ वीं शताब्दी में पड़ने लगता है। यहाँ के भारतीय समाज को हम शत्रु में जघनरूप मरमता मिलता है। अब वह विचमता से अर्जित भारत को अब विचमता का एक और पढ़ा पढ़ा गाना पढ़ता है। बीमारी शताब्दी के प्रारम्भ के साथ

भारवाही समाज औद्योगिक सम्पत्ता के असामाजिक पक्षों का शिकार बन गया उसमें भारतीय संस्कृति या भारतीयता के प्रति खयडा पनपी मरीचों के द्विनों व अधिकारों के प्रति असहिष्णुता व स्वार्थपरता जगी, धन की अपेक्षम की प्रकृति बढ़ी और भोग विलास के साधनों के अधिक उपभोग व संघर्ष की एक बलवती शिफा बृद्धतर होती गई। परिणाम-स्वरूप देश में नाग प्रकार के असामाजिक और प्रभेदनापूर्ण जैसे छत्र छत्र का बाजार उपेक्षाकृत रूपसे अधिक घर्म हुआ। 'बिटु' और 'सात' सम्मन के निबन्ध उक्त जाति की विलास प्रियता अष्टाष्ट्रीय भावना और घोसा-बढ़ी के व्यवहारों का पर्दाकाश करने में अत्यन्त प्रभावपुष्ट और जीवन्त है। 'मेरे का ठूँट' 'एसोसियेशन' आदि निबन्ध इसके प्रमाण हैं। ब्रिटिश साम्राज्यवादियों द्वारा भारतीयों के प्रति किए जाने वाले अमानुषिक व्यवहार पर अपने तीव्र भावोन्मत्तों की सेना ने 'फुलरबग के नाम साहस्ता जी वा पत्र' में व्यक्त किया है। 'सिबसन्धु के बिटु' के निबन्ध साईं कर्जन की दृष्टिनीतियों का पर्दाकाश करते हैं उससे भारत विरोधी कार्यों की निम्न करती हैं और इन सबके साथ भारतीय संस्कृति सम्पत्ता जाति के प्रति केन्द्र के अन्तःकरण में अभी बृद्ध घास्वा का परिधय बैठ है। साईं कर्जन ने जहाँ एक ओर अपनी शिक्षा एवं जग-जग वैसी नीतियों द्वारा देश के सामाजिक और शारीरिक सगठन को पंथ बनाया तो वहीं दूसरी ओर 'माहीनरबार' 'बिक्टोरिया स्मृति भवन निर्माण' आदि कार्यों से उसके अवैतन्य को अनिश्चित काल तक के लिए पूर्णतया विच्छिन्न और अन्त कर दिया। भारतीय जनता के प्रति उनकी दुर्भावना किसी से छिपी नहीं रही। श्री बालमुकुन्द मुष्टजी ने अत्यन्त पटु ढंग से उसकी गिल्मी उड़ाई है और अपनी जानीय गरिमा के स्वल्प से उसके समक्ष रखा है।

जैसे निबन्धों की शिफा रचना का मुख्य आधार केन्द्र का भावप्रवण व्यक्तित्व है। उनमें विचारों की खयखयता का अभाव है अगर है तो मात्र व्यंग्योक्तिवोंकी अमनारपूर्वक छत्र। उन उक्तिवों की निगहने बड़ ही वसाम्मक ईश से उग्नियत किया है। वहीं व्याजस्मृति दोनी है वहीं प्रतीक-वैसी तो वहीं अत्यन्त मुनीनी शीतशारिक वैसी। बेमारीबुद्धवस्था और गरीबी घाति के शिवात्मक वर्णन से अल्प रचनाओं का व्यंजकता और प्रभाव प्रेक्षणीयता का अविनय परिचय दिया है। उनमें प्रयुक्त बड़ योजनायाँ से भाव पवात के घनर घापाम एक साथ स्पष्ट हो उठे हैं। घावनों का यस्यात्मक रूप

मारे रचना मित्य का प्राण लक्ष है और इससे उसे विरलत रूप प्राप्त होता है। लोकोक्तियों मुहावरों आदि के रोजक प्रयोग कलात्मक-सीसी प्रत्युत्पन्नमति मित्यहास्य (Humour) और छत्राके आदि के सम्मिश्रित प्रभावों से मंदित युष्मजी के लक्ष निर्वाहों में मायाभिम्यक्ति की विलक्षण अभिव्यंजना प्रकृत है। सहजता, सजसता रसमयता जिसके गुण हैं। यहाँ यह कह देना अप्रामाणिक नहीं होगा कि युष्मजी के समकालीन लेखकों की संज्ञा में प्रभाव प्रेक्षणीयताही इस लक्ष का अभाव है उनकी अभिव्यक्ति पठित कृत्रिम है जब कि युष्मजी की अत्यंत व्यावहारिक एवं स्वाभाविक। भारतीय जीवन के वेदनाग्रस्त एवं कष्टपूर्ण रूप की संवेदनसम्पन्न विषममय और कलात्मक रूप में उपस्थित करने की युष्मजी की सक्षम क्षेपी वा परिचय निम्नलिखित उदाहरण से प्राप्त होता है—

‘यदि किसी दिन विषममय लक्षों के साथ माई माई नगरकी बया देखने चलत तो वहाँ देखत कि इस नगर की माओं प्रजा मेड़ों और मूत्रा की मोति नड़े नड़े मोपड़ों में सेटरी हैं। उनके मास-मास सड़ी बदबू और मैले सड़े पानी के लसे बहते हैं। कीचड़ और कूड़ क डर चारों ओर नसे हुए हैं। उनके छटीयों पर मीसे-कुचके फटे-बिबाड़े लिपटे हुए हैं। उनमें स बहुनों की पेट भर अन्न और छटीर डकने की कपड़ा नहीं मिलता। माइयों में सड़ी से अकड़कर रह जाते हैं और ममी में सड़कों पर घूमते तथा वहाँ पड़ छिपते हैं। बरसात में सड़े सीस चरा में पीने पड़े रहत हैं। सारांश यह कि हरेक लक्ष की तीव्रता में सबसे धामे मृत्यु के पथ का बड़ी अनुमनन करते हैं। (बिनाई सम्पादन-विषममय के चिट्ठे)

समकालीन भारतीय जन जीवन के कष्टास्नात एवं विषममय रूपकी इसकी सक्षम अभिव्यक्ति साक्ष्य ही किसी लेखक की रचना-सीसी में प्रकट हुई हो। माइयों में ‘सड़ी से अकड़कर रह जाना’, ममी में सड़कों पर घूमना तथा वहाँ पड़ रहना’ ‘सबसे अधिक मृत्यु पथ का अनुमनन करना’ आदि पदों के द्वारा लेखक ने मृत्यु सत्य की मूर्त रूप प्रदान किया है। सामाजिक मयाय की अभिव्यक्ति के लिए इस प्रकार की सीसी में निम्न पथ अनुच्छेदों का यहाँ नद मेरा अनुमान है। समकालीन हिन्दी साहित्य में अभाव है। उपर्युक्त अनुच्छेद की बारम्बार मात्रा में प्रकट आधाराय का विरल निर्गम प्रवाह की तरह होना चाहता है।

ध्यातृस्तुति और अत्यधिक मुकीले औपचारिक सम्मोचना में ध्यातृ की प्रत्यक्षा का आभास और जातीय परिमा सम्बन्धी विचारों की पृष्ठ स्पष्टता का परिचय एक साथ ही नीचे मिले उद्धरण से मिल जाता है—

‘जिस जानि न पुरानी कोई जाति इस धराभाग पर मीनव नहीं जो हजार नाम से अधिक की ओर पराधीनता सहकर भी मुक्त नहीं हुई जाती है वह जानि क्या पीछे हटाने और ब्रह्म में मिला देने योग्य है ? आप जैसे उच्च श्रेणी के विद्वान के जी में यह बात कैसे समाई कि नाट्यकामी बहुत से काम करने क योग्य नहीं और उनको आपके मजानीय ही कर सकते हैं ? यममें बुद्धिमें विद्यामें काममें वस्तुतामें सहिष्णुतामें किसी बात में इस देश के निवासी समार में किसी जानि के आदमियों से पीछे रहने वाले नहीं हैं । (पीछे मन फेंकिये ।)

दीदी का अस्मिन् सम्बन्ध भाषा से भी होता है । भाषा विचारों और भावों की अभिव्यक्ति का साधन है । आचार्य रामन के अनुसार रीति या दीदी की विनिष्ठा भाषा के गुणों पर निर्भर करती है । आचार्यों न भाषा के तीन प्रमुख गुण—साधुता और प्रभाव—स्वीकार किए हैं । उक्ति-विविधता तथा विनिष्ठा आदि न सम्पन्न होने के लिए भाषा का गुणयुक्त होना अनिवार्य है । इस वैदग्ध्य भरी ‘अभिनि’ युक्त गुण-सम्पन्न भाषा न रचना में मोदनाय जाता है—जिस मोदनाय न किसी भी रचना का मूल तत्त्व माना है । स्तराला व स्पष्टता शक्तियों से भाषा की प्रभाव श्रेणीयता की अति प्रशंसा होती है और उसकी अर्थात् रमणीयता व्यक्तियों की उचित प्रदान-विधि पर निर्भर करती है । आचार्य क्षेमन्त द्वारा प्रतिपादित भीविष्य’ मिश्रान्त की दीदी ने सम्बन्ध रचना है । रसयोजना अर्थात् रसयोजना गुणों के अनुबन्ध भाषा-योजना आदि में भीविष्य का ध्यान यदि न रखा जाय तो रचना में प्रीति नहीं आ सकती । स्पष्ट है कि उपर्युक्त सभी साहित्यिक मापदण्डों—अविषय गम्यता दीदी न है—का मूल आधार भाषा है । विविध-रचना की भाषा में स्पष्टता जिसमें दीदी का प्रीति और भीविष्य-विषयक रूप निहित होता है माने के लिए भाषा-योजना वाक्य व व्यंजयोजना में प्रतीक मोदोदितियों महावर्तों ध्वन्य आदि के उपयोग विनियम न मिले हैं । उपर्युक्त दृष्टियों से विचार करने पर हम पान हैं कि भाषा-योजना गुणों की भाषा में नरक पूर्व व रसमोदीन स्तरों की ओर अधिक प्रभाव-रमणीयता है अधिक मागिष्यता है ।

मुपजीवी भाषाका जो सबसे मामिक रूप सामने आता है वह है वाक्य-विन्यास में उसके उचित-वैविध्यपूर्ण व अगूठे कर्पोकी नियोजना। यहाँ यह कह देना उचित होगा कि अपने वाक्य-निर्माण व भाषा-प्रयोगों में लेखक उन्नी-भैली के प्रभाव से अप्रभावित नहीं रह सका है। पर ऐसे प्रयोगों में औचित्य की सीमा का प्रतिबन्ध कहीं भी नहीं मिलेगा। व्यावहारिक समासान्त पदावलीयों से रहित मुपजी के वाक्य-गठन सरल हैं और उनमें अपेक्षित गुणों की प्रधानता है। उनमें सब प्रयोग इतने संगत और पुष्ट हैं कि उनसे भाव समझे-पड़ते हैं। यदि मुपजी के वस्तुनिष्ठ निबन्धों में वाक्य-संगठन उचित मात्रापर्यंत और मधुरता से युक्त है तो व्यक्तिनिष्ठ निबन्धों में व्यंग्य विनोद और मस्ती से पूर्ण। उनमें कहीं घटितस्य भावुकता से भरी वाक्यावलि नहीं बही बिरोधी भावों के सरस प्रयोग ह तो कहीं संबद्धताओं की मूर्तमत्ता प्रदान करने वाले वाक्य हैं। भावुकता का प्रवाह जहाँ अपनी चरम-वर्ति में रहता है वहाँ मिथित और कभी-कभी संयुक्त भावों की निपटरी छटा देखने को मिलती है। प्रत्येक वाक्य एक दूसरे से मिल कर भावधार को उठी तरह अग्रसर करता है जिस तरह परिकामन-विधि से ताप मुवाकफ पदार्थोंमें फैलता है। प्रो० कम्पाणमस सोझा के अनुसार 'मुपजी इन बृष्टि से उन समस्त हिन्दी लेखकों से घाये निबल जाते हैं जिन्हें द्विवेदी मुग में बाकी सम्मान प्राप्त था। पं० मोविन्दनाथपण मिश्र की रचनाओं में 'वाक्य विस्तार का प्रकाण्ड ताण्डव है। पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी की वाक्य-संगठना में मुपजी जैसे भावत्मक और रमणीय स्वर का अभाव है। यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि मुपजी के भावों से भाव और भाषा का अद्वैत रूप प्रकट होता है।

मुपजी की भाषा का एक दूसरा विशिष्ट पक्ष है उनमें सरमत्ता और व्यंग्यका बहुमत मेल। उसमें बड़ी मित हास्य का अभ्यस्त स्वर प्रकट होता है, बड़ी हास्य की मधुर स्वनि निबलनी रहती है और बड़ी टह्राक की विष्ट मूँज। विचारों के विवरण व भावों के घमिष्यक्ति-रम में रचना पाठका में मानविक तनाव व आरोचकता गर्वश कर है इगनिए लेखक रचना-प्रवृत्ति का बिना ध्यान दए उनमें विनोद का मजल करना चलता है। कथा-बहानी प्रतीकों तथा अनेक प्रकार के उपमाओं आदि के प्रयोग से निबन्धों को चमत्कारी रूप प्रदान करने में वाग्यमुपजी का लेखकता अप्रमत्त उन्कूट है। तब स्थानों पर लेखक की भाषा-गति का अन्वय समाना विनी क निग भी घागान है।

‘मेस का ऊट’ निबन्ध में एक पाठिविधेय पर व्यंग्यपूर्ण भाषा के प्रयोग से पाठकों में विस्मयवस्तु पुस्तक का संचार होता है। एक दूसरे निबन्ध में ‘बुलबुल’ के उल्लेख द्वारा बातें कही गई हैं। ‘ऊट’ ‘बुलबुल’ जैसे प्रयोग प्रतीकबन् हैं जिनका निर्वाह रचना में अन्त तक सफलतापूर्वक किया गया है। ‘ऊट’ प्राचीन आस्थाओं और विश्वास से युक्त भारतीयता को प्रकट करता है और ‘बुलबुल’ इस नामा-रूपात्मक जगत की वस्तुओं में मिश्रित अणुमयता को एसी प्रयोग-विधियों में हमें सांकेतिक कवच-वीथी का शीतल्य मिलता है। उपमाना के प्रयोग द्वारा सरसता और व्यंग्य के मिश्रित प्रभाव की अनुभूति पाठकों को होती रहती है। भाषा पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लेने के बाद ही कोई लेखक किसी रचना-श्रकार में यह प्रभाव ला सकता है। बालमुकुन्द मुन्त की भाषा के इस स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए निम्नलिखित दो उदाहरण प्रस्तुत होते।

(क) ‘इसमें आपके बाकस आपस में इस प्रकार टकराने हैं जैसे भूकम्प से घर के बगल या ब-इर के कबूतरे से मकान की सपरकें।’

(ग) यदि डिबदीबी होने लगे पूछने कि महाशय ! यह जो आपने पट्टनह कई बाकस आगे पीछे मियां मराठी के गोशों की भाँति जगल दिये हैं, इनका कुछ निर-निर है या लाली दिन्दी बालोंको हूरान करने के लिए आपने यह लीला रियाई है।

उपयुक्त उदाहरणों में ‘बाकस का टकराना’ ‘मट्टमट्ट’ आदि पद-प्रयोगों से उत्पन्न चर्च में निहित व्यंग्य और हास्य की सूजन-सलिल का स्पष्ट परिचय मिल जाता है।

महाशय ब लानोविनयों के प्रयोग में गुप्तजी प्रमथम्बाजी के किसी माल में कम नहीं टहरत। कई स्थानों पर तो उन्होंने उन प्रयोगरूपों में भाषा को नई अर्थवला दी है। एक भी अन्वयद आरम्भ रचनाओं में ऐसा नहीं मिलता जो महाशयों में रहित हो। इन बाकस उगी प्रभाव से बड़ गा प्रतीत होता है। ‘बाने फेंक जाना’ ‘गौरा पर बहना’ ‘दण्डा बजाना’ ‘दिस्मयी उठाना’ मर्यादा कर देना ‘हाथ की पुनयी जाना’ जैसे अल्पम प्रचलित मुहावरों को उदाहरणस्वरूप रखा जा सकता है। हास-प्रयोग की दृष्टि से गुप्तजी किसी प्रयोगशील गार्हस्थान के कम नहीं हैं। मसजुन के लगाने शब्दों के प्रयोग उनकी रचनाओं में भीतर पर्याप्त गह्रा में मिलत हैं किन्तु बहिर्मात्रगी परिणामों की तरह नहीं।

जहाँ विषय या भावों का स्वल्प सांस्कृतिक या जातीय है, वहाँ अत्यन्त परिष्कृत
रंग के सत्तम छन्द प्रयुक्त हुए हैं ।

यमुना जलान्न तरावों में बह रही थी । एस समय में एक बुढ़ पुरख एक
मय जात विष्णु को गोद में लिए, मधुरा के कारागार से निकल छूटा था । विष्णु
की माता विष्णु के उत्पन्न होने के हर्ष को मूल दृष्ट से विह्वल होकर बुढ़
बुढ़के आँसू गिराती थी पुकार कर रो भी नहीं सकती थी ।

गुप्तजी की भाषा में हिन्दी की प्रवृत्ति के समुच्चय समस्त पदों के प्रयोग उपलब्ध
होने हैं । व० गोविन्दनारायण मिश्र व उनके बर्ण के अन्य साहित्यकारों की
भाषा की तरह बीच एवं अध्यावहारिक समस्त पदों के व्यवहार से उत्पन्न
हीनीगत कृत्रिमता का पूर्ण अभाव गुप्तजी की रचनाओं में मिलेगा । उर्दू,
सपत्नी पंजाबी मारवाड़ी व बघासी एवं देशज शब्दों के प्रति भी गुप्तजी
अवहिष्णु नहीं हैं । ऐसे शब्द गुप्तजी की भाषा में धाकर अपने मूल उद्गम-
स्रोत से पृथक् हो जाते हैं । उन्हें सत्तक हिन्दी के रंग में ऐसा रंग देता है कि
वे हिन्दीक होकर उसीकी श्रीवृद्धि में सहायक हो उठते हैं । 'क्याम' 'सुमतराक'
'मीकनी' 'लुमासा' 'जकन्वे' 'तमजरज' 'जने मुरखक' 'इबारत' 'गो'
'इमुटी' 'कपी पियेटर' 'जजट' आदि प्रचलित-अप्रचलित प्रयोग हमक उदाहरण
हैं । वही वही देशज शब्दों के कारण भावामिष्कलित में अद्भुत चमत्कार आ
या है । ऊपर उद्धृत उदाहरणों में ऐसे प्रयोग सहज ही झूठे या सकते हैं ।
कनी-कनी ध्याद-बिनोद में गरी हीनी को अधिक पुष्ट बनाने के लिए गुप्तजी
की लगनी में जू और संस्तुत शब्दों के मेल से बन पर अनायास निकल पड़ते
हैं । 'नामानी उबारक' ऐसा ही एक शब्द है जिसका उपयोग व० महावीर
प्रसाद द्विवेदी के लिए सत्तक में किया है । सपत्नी इस शब्द-प्रयोग-विधि में
गुप्तजी अत्यन्त आधुनिक हैं । हिन्दी मध्य वा ऐसा प्रतिष्ठित और प्रवाह्य
रूप बाह में जाकर सरदार पूर्णमिह व व० चम्पार शर्मा 'सुमेरी' की ही भाषा
में प्राप्त होगा है । निश्चय ही गुप्तजी की हिन्दी अन्तर्गामीय हिन्दी है
छाट्ठोस हिन्दी है । बिम्बु अर्थ में गुप्तजी 'भाषा मित्र' व 'शर मित्र'
साहित्यकार हैं ।

इस प्रकार स्पष्ट बचन और ध्याद-बिनोद आदि से पुष्ट गुप्तजी की हीनी
त्रिमक निर्माण में उनका संवेदनशील अनुभूतिप्रवण हृदय उनकी
अत्यन्त परिनिष्ठित और परिमाजित भाषा आदि का पूरा योगदान है ।

उनकी सभी रचनाओं का अन्तर्ग्रह है। इस दृष्टि से वे अपने पूर्ववर्ती एवं समकालीन लेखकों से काफी भिन्न हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार गुप्तजी रीति की दृष्टि से प्रेमचन्दजी के समकक्ष जाते हैं। इसीसे उनकी विदग्धता एवं प्रयोगपटुता प्रमाणित है। निस्सन्देह गुप्तजी सच्चे अर्थों में माया-पारवी हैं रीति निर्मिता हैं और हिन्दी भाषा व साहित्य-संसार उनकी इस देव से हमसा-हमेसा के लिए बढ़ी है।

चरितलेखक बाबू वालमुकुन्द गुप्त

श्री जगन्नाथ सेठ

जीवन-चरित व्यक्ति का स्थायी स्मारक होता है। इसके निचे ऐतिहासिक सत्य अनिवार्य है। यथार्थ व्यक्ति के जीवनकी यथायथ घटनाओं का समाहार और प्रामाणिकता के प्रति अविशय बाध है इसके नित्य उत्पन्न है। इस दृष्टि से यह इतिहास के निकट पड़ता है किन्तु इतिहास सही है। इतिहास का प्रयोजन समूह से होता है जीवन-चरित का व्यक्ति से। इतिहासकार यदि दूरबीसाल वंश से समष्टिवा निरीक्षण करता है तो चरित-लेखक व्यक्ति को अनुबीसाल वंश की परिधि में लाकर देखता है।

जीवन-चरित साहित्य की ही एक विधा है। हममें रोचकता और आनन्द प्रदान करने की क्षमि के साथ चरित-भाषक की सजीव और चेतन बनाने के निचे सज्जनस्यक प्रतिभा और कल्पनाकी भी अपेक्षा है। हम दृष्टि से यह उपन्यास के निकट है किन्तु उपन्यासकार जहाँ अपने पात्रों की सृष्टि करता है, उनके जीवन में तथ्यों का आरोप करता है वहाँ चरित-लेखक का कार्य सृष्टि पात्रके अन्तर्बाह्य जीवन का अन्वेषण और उद्घाटन करना है। दोनों में उतना ही अन्तर है जितना साहित्य के सत्य और ऐतिहासिक मध्य में होता है।

मिटम लट्टे की की दृष्टि में 'जब अष्टम जीवन-चरित लिखना चायक उसना ही बटिन है जितना अष्टम जीवन का निर्वाह करना' यथार्थ जीवन चरित की बसा 'लेखन-बमारी' सभी विधाओं में सर्वाधिक मुहुमार और मानवीय है। इसके निचे चरितभाषक के प्रति महानुमति होना आवश्यक है। बाबू वालमुकुन्द गुप्त में यह महानुमति अष्टम की नीमा तक विद्यमान थी।

एमिल सड्विम ने जिस मान-विदग्धता को चरितलेखन के लिये आनन्दक
घर्त माना है वह मुत्तजी की प्रेरक शक्ति थी। जिनके व्यक्तित्व ने
उन्हें प्रभावित किया जिनके साथ उनका मैत्र हूयस का भावों-विचारों का
बा उनपर उन्होंने स्वयंप्रेरित होकर निम्ना जीवनचरित में उनकी
स्मृति को अमर बनाने का प्रयास किया। उनका त्रिषय-निर्वाचन एक प्रकार
से आत्मोद्घाटन भी है।

मुत्तजी का पटोहर के रूप में भारतेन्दु की परम्परा जितनी थी। उससे पूर्व
हिन्दी में जीवन-चरित लिखने की प्रथा ही न थी। यद्यपि 'दूरचरित' जैसे
कुछ संस्कृत साहित्य में इस विधा की स्वीकृति का निर्देश करते हैं किन्तु
वहा वस्तुपुत्र सत्यकी अपेक्षा भुक्त कल्पना और रमणीयता के प्रति अधिक
पक्षपात था। हिन्दी साहित्य में चरित के नाम पर मध्ययुगीन ब्रजगव बाठानों
और प्रसस्तिपों तथा बनारसीवास के "अर्बकचानक" के अतिरिक्त और
हिन्दी सामग्री का उल्लेख इतिहासमें नहीं मिलता। प्राधुनिकता की नव्य
चेतना के साथ साहित्य में इस नवी विधा के प्रचलन का योग भी भारतेन्दु की
ही है। उनका दिग्गज व्यापक था। साहित्यकारों के अतिरिक्त सिकन्दर
और नेपोलियन जैसे विजेताओं के सम्बन्ध में भी उन्होंने लिखा। शंकर और
रामानुज से लेकर मुहम्मद साहब और बीबी प्रतिमा तक के जीवन-चरित
को प्रकाश में लाये। यहां तक कि वैद्यराज रावण को भी न छोड़ा। उसकी
जगन्मूर्च्छनी देखनेके अभिलाषियोंको भारतेन्दु प्रभावशालीमें वह मिल जायगी।

जगन्मूर्च्छनी देखनेकी पक्षिका तो बहुत अधिक प्रचलन में हुआ किन्तु
जीवनचरित-लेखन में भारतेन्दु की शैली की ही उनके समकालीन और परवर्ती
लेखकोंने अपनाया। श्री कर्तिकप्रसाद पत्री बाबू राधाकृष्णराव पं० माधव
प्रसाद मिश्र पं० मन्नाबीरप्रसाद त्रिवेदी भुशी देवीप्रसाद आदिके माध्यम से
चरितलेखनकी जी परम्परा आज बड़ी उगीची एक कड़ी बाबू बासमुकुन्द मुत्त है।

मुत्तजी के मनुजों इतिवृत्त की—और व्यक्तित्व की भी—प्रेरक शक्ति देश
प्रेम और हिन्दीप्रेम है। देश की उन्नति साध्य है और हिन्दी साधन।
चरितलेखन की प्रेरणा भी यही से है।

उठाने नून अक्षरह लक्षित जीवन-चरित विरो। हममें अधिकांश समकालीन
व्यक्तियों में सम्बन्धित है साथ ऐतिहासिक पार्श्व से। साधारणतः जीवन
व्यक्तिता का चरित लिखना इस विधा की मायनाओं के प्रतिबल है किन्तु

मुत्तजी न पं० पीरीदल मुंशी देवीप्रसाद और मीतबी मुहम्मद हुसैन भाजाव
क महत्वपूर्ण कार्यसे प्रभावित होकर इनके जीवनकाल में ही इनके चरित मिले।
किसी की मृत्यु और सेलन-काम के बीच समय के व्यवधान की दृष्टि से
मुत्तजी के जीवन-चरितों के तीन प्रकार हैं—

१) शोक-मन्त्राव के साथ मिले गये जीवनचरित—

प० अम्बिकादत्त व्यास पं० देवीसहाय पाण्डे प्रभुदयाल
पं० माधवप्रसाद मिश्र हा केराव ! * (केरावप्रसाद मिश्र) ।

२) मृत्यु के बाद कुछ समय अतिबाहित होने पर मिले गये चरित—
पं० प्रतापनारायण मिश्र पं० देवकीनन्दन तिवारी बाबू रामवीन
सिंह योगन्धर बलु, हरबर्न्ड स्विजर, मैक्समूलर ।

३) ऐतिहासिक पुरवों के ऊपर मिले गये जीवनचरित—
अकबर बादशाह टोडरमल शेर सारी शाहस्ता खाँ ।

प्रथम प्रकारके चरित कुल से कातर हृदय की यज्ञांजलियाँ हैं। इनके आरम्भ
में चरित-नामकों के तिरोभाव की कुलद सूचना के साथ समाज की रिकनता
से उत्पन्न लोकोपद्रवास है अन्तिम अंश माधवमिश्र आनुओं से गीने हैं।
प० अम्बिकादत्त व्यास के संबंध में लिखते लिखते मुत्तजी सोच रहे थे
‘क्या लिखें उनकी निर-रिक्त बीज की आलोचना करें ? बित्त व्याकुल
हैं। घोटा से आँसू बहे चले जाते हैं। और पं० माधवप्रसाद मिश्र से छो
उनका एमा प्रम था कि ‘बाने करने करते दिन बीत जाते थे रातें उन
जाती थी गत दो साल से वह माराज थे। इस माधवजीक
‘त्यों में कभी कभी मिला करते तो बहुत—‘बन अब यही बाकी है कि
तू मर जाय तो एक बार मुझे लूब दो से धीर इस मर गय तो हम जानने हैं
कि वीर तू रोवना। आज पहली छी नहीं निछपी बात हुई ! याद करत
आँसू निकल पड़ ! अब नहीं निगा जाना ।

मामिक लोग की लेनी मिथि में लेगन ने चरितनामक क मङ्गुण जावन के
समय बिजरी माँव करना घट्टना होयी। जीवनचरित की कमीगी पर
कमन की आशा रहेही मुद्दू और सदासर्गों क प्रति अति बागी क
पावन धर्म के रूप में ही इन्हें स्वीकार करता चाहिए ।


श्री अन्धकिशोर गुप्त के पुस्तकालय में सुरक्षित ।

एमित सहजि ने जिस भाव-विद्यमता को चरितकेलन के ई
 शर्त माना है वह गुप्तजी की प्रेरक शक्ति थी। जिनसे
 उन्हें प्रभावित किया जिनके साथ उनका भेद हृदय का भा
 वा उनपर उन्होंने स्वतःप्रेरित होकर सिखा जीवन-चरि
 स्मृति को अमर बनाने का प्रयास किया। उनका विषय-निर्वा
 से आत्मोद्घाटन भी है।

गुप्तजी को भरोहर के रूप में भारतेन्दु की परम्परा मिली थी
 हिन्दी में जीवन चरित लिखने की प्रथा ही न थी। यद्यपि
 कुछ संस्कृत साहित्य में इन विषयों की स्वीकृति का निर्वहण
 बड़ा सम्पुर्ण सत्यकी अपेक्षा मुख्य कल्पना और रमणीयता
 परमाणु था। हिन्दी साहित्य में चरित के नाम पर मध्ययु
 गी प्रमस्तिमों तथा बगारसीवास के 'अर्थकथानक'
 किमी सामग्री का उल्लेख इतिहासमें नहीं मिलता।
 केतना के साथ साहित्य में इस नवी विधा के प्रवर्तन में
 ही है। उनका विभिन्न व्यापक था। साहित्यकारों
 और नेपथ्यमय जैसे विजेताओं के सम्बन्ध में भी -
 रामानुज से लेकर मुहम्मद सादिक और बीबी पान
 की प्रशंसा में भावे। यही तक कि देवराज ग
 जन्मदुःखी देनेके अभिलाषियोंकी भारतेन्दु ग

जन्मदुःखी देनेकी पत्रिका तो बहुत -
 जीवनचरित-केलन में भारतेन्दु की छैली की
 लेखने अपनाया। श्री कातिकप्रसाद सर्व
 प्रसाद विषय में भगवादीरप्रमाण त्रिवेदी
 चरितकेलनकी ओ परम्परा आगे बढ़ी उस

गुप्तजी के सम्पूर्ण कृतित्व थी—और उ
 र्विषय और हिन्दीयम है। देस की
 चरितकेलन की प्रेरणा भी यही है।

उन्होंने कुछ अल्प-रचित जीवन-चरित :
 व्यक्तियाँ  वेव ऐतिहासिक
 इस विषय की

मुनी हुई बाँटें मिलाकर उन्होंने सामग्री के अभावकी यथासंभव पूर्ति की।

सामग्री एकत्र करने से अधिक महत्वपूर्ण कार्य उसके बाद आरंभ होता है। इसके लिये सिटम स्टूडीज को मिश्रित स्थिर किये हैं—सामग्री का निर्वाचन और परीक्षण। साध ही चरितलेखक के दो कर्तव्यों का निर्देश मा दिया है—संक्षिप्तता एवं चतुर्मा-स्वातन्त्र्य। यहाँ संक्षिप्तता से उनका तात्पर्य है 'एक भी महत्वपूर्ण तथ्य की उपेक्षा किये बिना समस्त आवश्यक तथ्यों का परिचय। सर सिद्दी की ने जीवन-चरित के "अतिरिक्त परिप्रेक्ष्य" के लिये संसक्त विन्यास तथा अनिष्टक एवं अविशदास्पद दृष्टि के आवश्यक माना है। इन आचारों पर मुत्तजी के जीवन-चरितों का विवेक किया जा सकता है।

मुत्तजी की सामग्री-चयन पद्धति में चरितनायक के जन्म बच-परिचय विस्तारमात्र गुण उधारता धार्मिक प्रकृति दृष्टित्व उपलब्धियाँ रचनाएँ यु वय आदि का विमल महत्व है। अविशदास्पद चरितों में काम की मति और युग की परिस्थिति का वर्णन में विशेष रूप से प्रयुक्त हुए बिना नामक का चरित विविध किया गया है और यह उचित भी है। संक्षिप्त चरित-लेखन में युग के विषय विवरण का प्रयोजन भी नहीं है। हिन्दू धर्मकी मुहम्मद हुसैन आजाद के चरित की पटभूमि विलुप्त है। उर्दू गद्य निर्माताओं के संक्षिप्त परिचय के अतिरिक्त आजाद के बच-परिचय के संदर्भ में अंग्रेजों के पाताकिट अत्याचार का जघन्य विषय भी उस पर घरित है। इनसे आजाद का महत्व तो बढ़ना ही है उनका व्यक्तित्व भी उभरता है।

निर्वाचित सामग्री को सजाने की पद्धति प्रायः निम्नलिखितार या विविधमानुसार या ऐतिहासिक है। नही कही बीच-बीच में चरित को विचारमगले छोटे-छोटे प्रसंगों का भी उपयोग हुआ है। आरम्भिकता का स्पर्श भी इपर उपर मिलता है। लेखक के व्यक्तित्व की छाया सर्वत्र है। चरितों के आरंभ में नही अलंकरण और रूपक की छटा है नही सीधो-साधी जन्म और परिचय की सीनी नही हिमी घटमा का नाटकीय प्रस्तुतीकरण या कोई प्रिय उक्ति है तो नही महत्व प्रगोशक या प्रचस्तिमूलक भूमिका नही दोष की कानुन अभिव्यक्ति है तो नही नाक की वरग विह्वलता। सामग्री

जीवित व्यक्तियों के तथा दूसरे और तीसरे प्रकार के चरित-लेखन के पीछे तीन भिन्न उद्देश्य हैं — (१) चरितनायक की स्मृति को सुरक्षित रखना (२) हिन्दी-सेवी तथा अन्य विद्यालयियों के महत्त्व में हिन्दीभाषियों को परिचित कराना (३) चरितनायक के जीवन के विशेष पक्ष का उद्घाटन करना । प्रथम वर्ग के अन्तर्गत पं० प्रतापनारायण मिश्र पं० देवकीनन्दन तिवारी बाबू रामजीन मिह मीनजी मुहम्मद हुसैन जाज्ज और खेम छात्री के जीवनचरित हैं । द्वितीय वर्ग के अन्तर्गत पं० गोरीदत्तजी मुनी देवी-प्रसाद कोपेन्द्रकाष्ठ बसु, मैक्समूकर और हरबर्ट स्पेंसर के तथा तृतीय वर्ग में बकबर, साइस्ता खाँ और टोडरमल के ।

जीवनचरित मिलने में सामग्री का अभाव बहुत बड़ी बड़ियाई उबरिफ्त करता है । युक्तजी के सामने भी यह सबसे बड़ी समस्या थी । पं० प्रतापनारायण मिश्र से संबंधित बहुत-सी सामग्री पाण्डे प्रमुखपाल की मृत्यु के साथ अमम्य हो गयी बहुत सी बाबू रामजीन मिह के निधन के साथ । पं० देवकीनन्दन तिवारी और जाज्ज संबंधी सामग्री के तो अस्तित्व का भी कहीं पता न था । किसी को क्या पड़ी थी सिर झपाने की । सेमक की ऐसी सामाजिक उपेक्षा का युक्तजी को शोक था— “हिन्दी के बुद्धिमान सेमक को जाय न तो कंपाली में रखा पर हिन्दी के प्रेमी भी उसे गुमनामी के हवाले करते हैं यह बड़े ही आक्षेप की बात है ! जाज्ज के संबंध में तो कातर होकर उन्होंने लिखा था—“घात बेदर्दी ! पूछने पर कोई जवाब तक नहीं देना । यह (जाज्ज) अगर इन बरन मेरे दिन की बेनाकी जान मरने तो नव अपनी शिन्दपी के हावात मिलकर भेज देते और अपना ताजा बीजे निचवाकर भेज देते चाहे उन्हें फोटो गिचवाने का मौक भी न होना । अगर उनके सागिरी और उनके नाम भेजवानों ने मुझे बिम्बुम मायूस किया ।

मेजिन ने मायूस हुए नहीं । सचक परिश्रम और अध्यवसाय से सामग्री एकत्र करने लगे । पं० प्रतापनारायण मिश्र के संबंध में उन्होंने ‘प्रताप-चरित’ न सहायता की पं० देवकीनन्दन तिवारी के संबंध में पं० दासदत्तन मट्ट ने सहायता मिया जाज्ज के संबंध में बड़े बज्जों की सेवा में उपस्थित हुए । अन्य व्यक्तियों के संबंध में भी वे निश्चय नहीं थे । और इन तरह जो कुछ उपलब्ध हुईं उनका साथ छापी व्यक्तित्व जानकारी और

मुनी हुई बालें मिलाकर उन्होंने सामग्रीके अभावकी यथासंभव पूर्ति की।

सामग्री एकत्र करने से अधिक महत्वपूर्ण कार्य उसके बाद आरंभ होता है। इसके लिये सिटम स्टुडीने दो मित्रात्मक स्थिर क्रिये हैं—सामग्री का निर्वाचन और परीक्षण। साथ ही चरितसेत्सक के दो कर्तव्यों का निर्देश मा किया है—संक्षिप्तता एवं चेतना-स्वातन्त्र्य। यहाँ संक्षिप्तता से उनका तात्पर्य है, “एक भी महत्वपूर्ण तथ्य की उपेक्षा किये बिना समस्त आवश्यक तथ्यों का परिचय। सर सिद्दीनी भी ने जीवन-चरित के “अतिथय परिप्रेक्ष्य” के लिय संक्षिप्त विम्यास तथा घनिकृत एवं अविवादास्पद दृष्टि को आवश्यक माना है। इन आचारों पर मुत्सजी ने जीवन-चरितों का विवेचन किया जा सकता है।

मुत्सजी की सामग्री-चयन पद्धति में चरितनायक के जन्म वय-परिचय शिक्षा स्वभाव मूल उदारता धार्मिक प्रवृत्ति दृष्टिक उपलब्धियाँ रचनाएँ मृत्यु वय आदि का विषय महत्व है। अधिकतर चरितों में काम की प्रति और युव की परिस्थिति के वर्णन में विशेष रूप से प्रवृत्त हुए बिना नायक का चरित विविध किया गया है और यह उचित भी है। संक्षिप्त चरित-लेखन में युव के विषय विमल का प्रयोजन भी नहीं है। किन्तु मौलवी मुहम्मद हुसैन आजाद के चरित की पन्नामि विस्तृत है। उन्हें पद्य निर्माताओं के सघिन परिचय में अतिरिक्त आजाद के वय-परिचय के संदर्भ में ध्वजों के पाण्डित अत्याचार का जघन्य चित्र भी उस पर प्रस्तुत है। इससे आजाद का महत्व तो बढ़ता ही है उनका व्यक्तित्व भी उभरता है।

निर्वाचित सामग्री को सजाने की पद्धति प्रायः निम्नलिखितार या विविधमानुसार या ऐतिहासिक है। वही वही बीच-बीच में चरित को निपारनेवाले छोट-मोटे प्रसंगों का भी उपयोग हुआ है। भारतीयता का स्पर्श भी स्वर उभर मिलता है। लेखक के व्यक्तित्व की छाव सर्वत्र है। चरितों के धारंभ में वही अलंकरण और रूप की छाव है वही सीपी-साधी जन्म और परिचय की ध्वनी वही रिमी बटना का राष्ट्रीय प्रसूनीकरण या कोई प्रिय उक्ति है तो वही महत्व प्रणिपादक या प्रगतिमूलक भूमिका वही शोक की आहुत अभिव्यक्ति है तो वही शोक की वस्त्र विह्वलता। सामग्री

संयोजन का हन बहुत सुन्दर है। उसमें संयति है कथ्य कथम-यैसी और उद्देश्य की अवस्थिति है। कृपस विलपी की प्रतिभा का परिचय सर्वत्र मिश्रता है। सरोव में बिग्यास सविमल है। सामग्री-व्ययन में कही अवांछित तत्त्वों का समावेश नहीं हुआ है, केवल सगता है जैसे कुछ बांछित और आवश्यक बातें छूट गयी हैं।

जीवनचरित में सम्पूर्ण जीवन का सर्वांगीण रूप उभरना चाहिये। सर्वांगीणता यदि संभव न हो तो कम से कम जीवन के महत्वपूर्ण पक्षों और ऐस रोचक प्रसंगों की व्यवस्था करना अपेक्षित नहीं जो चरित की रीखाओं में रंग भरते हैं। गुप्तजी चरितनायकों के व्यावहारिक जीवन की उपसम्पत्तियों से प्रभावित है उनकी आर्थिक विरासतों पर भुक्त है किन्तु उनके पारिवारिक जीवन के प्रति जीवन के व्यक्तिगत पक्ष के प्रति प्रायः मौन है। उनके मस्तिष्क के एक ही पक्ष का उद्घाटन कर समुष्ट हो जाते हैं। उनके हृदय में प्रवेश करने के बरमे देखसी स ही प्रतिभा की प्रणाम कर लेते हैं। चरितनायक के वैवाहिक जीवन की ओर उन्होंने ध्यान उठाकर भी नहीं देखा। इन्हे उस युवकी वैयक्तिकता का परिणाम समझा जाय या उस जीवन की धमि जना का अभाव ? केवल हृदय स्वयं के अविवाहित रह जाने के कारणों की मनोरञ्जक घर्षा है और वह प्रसंग अपनी रमणीयता में जीवनचरित का एक सुन्दर अंश है।

म्याहू रूप की सुदीर्घ अवधि के बाद बिन स्नेह-व्यथाभाजन का जीवनचरित किन्नर में गुप्तजी प्रस्तुत हुए उनके संबंध में सामग्री का अभाव होने पर भी उन्हें यह तो विदित होया कि वे इलाहाबाद कांग्रेस अधिवेशन में वातगुरत प्रतिनिधि बनकर गये थे उन्होंने कानपुर में नाटक-नमाशो नीच हाथी की और हृदय एक कृपाम अभिनेता थे। स्त्रीपात्र का अभिनय करने के लिये गिता में मुख मुकुटान की अनुमति माँगना क्या जीवनचरित के लिये रोचक और व्यंग्य को आलोचित करनेवाला प्रसंग नहीं है ? दृढ़ बर्तन तब त्रिमये मेनक का चौबीस घंटों का नाच रहा त्रिमये "रममाच और व्यवहार को एक एक बात मूर्तिमान मध्मुर दिखाई देती है उनके रममाच और व्यवहार का मर्म रूप विचित्र करना क्या जीवनचरित में अपेक्षित नहीं है ? त्रिमये नवय में गुप्तजी स्वीकार करते हैं कि "उनकी गिम्नी गी को मेजर उनकी जीवनी मिली जाती है। उनकी नाट्यिक कृतिओं

और उपलब्धियों का उत्प्रेक्ष्य तक न करके केवल यह कह कर उनका चरित उन्होंने समाप्त कर दिया कि 'हिंदवी यह कैसी जानते थे यह बात यहाँ नहीं बताई जा सकती। पं० देवकीनन्दन तिलारी की भी एक पुस्तक की कुछ चर्चा करके रोप हो पुस्तकों के संबंधमें उन्होंने सिर्फ इतना ही कहा कि "हम किसी दूसरे लेख में इनकी बात कहेंगे।" "कवियों के जीवन चरित" में चरितनायकों के साहित्यिक कृतित्व पर समुचित विचार न करने के कारण इंग्लैण्ड में जीवनमें जैसे व्यक्ति की भी कड़ी आलोचना हुई थी।

इस दृष्टि से लेख सारी मुन्शी देवीप्रसाद और बिशेषकर मौलवी मुहम्मद हुसैन आजाद अधिक भाव्यछानी हैं। लेख सारी के चरित में उनकी तीनों पुस्तकों का संक्षिप्त परिचय है और मुन्शी देवीप्रसाद के चरितों की पूरी सूची उर्दू विभाग और हिन्दी विभाग के अन्तर्गत दी गयी है। आजाद द्वारा सौक में लिखी सभी पुस्तकों और पंजाब के गिला-विभाग के लिये लिखी गयी पुस्तकों की विलुप्त छानिदा मिलती है। आजाद से लेखन विषय प्रभावित था क्योंकि 'उनका बही कसम 'आवाहवात' और 'औरतें लयाल' मिलकर कजला को ईश में डाल सकता है और बही कसम उर्दू की पहिली और मोटी सोरी मिलकर छोटे-छोटे बच्चों को हँसा और चुप कर सकता है। उनकी इस 'भात खूबी को प्रकाश करने के लिये उर्दू का शायरा उर्दू की पहिली शिर्का और दूसरी शिर्का से लम्बे-लम्बे पर गुस्सा उठारता भी रिये गये हैं। यहाँ लेखक का मन रमा है।

मुन्शी के जीवन-चरितों में मायकों के केवल मुण्डों का ही निरखन हुआ है उनकी बुद्धियों का प्रति लेखक मौन है। मित्र चरित-लेखकों की दृष्टि में यह रोप है। 'अमुण्ड जानसन की जीवनी के रचयिता जम्म जानसन ने कहा था "और वह (जानसन) बीना ही बुद्धियोंवर होता जैसा वह बन्गुन था क्योंकि मैं उसका प्रभाव में भरा मुण्ड-कीन करता नहीं बल्कि उसके जीवन की परबद्ध करना चाहता हूँ जो उसके महान् और छोटे होनपर भी लक्ष्यपूर्वक नहीं समझा जाना चाहिये। प्रत्येक बिज में प्रभाव का माय ही माय छाया का होना भी बाध्यता है। मुन्शी के नाम कावा नहीं कर सकते। उनकी केवल मुण्ड-दर्शन करने की एकायी प्रकृति उन

बीच दुष्टियों के मध्यगत जा जाती है जिससे सर सिद्धी ली ने चरित
केन्द्र को सर्वत्र एहं का परमार्थ दिया है।

दोल सारी के चरित में गुप्तजी ने लिखा है 'जिसकी कविता की इतनी बूम
है जिसका दैत-दैद्यान्तर में इतना नाम है उसकी सकल सूरत कैसी होनी
ऐसा दिवार हरेक पड़े-लिखे आदमी के भी में उठता है। इसी से बड़ी
तमाश से सारी की आकृति प्राप्त की है। एक हाथ में तबरा है दूसरे
में कलकोल।' पाठक की इच्छा और जिज्ञासा को वे कुछ समझते थे,
किन्ति केवल छाया बिज से जीवन चरित का प्रयोजन सिद्ध नहीं होता।
सबसे लिये शब्द-विन्यास चाहिये। ऐसे बिज भी केन्द्र ने लीये हैं। साठ साल
के 'हमके फूलके चेहरे पर झुर्रियों वाले पं० वीरपत जी का दो रेशमों
का बिज बोल पड़ता है। पं० देवकीनन्दन तिवारी का बिज अधिक साफ है—
'सम्मे पठते आदमी ने रंग साबना और उमर डलती हुई। अपनी
बनाई पोबियों की कठ्ठी अंगल में रखते थे, उनको बेचते और बाँटते भी
जाते थे। एक मोटी 'कमरी' पहने हुए वे सिर पर एक पोत बड़ी भड़ी
टोपी भी जो उस प्राप्त के पुरानी जाल के बाइल बड़पा पहना करते हैं।
योबेन्द्रचन्द्र बसु का भी बिज है, किन्तु इतना सुन्दर नहीं। बसु छव पाशों
के शब्द-विन्यास प्रस्तुत करने का कोई प्रयास नहीं हुआ है। यह भी एक त्रुटि
है। माँसे हूबन की जापा बोलती है नाक की बनावट अस्थिरता का
परिचय देती है चेहरे की आकृति और रेशमों चारित्रिक विशेषताओं का
संकेत करती है। इन सबके समन्वित रूप में व्यक्ति के अन्तर्बोद्ध जीवन
का शब्द-विन्यास दिया जाता है। इनका उद्घाटन चरितलेखक के
निचे आदर्यक है। शायद इसीलिये एमिल लुहिय ने कहा था कि 'नायक
के शब्द-विन्यास के बिना किसी जीवनी को जीवनी ही नहीं कहा जा सकता'।

चरित-लेखन की सामग्री के रूपमें गुप्तजी ने चरितनायक के आत्मचरित
को विचार महत्त्व दिया है क्योंकि 'अनुपम की चितनी ही बातें और किन्ने
ही बिचार ऐन है जिसकी यह स्वयं ही मनी मर्ति जानता है और सित
तबता है'। कुछ इसी तरह का मत डॉ० सिमुल जॉनसन का भी है।
— 'एक ही तरह के आत्मचरित का उपयोग किया है। पं० प्रताप

नारायण दिय का आत्म-चरित तो उनके जीवनचरित का एक प्रमुख संघ और बहुत कुछ आकार ही है। किन्तु घर सिङ्गी की इस प्रकार के उपयोग के विरोधी है। उनका तर्क है कि 'जीवनचरित-लेखक की मानसिक प्रक्रिया में जो मुख्यतः वस्तुनिष्ठ है, और आत्मकथा-लेखक की मानसिक प्रक्रिया में, जो मुख्यतः व्यक्तिनिष्ठ है बहुत बड़ा अंतर होता है। यों बाँसबेल ने भी कागसन की जीवनी में उनके पत्रों और संवालों को उद्धृत किया है किन्तु वही उनका सीमित उद्देश्य चरित्रनायक के 'व्यक्तिगत की एक छलक' दिखाना भर है।

छोटी-छोटी घटनाएँ, साधारणतः तुच्छ समझी जानेवासी बातें कभी-कभी जीवन पर अपनी सघिड़ छाप छोड़ जाती हैं। मनुष्य के व्यक्तित्व का उभारने में प्रायः ऐसे ही प्रसंग सहायक होते हैं। चरित-लेखन के संदर्भ में इन्हें विधिपट्टानुसक प्रयोग कहकर सिटन स्टुडी ने इनके प्रयोग और महत्व पर विशेष बल दिया है। मुन्शी ने भी ऐसे प्रसंगों का कहीं कहीं उपयोग किया है। मुन्शी इन्टरमिडि के पृष्ठों पर कि 'चरसी कहीं तक पड़े हो प्रताप ने कहा दिया—'छोड़फुल इसलाम और 'पादामे इसलाम' तक। मुन्शीजी मुनकर हँस पड़े। हँसने का कारण यह था कि उसकी बीवी चरसी को पेटियाँ बही थी जो मुन्शीजी ने मुसलमानों के उत्तर में लिखी थी।" एक छोटी सी बात से मिश्र जी की परिहासप्रियता और प्रत्युत्पन्नप्रवृत्ति का कंठा सुन्दर निदर्शन हुआ है। ऐसी ही प्रसंग चरितनायक के व्यक्तित्व की झलक दिखाकर उसके आत्मीय संबंध स्थापित करने में सहायक होते हैं। पं० देवकीनन्दन तिवारी की लेखनशैली का परिचय भी एक साधारण सी बात से मिल जाता है। वे चरित्र ने किन्तु बड़े-बड़े बंडितों और उपदेसकों ने जहाँ महाभारत से आने-जान का बाड़ा लिया था वहाँ उन्होंने नहीं लिया। कहा 'रानी तरह काय बल वाला है। ऐसे बानों में बाड़ा लेना मैं बसम नहीं करना। हर्बर्ट स्पेंसर का तो बुरा चरित ही ऐसे प्रसंगों में मिलता है। प्लाउट विचार में बाबा पढ़ने के भय से बालकिल को भी अरने पढ़ने के घर का टिकाना न बनाया बाबा के घर से भागकर राह में कहीं बिना रुके बहते दिन ४८ मील दूरीरे दिन ४७ मील और तीसरे दिन २० मील चल कर चरनी माँ

के पाठ पहुँच जाना आदि बातों से उनकी चारित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश पड़ता है। आचार के पारसी में वा-मियाकत होने के बारे में भी एक पन्ना है। किन्तु ऐसे सार्थक प्रसंग यहीं तक सीमित हैं। अन्य चरित नामकों के जीवन की ऐसी झलक दिखाने का कोई आग्रह नहीं दिखाई देता।

परिचय देने के उद्देश्य से जो चरित मिले मये हैं उनमें पं० गौरीशत जी का महत्त्व उनके एकनिष्ठ नामची-संचार के कारण है। वहाँ "नामची का प्रचार करना काले फत्तर पर पेड़ उगाने से कम नहीं है। ऐसे मेरठ शहर में नामची फैलाने वाले पण्डित गौरीशत जी की पूजा करने को क्रिश्चन जी न चाहेंगे ? मुसी बेबीप्रसाद ने मुसलमानी समर्थ के लुप्त होते हुए भारतीय इतिहास का पुनरुद्धार किया है। योगेश्वरचन्द्र बसु की प्रतिभा व्यावसायिक बुद्धि व्यवहार-कुशलता और पत्रकारिता के क्षेत्र में उनकी उपलब्धियों का उत्सव कर हिन्दीभाषियों को उनसे कुछ सीखने समझने की प्रेरणा दी गयी है। हरबर्ट स्पेंसर के चरित के माध्यम से लेखक बनमाना चाहता है कि विद्वान क्या चाहते हैं और उनका इश्वर कैसा होता है। वेदों का उद्धार करनेवाले संस्कृत-सेवी भारद्वाजमी मैक्स मूलर के जीवन और ज्ञान का भारद्वाजियों के लिये विशेष महत्त्व है। 'विनायक बातों को चाहे मैक्समूलर जैसे लोग मिल जायें, पर हम भारत वासियों को हमारी देववाणी संस्कृत का आदर करनेवाला मैक्समूलर न मिलेगा।"

ऐतिहासिक चरितों के संबंध में प्रकाश उठ सकता है—इतिहास के पृष्ठों से अन्धमुष्ट और अमोक्ष प्रणय और पिशाची को न लेकर अफसर पर मिलने का तात्पर्य ? और इतिहास की परम्परा में मत्ता घाइस्ता लों का क्या महत्त्व ? निश्चित एक जान स्मरणा रमणी चाहिये। युष्मती के सम्पूर्ण पद्य में कुछ भी ऐसा नहीं है जो प्रयोजन-विहिन न हो। वे एक व्यापक बेसमस्त थे। जिस वाक्या ने उन्हें विश्वसम्पु के विद्वत् मिलनेकी प्रेरणा दी उनी भावना ने अन्धकार और घाइस्ता लों की ओर भी उन्हें सम्पुत किया।

अन्धकार पर मिलने का एक और कारण भी था। उस समय बाइबल की विपणनवापसी मताने की एक योजना थी। बंब-विनाशक के कारण यह योजना

तो पूरी न हो सकी फिर भी मुफ्तजी ने अकबर का चरित लिखा। अकबर के समय देश कितना समृद्ध था और धर्मों की स्थिति कितनी हीन थी लेखक के समय तक देश की स्थिति कितनी दमनीय हो गयी थीर धर्मों के बरबादारी शासक बन बैठे — इस विरोध को उभार कर सामने रखने के लिये लेखक ने अकबर के समय की जीवनोपयोगी वस्तुओं के भाव पूरे एक पृष्ठ में फैल कर कहा है “स्वप्न मानूम होया कि जिस भारतवर्ष में अब हर साल अकाल और अन्न के लिये हाहाकार रहती है, वह कभी इतना सुखी था। इस विरोध को उभारने के लिये ही जार्ज ग्रुवरीका बलात्त धीर अकबर के नाम लिखे गये रानी एलिजाबेथ के विनयबोधिम प्रार्थनापत्र का वित्पुत्र उद्धरण देते हुए लेखक ने शुरुब होकर लिखा है और। उस समय के भारतवर्ष और आज के भारतवर्ष में कितना अन्तर है। अंग्रेजों के उस समय के प्रताप और आज के प्रताप में कितना अन्तर है। उस समय बिलायत की रानी ने भारत के बादशाह से अपने कई जायमियों को मुक्तपूर्वक दरबार में हर्षकृता है।

शाहजादा शां के जीवन के भी प्रायः उतने ही धंध को चरित में महत्त्व मिला है जितने का अंग्रेजों से संबंध है। अंग्रेजों की कूटनीति और स्वाधपराता के विरोध में शाहजादा शां की उदारता और प्रजावत्सलता का निदर्शन हुआ है। पचास वर्षों से चलता हुआ अंग्रेजी व्यापार शाहजादा शां के शासनकाल के अन्त में एकदम जड़ से उखाड़ दिया गया। “पर देसी प्रजा उने बहुत बाध की बादमार में समने डाके के नगरद्वार बनवाये और उन पर निग्र दिया था कि जब तक कोई हाकिम ऐसा सत्ता अनाज न कर दे इस द्वार से कभी न प्रवेश करे।

चरित माहिय में टोडरमल ही ऐसा मान है जो एक वर्ष विग्रह के नियम निग्रा प्रणीत होता है। इसमें हुन्दी का स्वरूप सफा, बीबरी माहिकार के लक्षण, बही-नामा निशने की विधि तथा व्यापार-नीति की और भी कितनी ही बातें हैं। बिापना यही है कि टोडरमल ने व्यापार-क्षेत्र धर्मों में बांटा है। १०

रबीसहाय के प्रसंग में उनके भ्रान्तपुत्र के प्रति केवल का घापीरक्षण—यह
 पिता की भाँति कौलमान पण्डित होकर मारवाड़ी जाति का यश बढ़ावे—उत्त
 युग की जातिबद्ध दृष्टि का परिणाम है। लेकिन ऐसे उदाहरण विरल ही हैं।

एमिलेष्ट बिक्टोरियस की प्रस्तावना में स्ट्रुंबी ने यह क्षोभ प्रकट किया था
 कि इंग्लैण्ड में पंडित की भाँति महान् जीवन-चरितों की परम्परा नहीं है।
 चरितलेखन की सुवीर्य परम्परा को बाह्य स्थिर किये गये आलोचना के मानक्यों
 की ऊँचाई से उसने यह बात कही थी। उसी ऊँचाई से यदि जीवनचरित की
 पहली पीढ़ी को बेसा बाय तो स्वभावतः वह बहुत छोटी दिखाई देगी, उसकी
 उपलब्धियाँ छिन जायेंगी म्यूनताएँ ही अधिक उभरेंगी। गुप्तजी हिन्दी के
 चरितलेखकों की पहली पीढ़ी में ही थे। युव की उपलब्धियाँ और म्यूनताएँ
 उनके साथ ही युग की सीमाएँ उनके सामने थी। जागरूक ईशमस्त, सचेतन
 पत्रकार और द्वितीय सेवा के बंधी होने के कारण उनके कर्तव्य भी बहुमुखी थे।
 ऐसी स्थिति में जीवन-चरित के लिये आवश्यक प्रभूत सामग्री एकत्र करने के
 लिये अपेक्षित समय का उनके पास अभाव हुआ स्वाभाविक था। और केवल
 एक ही व्यक्ति का चरित मिल कर उनके कर्तव्य की इति नहीं होती। विविध
 क्षेत्रों में अपनी सैलानी का चमत्कार दिखाते हुए भी उन्होंने अत्यल्प व्यक्तियों
 की स्मृतियों की दायों में पिरोया। यह समष्टि-साधना व्यापक और उबार
 दृष्टि का परिणाम है। इसी परिप्रेक्ष्य में उनके जीवनचरितों के महत्त्व को
 समझना ही संभव है। इन चरितों में विद्या की गरम उपलब्धियाँ नहीं हैं
 किन्तु जाने बानी पीढ़ियों की उपलब्धियों के लिये इनमें साधना हुई है। इन
 साधना की दृष्टि से उनमें निहित उद्देश्य की दृष्टि से, प्रत्येक प्रवृत्ति की दृष्टि
 से जीवन-चरित-लेखन में उनका अवलोकन अपनी आरम्भिक प्रयत्नावस्था में भी
 गौरवान्वित है।

हिन्दी आलोचना को श्री बालमुकुन्दगुप्त की देन

श्री विष्णुकान्त झांसी

“आलोचना की रीति अभी हिन्दी में जमीनजि खापी नहीं हुई है और न लोग उसकी आवश्यकता ही को ठीक-ठीक समझते हैं। इससे बहुत लोग आलोचना देखकर बचप जाते हैं और बहुतों को यह बहुत ही अग्रिय लगती है। यहाँ तक कि जो लोग स्वयं इस मैदान में कदम बढ़ाते हैं अपनी आलोचना होते-होते देख कर वही घुँसक हो जाते हैं। इससे हिन्दी में आलोचना करना सिद्धे छतों को छेड़ सेना है। खोजने वाले को चाहिए कि बहुत ही जिदों के इंसान होने के लिए समुत्त रहें।”^१ ये पंक्तियाँ बाबू बालमुकुन्द गुप्त ने १९०६ ई० में लिखी थीं। हिन्दी आलोचना की प्राकृतिक परिस्थिति इनसे बहुत स्पष्ट हो जाती है। वास्तव में जीजा बा० रामचन्द्र गुप्त ने लिखा है “हिन्दी साहित्य में समालोचना पहले पहल केवल गुण-दोष वर्णन के रूप में प्रकट हुई। उस पर भी तुर्ग यह था कि गुण अवस्थागत रूप से कम बताये जाते थे दोष ही व्याप्त विनाये जाते थे। स्वाभाविक या इसके चलते आलोचना न केवल अग्रिय हो बल्कि स्थितिगत समझने की वृद्धि का भी हेतु बने। यह परिणाम दुर्भाग्यजनक है किन्तु उत्तर भारतमें गुण की हिन्दी आलोचना में इस अनपेक्षित लक्ष्य की उपस्थिति को धक्कीकर नहीं दिया जा सकता। भारतमें गुण की विरासत आलोचना के क्षेत्रमें मुख्यतः पं० बालकृष्ण महोदय पं० बदरीनाथयण चौधरीके प्रयासों तक ही सीमित थी। जाया सम्बन्धी म्यूनगार्ड एवं अनुप्रास अनुवाद सम्बन्धी पुटियाँ आदि ही आलोचकों द्वारा मुख्यतः विवेच्य जानी जाती थी। फुटनर्गों के परिचय भी प्रकाशित होते रहते थे। उर्दू में आबाद के आबेइमान और हासी के ऐरीदायरी के मुकद्दमे से आलोचना की धमि कुछ

धार्मिक विस्तृत हो गयी थी। नवजागृत साहित्यकार अंग्रेजी से भी प्रेरणा ग्रहण करने लगे थे। हिन्दी साहित्य के विकास के समानान्तर ही आलोचना के विकास की भी ऐतिहासिक आवश्यकता का अनुभव किया जा रहा था। भारतेन्दु युग के ठीक बाद जिन महानुभावों ने हिन्दी आलोचना को समृद्ध करने का प्रयास किया उनमें पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी पं० नगार्प्रसाद जमि होत्री पं० मोहिन्दरामायण मिश्र बाबू बालमुकुन्द गुप्त बाबू काममुन्दर राय मिश्रबन्धु आदि प्रमुख हैं। ये विद्वान् भारतेन्दु युग के संस्कारों में पले थे और समय अपने युग के अनुरूप भारतेन्दु युग की चिरसत का विकास कर रहे थे। भाषा सुधार प्राचीन-नवीन-संसाहित्य के विस्तृत परिचय द्वारा हिन्दी लेखकों और पाठकों की अभिरुचि का संस्कार औरसौम्यता प्रविष्ट के प्रति दुर्ग आभावाद का प्रचार नवीन लेखकों को प्रोत्साहन देकर नवीन विपरीता संभार आदि ही उनके प्रधान लक्ष्य थे। अवश्य ही यह कहा जा सकता है कि इतने में ही उन्मत्कोटि की आलोचना का उत्तरदायित्व पूर्ण नहीं हो जाता किन्तु यह भी सत्य है कि इस कुछ भी के बिना हिन्दी की परवर्ती आलोचना इतनी सतम और सघन नहीं हो सकती थी।

बाबू काममुकुन्द गुप्त मुख्यतः पत्रकार और निबन्धकार थे किन्तु आलोचना के क्षेत्र में भी वे अपने युग के अन्यतम महारचियों में से एक थे। उनकी पहली उपलब्ध आलोचना पं० भीमर पाठक के 'ऊँच नाम' की है जो 'बोहेनूर' (उद्गु साप्ताहिक) में १८८८ ई० में प्रकाशित हुई थी। स्मरण रहे कि उस समय भारतेन्दु के स्वयंवास की कुल चार वर्षे हुए थे तथा पं० बालकृष्ण मट्ट और पं० बहरीनारायण भीमरी की संयोगता-स्वयंवर की महालोचनाओं की निष्के कुल दो वर्ष बीते थे। यह भी उल्लेखनीय है कि डा० उदयभानु मिश्र के अनुसार पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी की कुमारसंभव भाषा की आलोचना १८९६ ई० के आरम्भ में 'काशी पत्रिका' में प्रकाशित हुई थी।^१ संभवतः यही उनकी निष्की पहली आलोचना थी। इससे यह साफ हो जाता है कि बाबू बालमुकुन्द गुप्त हिन्दी आलोचना की नींव डालने वालों में एक थे।

गुजराती के व्यतिरिक्त में गरम आलोचक के अनेकानेक गुण थे। वे थे अपने साहित्य के धनी के गर्वज उनके बतनाम के नियन्ता और उनके प्रविष्ट के

धातुधान् रचयिता । प्रो० आजाद के आबेह्वान स धनुप्रति होकर
 वे हिन्दी साहित्य का उसी प्रकार का इतिहास लिखना चाहते थे । उसके लिए
 उन्होंने सामग्री जटानी शुरू कर दी थी और हिन्दी भाषा की 'भूमिका' तथा
 'हिन्दी भाषा' दीर्घक उनके लेख उस इतिहास के आरम्भिक अंश के प्राथम
 समझे जाने चाहिए । सौभाग्य से उन्हें पं० प्रतापनारायण मिश्र तथा पं०
 दुर्गाप्रसाद मिश्र जैसे मुख्यमार्गदर्शक तथा पं० मदनमोहन मालवीय पं०
 महावीरप्रसाद द्विवेदी पं० दीनर पाठक पं० शीतलदास अर्मा पं० माधवप्रसाद
 मिश्र आदि जैसे पुरस्कार राजनीतिक साहित्यिक एवं सामाजिक सहयोगी प्राप्त
 हुए थे । इन सबके साथ निरन्तर ही वे अपने समय के हिन्दी साहित्य की गति
 विविध का निर्वहण कर रहे थे । अपने समय में हिन्दी प्रवेश में भारतीय पुन
 जागरण के पुरोधा वे ही लोग थे । ऐसी ही सांस्कृतिक सामाजिक राजनीतिक
 जाचिर हमबलों में मुक्तजी न केवल परिचित थे बल्कि उनकी स्वस्थ रूप देने
 की योजना करने वाली धारियों के साथ थे । अपने देश के अतीत वर्तमान और
 भविष्य में प्रतिबद्ध रहने के कारण ही उनकी रचनाओं में दुःखी चिन्तनमत्ता
 उभारना तथा रचनात्मकता का लक्ष्य था । उनका साहित्य-बोध ठीके स्तर का
 था और वे प्रतिष्ठित साहित्यकारों की पुर्वसूत्र तथा नये लेखकों की सबलता
 को सहज ही रेखांकित कर सके थे । इसका एक उदाहरण लीजिये । अपने
 निम्न के उन्मूलन के अनन्तर अपना परिचय देने समय पं० प्रतापनारायण मिश्र ने
 एक बोद्धा निम्न था—'तामु तनय परनाप हरि परम रविच बुधराज । मुपर
 एक मन बचि किल जिहि न कवन कछु नाम । पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी न
 मार्च १९०६ की मरस्वनी में मिश्रजी की जीवनी विग्न हुए इन दोहोंके आधार
 पर मिश्रजी का अपने को 'मुपर रूप कहा था । इन पर मुक्तजीने धामारामीय शिष्यता 'अपने
 अपनेको मुपर रूप नहीं कहा था । इन पर मुक्तजीने धामारामीय शिष्यता 'अपने
 तोर पर लिखते हुए इसकी सही व्याख्या या की थी "उनका बेटा प्रताप हरि
 परम रविच बुधराज है । जिसे मुपर रूप धीर मन् बचिता के बिना कोई
 नाम नहीं रचना । प्रताप यह नहीं कहना कि मेरा रूप मुपर है बरञ्च वह
 कहना है कि प्रताप रूप और अन्तरी बचिता के बिना मुझे कुछ नहीं रचना । यह
 मुक्तजी की यह व्याख्या संगत है और उनके मुख्य साहित्य-बोध का प्रमाण है ।
 अतः इन को मुक्तिया में प्रमाणित एवं प्रतिपत्ती की मांगना की गणित करने
 की सामान्य का प्रवृत्ति उचित अन्तःकार किया था । जिमरी के सत्य मममने

बाहिर यह उनका सुविम्वित मत था ।^१ सेसक और आलोचक के बीच सहानु-
भूति और सहयोगिता का भाव ही आलोचना को बहुमूल्य बना सकता है ।
आलोचना का उद्देश्य किसी को अपवस्थ कर उसकी रचना-शक्ति को कुण्ठित
करना नहीं उसकी बुटियों को दूर कर उसे समर्थ लेखक बनने में सहायता
पहुँचाना है । नीति और सम्मता की रक्षा के लिए नियम गिष्ट विरोध उ-
आलोचना की रचनात्मकता लुपित नहीं होती । अपनी इस विचारधारा को
स्पष्ट करते हुए उन्होंने बाबू रामकृष्ण वर्मा के एक पत्र का उत्तर में भारतमित्र
में 'भाषका उत्साह' शीर्षक लेख में लिखा था 'भारतमित्र-सम्पादक आप ही
का नहीं सब हिन्दी वालों का है । सदा यह सब हिन्दी-प्रमियों का उत्साह
बढ़ाने की चेष्टा किया करता है । हिन्दी वालों का बराबर तरफदार रहता है ।
उनके छोटे-मोटे कोई दोष दिखावे तो उन पर जान भी नहीं भरता । केवल
इतना जरूर करता है कि जो पोषी उसे बुरी नीति और सम्मता के बिना
जबनी है या जिस पोषी से वह हिन्दुओं की हानि देता है उसके बगल बाल
को टोक देता है जिससे वह बैसा करने से बाज रहे । यह बर्तान उसका सदा
सबसे है । अपने मित्रों और तरफदारों की पोषियों में भी उसने कोई दोष
देता तो धीरे से बता देने की चेष्टा की । उसने यदि किसी का मुकाबला
किया है तो उसका जो अपनी बड़ाई के लिये दूसरे हिन्दी वालों की बेइज्जती
करने चाहा ।^२ अपने मित्रों की पोषियों का दोष धीरे से बताना धीम है
तबले उनही घरेलूक प्रसंसा करना अव्याय है । आलोचना अव्याय पर आधारित न होनी
चाहिए । व्याकरण-विचार शीर्षक लेख में उन्होंने लिखा है 'पोषी मित्र की
हो या शत्रु की—अपने की हो या बसाने की आलोचना उसकी म्याय से होनी
चाहिए । यह तो बनेई बात नहीं कि मित्र की हो तो उनकी प्रशंसा की जाय
और शत्रु की हो तो निन्दा । इनकी अनुसारता लेकर साहित्य के क्षेत्र में
कमी आने न बड़ना चाहिये । ऐसी दुबारा हिन्दीमें आलोचना की है । बुबर्गिय

४ गु० नि० पृ० ४३२

६. वा० स्मा० प्र० के पृ० ११३ पर उद्धृत यह पूरा लेख गु० नि० के
पृष्ठ ३० में सुलभित है ।

७. गु० नि० पृ० ४२८

म उस समय की सामाजिक परिस्थिति के अनुसार विचारकगण निर्जुन रहे समय बर्ष धर्म आदि का भी ध्यान रखते थे। पं० महाश्वीर प्रसाद त्रिवेदी से हुए आलोचना-समर में गुप्तजी को इसका कटु अनुभव हुआ था। आनेमपूर्व भाषाम इस मनोवृत्ति का विरोध करते हुए उन्होंने लिखा था 'त्रिवेदीजी हों या और कोई मतकब्र बातें हैं न कि लेखकके बुद्धशीलते और उसके नाम-वामसे। ब्रह्म बादा और व्याकरण की है चाहे उसे आत्मावाच्य मिले या भारतमित्र सम्पादक। चाहे लेखक बर्ष में ब्राह्मण हो या नाई धार्मिक हो या अधार्मिक। भाषा की बहस में हम तो बही समझते हैं कि धर्म या आति स्वयं या मरक की जरूरत नहीं है। बात का बात से उत्तर दो विचार से उत्तर दो बिगड़ने या गाराज होने की कोई जरूरत नहीं है। आलोचना निष्पक्ष और विचार सम्मत होनी चाहिए, यह उनका पक्का सिद्धांत था। केवल एक ही बार वे इसका पूर्णतः पालन नहीं कर सके थे उसही बराबर सदास्वान की ज़रूरी।

आलोचना करने समय उन्हें कई बार अपने पक्ष के समर्थन के लिए व्यापक सहानुभूति प्राप्त करने की दृष्टि से आन्दोलन भी चलाने पड़े थे। इन आन्दोलनों में उनके समय के घनेकालेक हिन्दी विद्वान उनके पक्ष या विपक्ष में मिलते रहे। गुप्तजी ऐसे आन्दोलनों को सदा धूम मारते रहे। यह जरूर है कि कभी कभी इनसे व्यक्तिगत ईर्ष्या द्वेष की भी बड़ाबा मिलता था किन्तु यह तो आन्दोलन में भाग लेने वाले व्यक्तियों की दुर्बलता मात्र है इससे उचित आन्दोलन छेड़ना मूलतः काम नहीं कहा जा सकता। यह आन्दोलक प्रवृत्ति पत्रकार होने के कारण उनमें अधिक निखरी थी। उनके राजनीतिक सांस्कृतिक और सामाजिक आन्दोलनों की बर्बाद का स्वान यह नहीं है किन्तु इतना यह देना अनुरोध न होना कि उन लोगों में भी इस दिशा में उन्हें विचार्य वस प्राप्त हुआ था। हिन्दी उर्दू-इंग्लिश में जिस शानदार तरीके से उन्होंने हिन्दी का समर्थन किया वह अनिर्णय प्रयोजनीय है। एक सिद्धि विस्तार के आन्दोलन को भी उन्होंने घावे बढ़ाने की चट्टा भी थी ब्रज भाषा बनाम छात्री बोली आन्दोलन में भी वे पड़े थे। आलोचना के क्षेत्र में उनका तीन प्रसिद्ध वाद-विवाद हुए थे त्रिवेदी आन्दोलन की शरण ली थी। इनमें से दो में अर्थात् 'अधुमती नाटक' एवं 'योग का अर्थ' के सम्बन्ध में अन्नाय गय विद्वानों में उनकी बात स्यादीचित्त साम्य रूप की तीव्र बर्बाद आया था अन्नाय गय सम्बन्धी विवाद में भी

उन्हें पर्याप्त मर्यादा मिला था। इस सम्बन्ध में 'शेष का शेष' नामक लेख में उन्होंने लिखा था 'शेष का भयङ्क बहुरूप बना। आत्मकल हिन्दी भाषा जिस प्रकार विप्लवानुहीन बनी हुई है, उससे उसके विषय में इस प्रकार भयङ्क उटना मर्यादा सूचक है। उससे अनेक संघर्षों की सीमांसा हो जाती है।' इस आलोचनाओं से तत्कालीन हिन्दी साहित्य-संविमों पर सनका प्रभाव भी प्रमाणित होता है।

गुप्तजी की आलोचनाओं पर विशेष विचार करने के पूर्व उनकी ज्ञात या उपलब्ध आलोचनाओं की कालक्रमिक सूची इस विवरण के साथ प्रस्तुत की जा रही है कि इससे उनका आलोचक रूप को ठीक-ठीक समझने में सहायता मिलेगी।

बाबू बालमुकुन्द गुप्त द्वारा उपलब्ध या ज्ञात साहित्यिक आलोचनाओं की कालक्रमिक सूची—

(१) प० श्रीधर पाठक के हरमिट के अनुवाद (एकाग्रवासी बोधी) की आलोचना—बोधेनूर (उ०) क १८८८ के पूर्वार्ध के किसी पत्र में प्रकाशित अनुपलब्ध गुप्तजी के द्वारा ही 'ऊनड़गाय' की आलोचना में इसका संकेत—बा० स्मा० प० पृ० १५

(२) प० श्रीधर पाठक के 'ऊनड़गाय' की आलोचना—बोधेनूर के १८८८ के उत्तरार्ध के किसी पत्र में प्रका० उप० बा० स्मा० प० पृ० २५ २६ पर उद्धृत।

बोधेनूर में हिन्दोत्थान की समालोचना करने का उत्तीर्ण प० मदनमोहन मालवीय ने २६ अप्रैल १८८९ के पत्र में किया है। (बा० स्मा० प० पृ० २७।) बाबू रामाद्वय शर्मा के २३-२४ के गुप्तजीके नाम लिख पत्र से ज्ञात होता है कि उन्होंने 'नवी प्रकाश' तथा कुछ अन्य पुस्तकों की समालोचना की। यह ज्ञात पत्राचार से उन्होंने 'नवी प्रकाश' की समालोचना की या नहीं क्योंकि बाबू साहब ने जून २० १२ ९३ के पत्र में समालोचना करने के लिए पुनः अनुरोध किया था। यह चारों पत्र बा० स्मा० प० पृ० ५५ ५६ ५७ में प्रकाशित हैं। इनमें यह मगन अनुमान किया जा

१ 'शेष का शेष' प० पृ० १० के फुटन में सुनिश्चित

सकता है कि मुत्तजी उन दिनों भी प्रमाणवाली समालोचना करते रहते होंगे तभी बाबू रामाकृष्ण बास जैसे प्रतिष्ठित केन्द्रक ने अपनी पुस्तकें उनके पास समालोचनार्थ भेजी थीं।

- (१) महेन मयिनी के हिन्दी अनुबाद 'छिम्बिता हिन्दूबासा' की दोषपूर्ण भाषा के लिए फटकार बताने वाला सम्बा आलोचनात्मक पत्र हिन्दी बंगवासी के सम्पादक के नाम। १८९२ ई. अनुष संवत् १९५५ का समा पृ ६१ हिन्दी बंगवासी के सम्पादक पं० अमृतलाल लक्ष्मी ने इस पत्र की एक पंक्ति अपने संस्मरण में उद्धृत की है — 'साहित्य की मर्यादा बिगाड़ने वाला यह कौन मनुष्य है जो 'महेन मयिनी' उपन्यास की मिट्टी जराब कर रहा है।' का समा पृ २७५ इसी लेखनी पत्र के कारण मुत्तजी हिन्दी बंगवासी के सम्पादक बनाये गये थे।

- (४) कविता पर कविता (१)—श्री सुधीनजी कृष्ण पोस्टलमिब की रच नाओं के अनुबाद 'उबाड़ बाबू साधु तथा दात्री' की आलोचना—इनमें से पहली दो पुस्तकें पं० भीषण पाठक कृष्ण उबाड़ राम तथा एकान्तवाणी घोषी की मही नकल थीं—जब मुत्तजी द्वारा दोनों की तुलनात्मक आलोचना एवं निष्कर्ष में सुधीनजी को कड़ी फटकार—यह पूर्ण सेग उपलब्ध नहीं—काफी सम्बा अंश का समा पृ के पृ १०३-१०५ में उद्धृत—भा मि २३ अगस्त १८९९ ई०।

- (५) कविता पर कविता (२)—श्री पत्तनलालजी 'सुधीन कवि' का उपर्युक्त आलोचना से सम्बन्धित पत्र प्रकाशित कर उस पर पुनः टिप्पणी—पत्तनलालजी द्वारा यलप्री स्वीकार करते हुए स्पष्टीकरण की चेष्टा—मुत्तजी द्वारा पुनः उनकी आलो० यह लेख सद्यत का समा पृ पृ १०५ १०६ में उद्धृत—गुरुगंत श्री नवलकिशोर मुत्तजी के व्यक्ति पुस्त में भा मि १८९९ का उत्तरार्ध या १९०० का प्रारम्भ (मुत्तजी की कठरनों के रजिस्टर में पं० भगवत्प्रसाद शर्मा की टिप्पणी—१९० की छतरनें) मुत्तजी के द्वारा अपना समर्पन भिन्न जाने से उन्माहित होकर पण्डित भीषण पाठक ने दूबेयर का अनुबाद आन्तर्द्विक के नाम से किया।

- (६) बड़े बुद्ध का जल। बामशास्त्र के लेखक लाला बामिशाम वैश्य का बड़ी समालोचना भा मि ५ फरवरी १९०० अनुष का समा पृ पृ १११ में प्रेषित।

- (७) मुनरी सरस्वती—सरस्वती की माया सं कुछ मूर्तों की आलोचना—
भा मि १९०० ई उप न मू के पुस्त में मु
- (८) मय का दर्ब—येय का दर्ब समाप्त या अन्त भी होता है, इसको प्रमा
णित करने के लिए लिखित—भा मि ३० जुलाई १९०० आंगिक रूप
से उप का समा सं पू ११४ ११५
- (९) येय का येय—येय सं० विचार का समाहार—प्रतिपत्ती की प्रसंता भी
भा. मि १९०० ई उप, न कि पु के पुस्त में मु
- (१०) हिन्दी में उपन्यास—भा मि २० ४ १९०१ न कि पु के पुस्त में मु
- (११) नायिका भेद—कवितामें गृवार रस कुछ अनुप्रास आदि पर विचार—
भा मि २० जुलाई १९०१ उप न वि पु के पु में मु
- (१२) चाहते हैं सो होता नहीं—कुछ अमक आदि की उपयोगिताका समर्थन—
भा मि ७ सितम्बर १९०१ उप न कि. पु के पुस्त में मु
- (१३) अमुमती नाटक—बी ज्योतिरिन्द्रनाथ टैगोर के बंगला नाटक की कड़ी
समालोचना—भा मि १९०१ (मु नि में मुद्रित)
- (१४) अमुमती कर्ता का प्रतिवार तथा आत्म समाचार—मुप्ताजी की आलो
चना पढ़ कर बी टैगोर ने दो पत्र लिखे—एक में कलात्मक दृष्टि से
जाना समर्थन किया दूसरे में ऐतिहासिक दृष्टि से अपनी मूल स्वीकार
कर आलोचना की वे पत्र और उन पर मुप्ताजी की टिप्पणी भा. मि
५ अप्रैल (१९०१) न कि पु के पुस्त में मु
- (१५) साप्ताहिक साहित्य सप्ताह के अन्तर्गत सरस्वती के अक्टूबर १९०१ के
अंक की आलो—भा मि १९०१ न. कि. पु के पुस्त में मु
- (१६) भा सा सप्ताह के अन्त 'मुमती मुचाकर' की आलोचना भा. मि
१९०२ ई मु नि में मुद्रित
- (१७) भा सा सप्ताह के अन्त 'समालोचक पर सरस्वती'—समालोचक की
अनुविन आलोचना के लिए मरम्बनी की आलोचना—भा मि १९०२
न कि पु के पुस्त में मु
- (१८) मरम्बनी की मारम्बी—मरम्बनी की आलो. (न कि पु के पुस्त में
मु) भा मि १९०२ ई
- (१९) 'हिन्दी प्रीत की प्रमांता पर एक छोटा सा नोट (न कि पु के पुस्त
में मु) भा मि १९०३ ई
- (२०) भा सा के सप्ताह में 'मरम्बनी की पुन' आलोचना—दनी चंके से
पंडित म प्र द्विवेदी मरम्बनी के सम्पादक हुए व। ११ जनवरी १९०३

नव रचनाओं की प्रशंसा करते हुए भी सरस्वती का विनय' नामक कविता की चुनियो की चर्चा । (न कि गु के पुस्त में गु)

- (२१) उक्त कविता के समर्पण में मिथे पं गयाप्रसाद अग्निहोत्री के लेख का उत्तर (न कि गु के पुस्त में गु) (१९०३)
- (२२) सरस्वती के 'साहित्य समालोचना पत्र' की आलोचना भा नि २५ (अनुप गु नि के पु ५२८ में संकेतित) अप्रैल १९०३
- (२३) श्री सत्यनारायण कबिराल की कविता पर प्रशंसात्मक टिप्पणी— २५-५ १९ ३ (बा स्मा पं में पु २०१ पर उद्धृत)
- (२४) प्रबामी की आलोचना—१९०३ ई
- (२५) बँगला साहित्य—१९०३ ई
(गु नि में मुद्रित प्रबामी द्वारा हिन्दी साहित्यिकों पर बोरी का अभिप्राय लघाने पर इन दोनों छेत्रों में बँगला के साहित्यिकों द्वारा अन्य भाषाओं के शब्दों के भाषों के अपहरण के प्रमाण—
- (२६) छाप उपन्यास—५ किशोरीलाल गोस्वामी के उपन्यास की आलोचना १९०३ ई (गु नि में मुद्रित)
- (२७) साहित्य सेवा—मुद्रण में प्रका किसी साहित्यसेवी के लेख का कड़ा उत्तर—१९०३ या १९ ४ ई (न कि गु के पुस्त में गु)
- (२८) नन्दलाल की रामचन्द्राय्यायी और भैरवीय की भूमिका—सन् १९ ४ ई (बा स्मा प के पु १५८ १५९ में उद्धृत)
- (२९) हिन्दी साहित्य—हिन्दी साहित्य की हुँसी उठाने वाले हिन्दी नि शुक्ला के एडबोकेट में प्रकाशित लेख की कड़ी भर्त्सना—(न कि गु के पु में गु) १९०५ ई
- (३०) सामयिक साहित्य समझ के अन्तर्गत मुंशी बेबीप्रसाद मुखर्जी द्वारा सम्पादित भाषा मूकबाणी का प्रशंसात्मक परिचय—(न कि गु के पुस्त में गु) १९०५
- (३१) तत्रिण्ड आमागम् मोराये हुनुद—मुंशी बेबीप्रसाद मुखर्जी के द्वारा मद्रास—उर्दू के हिन्दी कवियों के कविता-संकलन का प्रशंसात्मक परिचय न कि गु के पुस्त में गु १९ ५ ई
- (३२) छत्रीबुस इम्ताम—निर्वा अक्षुष मकूर (उक्त धर्मपाल द्वारा हन 'इम्ताम' की कड़ी आलोचना का परिचय धर्मपालजी की प्रशंसा में अमहमति (न कि गु के पुस्त में गु १९०५ ई

(३३) घबलिसा फुल—पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय के उपन्यास की आलोचना
(गु० नि० में मुद्रित) १९०५

(३४) मुन्शी पीताम्बरप्रसाद की कविता पर प्रार्थनात्मक टिप्पणी—१९०६
(का स्मा० पं० में पु० १९९ पर उद्धृत)

(३५ ४४) माया की अनस्मिता' दीर्घक लेखमाला—विद्यम्बर (?) १९०५
से ३ करवरी १९०६ तक । (गु० नि० में मुद्रित)

(४५ ४६) आत्माराधनीय टिप्पण—(गु० नि० में मुद्रित) १९०६

(४७) व्याकरण विचार—
() १९०६

(४८ ५४) हिन्दीमें आलोचना दीर्घक लेखमाला (१) हिन्दीमें आलोचना १९०६
(२) ईर्ष्या द्वेष १९०६

(३) नेक नजर और नेकनीयती १९०६

(४) नेक नजर और नेकनीयती १९०६

(५) नेक नजर और नेकनीयती १९०६

(६) आत्माराधनीय आलोचना १९०६

(७) कुछ नमूने १९०६

(५५) मायादासी की सगवान

(५६) वाच्य का विचार

(५७) आत्माराधनीय टिप्पण

(५८) आत्माराधनी ओड

(५९) आपका उल्लाह

ये चारों रचनाएँ भी 'माया की अनस्मिता'
सम्बन्धी आलोचना स सम्बद्ध एवं भारवर्धक
में प्रकाशित १९०६ मुद्रित निर्वाचनीय
में संशुद्धित नहीं—किन्तु न कि मु के पुस्त
में मु०

बाबुरामकृष्ण वर्मा के एक पत्र का उत्तर—
(न० कि० मु० के पुस्त० में मु०) १९०६

(६०) धार्मिक मुद्रति—

य प्र डि की कविता विषयका की आलोचना
(न० नि० मु० के पुस्त० में मु०) १९११ १९०७

१) हिन्दुस्तानी बहानों की सायरी—

नागरी अक्षरों के अपनाने से भारतीय
कवियों की रचनाओं का रसास्वादन
घासानी से संभव । (न० कि० पु० के
पुस्त० में) १९०७

२) गुप्तजने हिन्द—

उर्दू कवियों की धीबनियों का संग्रह—उसकी मूमिका
की ही बर्षा (पु० नि० में मुद्रित) १९०७

ये है कि 'अल्लहारे बुनार' 'कोहेनूर' 'हिन्दोस्तान' 'भारत प्रताप' 'हिन्दी
बयबानी' 'जमाना' आदि की फाइलें कलकत्ते में उपलब्ध न होने के कारण
उन पत्रों में प्रकाशित गुप्तजी की आलोचनात्मक रचनाओं की बर्षा नहीं की
जा सकी । भारतमित्र की भी फाइल नहीं मिल सकी । श्री जयसकिशोरजी
गुप्त के यहाँ सुरक्षित उनकी कुछ कठरनों का ही उपयोग किया जा सका ।
हमारा विश्वास है कि गुप्तजी ने और भी अनेक आलोचनाएँ लिखी होंगी ।
पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी का अनुमान था कि गुप्तजी ने ही रामभबदराम के
नाम से लिखनी की उनकी आलोचना के विषय लेख लिखा था (पु० नि०
पु० १२१) गुप्तजी ने इसे स्वीकार नहीं किया किन्तु बीबी से भगत है कि यह
कैय गुप्तजी का हो सकता है । इसका महत्वपूर्ण अंश गुप्त निबन्धावली के
पृ० ५१९-२० में उद्धृत है । बालमुकुन्द स्मारक ग्रन्थ के १५८वें पृष्ठ पर
संकेत मिलता है कि गुप्तजी ने पं० अम्बिकादत्त व्यास के बिहारी बिहार की
आलोचना की थी । इस संकेत में काल का निर्देशन नहीं है पर उछे भी उक्त
सूचीमें सम्मिलित नहीं किया जा सका । पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी के एक
पत्र में अनुमान किया जा सकता है कि १८९९ वा उसके पूर्व यह आलोचना
निबन्ध खुदी थी । पर इस सूचीमें हिन्दी भाषाके प्रचार-प्रसार या विकासमूचक
के लेख नहीं मिले मये हैं जिसका सीधा सम्बन्ध आलोचना में नहीं है । इसी
तरह यद्यपि डा० नल्लन सिंह ने अपने शोध प्रबन्ध में 'आलोचक बालमुकुन्द
गुप्त की बर्षा करने हुए उनके विषये साहित्यिकों के जीवनचरित्तों को भी
आलोचना में ही शामिल कर लिया है तथापि इस विचार को सुनिश्चित न
समझने के कारण हमने ऐसा नहीं किया है और इस सूची में उन जीवनचरित्तों
को भी रचना नहीं मिला है । हमारी समझ में इन जीवनचरित्तों में साहित्यिक

उर्दू पत्र कोहेनूर में उन्होंने हिन्दी नविता पुस्तक 'ऊजड़ घाम' की आलोचना की भी उसी प्रकार हिन्दी के भारतमित्र में तबनिरह आसाफ् जोराये हुनूब तथा गुमानने हिन्दू जैसी उर्दू पुस्तकों की भी प्रशंसात्मक आलोचना प्रकाशित की भी। बंगला के अमूमती नाटक एवं प्रवासी पत्र की आलोचना भी उन्होंने लिखी थी। बल्लुत हिन्दी उर्दू बंगला संस्कृत और बंगाली साहित्य के अनुमीलन ने उनकी दृष्टि को विस्तार भी बनाया था और उदार भी। इन परिचयात्मक आलोचनाओं में भी गुप्तजी की सहृदयता और स्पष्टभाषिता की पर्याप्त मज़क मिलती है। ऊजड़ घाम की प्रशंसा करते हुए उन्होंने लिखा था "तर्जुमे की हिन्दी आसामें की मीठी है। खूबी यह है कि सपन-कपन तर्जुमा है और फिर इतना साफ है कि अगर असल किताब की खूबसूरती देती जाय तो इससे ज्यादा नहीं है और अगर भीमरजी अपने ही सयामाव को घना करते तो भी हमसे उम्दा न कर सकते थे।" ऊजड़ घामकी प्रशंसा केवल भाषा की मिठास और अभिव्यंजना की कुसमता के ही लिए नहीं विषय की नवीनता और उपयुक्तता के लिए भी करते हुए उन्होंने उर्दू नवियों को समझ दी भी कि वे भी इसी प्रकार 'नेवरस नजारों' की तरह पत्रों परामाण को लफें करके मृतबगजह होंगे।

तुलसी मुषाकर की जो बात उन्हें सब से ज्यादा सन्तुष्ट की वह थी उनकी निष्कलता। गुप्तजी सरस स्वभाव सरस जीवन और सरस अभिव्यंजना के पदगामी थे। अतः 'महामहीपाय्याय मुषाकर द्विवेदी जी जैसे प्रवीण विद्वान' की आलोचना करते हुए उन्होंने लिखा 'हमारा यह भी अनुमान था कि बृहद्विद्या मिनकर मुषाकर जी महाराज तुलसी मल्लई को सरस कर देंगे। वह बात उल्टी निजनी तुलसी ने जहाँ को बड़ा कट बोझा लिया है मुषाकरजी महाराज ने वहाँ महाकूट बृहद्विद्या बनाई है। कहीं-कहीं तुलसी का डोहा सरस है वहाँ भी मुषाकरजी टेढ़े करते हैं।" साब ही वे मुषाकर जी की चिन्ता की प्रशंसा भी करते हैं क्योंकि उनके बनानुसार "तुलसी मल्लई बड़ी बिगड़ है। अतः मुषाकर जी का ही काम है कि उन्होंने उसका अपने लक्ष्य है। प्रशंसा के स्थान पर प्रशंसा और असह्यति के स्थान पर असह्यति व्यक्त करने का कार्य उन्होंने छाने-छाने के लक्ष्य में छाने-छाने कर लिया है। नवीन सेगारों को प्रोत्साहन देने के साथ-साथ रिवाज निर्देश का डंग गुप्तजी का काम था। श्री लक्ष्मणरायण कविश्वर की कविता प्रकाशित करने समय उन्होंने उस पर आ टिप्पणी लिखी थी उसमें उनकी इन प्रशंसा का अन्त

परिचय मिलता है। टिप्पणी यों है "यह एक बामक की कविता भीबुक्त
 वं भीधर पाठक की भारकत हमारे पास पहुँची है बालक ललितकार है।
 यदि अभ्यास करेगा तो अधिक में अच्छी कविता कर सकेगा। अपनी तरफ
 से हम इनका हो कहते हैं कि भाषा जरा बड़ और साफ करे। कुछ मयंत्रों की
 कविता में धम्माम बडावे क्योंकि जिस ङग को यह कविता है वैसे हिन्दी
 में बाल अधिक और उत्तम से उत्तम हो चुकी है।" ११

मुत्तजी का मुख्य काम हिन्दी के आधुनिक साहित्य के क्षेत्र में ही था किन्तु
 मध्यकालीन साहित्य विशेषतः धर्म साहित्य के वे बड़े प्रचारक थे। मानस
 और मूरनागर का तो निम्न पाठ ही करते थे। धर्म साहित्य के प्रति
 उनका अनुशासन सम्बन्ध की रामपंचाध्यायी और नैकरीय की भूमिका से जान
 होता है। भारतीय के पाठकों को रामपंचाध्यायी और नैकरीय उपहार में
 देते हुए भूमिका में सम्बन्ध की वा अधिक परिचय देकर उन्होंने प्राचीन
 बाम्य ग्रन्थों के कुछ पाठ के उद्धार की समस्या की ओर विद्वानों का ध्यान
 आकर्षित किया था साथ ही सम्बन्ध की मुक्तकाल से प्रशंसा भी की थी।
 निम्नमन्त्रु सम्बन्धी आलोचना

मुत्तजी मर्यादा के उपासक थे जब यदि कभी उन्हें समझता था कि कोई लेखक
 मन्त्री रचाने के लिए और निम्नकार हरे से नैतिक अधिष्ठान का सम्पन्न कर
 रहा है तो वे उस पर पूरी ध्यान से प्रहार करते थे। किन्तु वह सांख्य
 मयाने का प्रमाण हो या अनीमता के प्रचार की कृच्छ्रा साहित्यिक चोरी
 हो या हिन्दी के धीरे-धीरे आगत व्यक्तिगत रूप हरे का प्रमाण हो
 या किसी भाव्य धर्म का अपमान मुत्तजी निम्न से सब और सभी बाने असह्य
 थीं। उन्होंने ऐसे ग्रन्थों या लेखों का उस विरोध किया था। साथ ही साहित्य
 को स्वतन्त्र मनीषा दिया की ओर उम्मेद करनेवालों का समर्थन भी किया था।
 इस वर्ष की आलोचनाओं में उनकी सर्वाधिक ध्यानमयी आलोचना भी सम-
 गती थी। कबीर रवीन्द्र के बड़े भाई की ज्योतिषिम्बन्ध ठाकुर ने धन
 भाटक अधुमती में महात्मा प्रभाव की बलिता बग्या अधुमती का मनीष
 के प्रति प्रभाव अधिक किया था। अधुमती का मन्त्रु परिचय किन्तु
 निम्न मुत्तजी को निम्न बर्तनपूर्ण लगा और बन्धुन महात्मा प्रभाव की
 स्वतन्त्र हिन्दूनिष्ठा को उनकी बलिता बग्या अधुमती के उम्मेद प्रेय द्वारा
 बर्तन करने का ठाकुर महात्मा का प्रभाव अधुम आकर्षितक था।

पुस्तकी ने इसके हिन्दी अनुबाद की आलोचना हिन्दी बंगबासी में की थी जिससे पढ़कर अनुबादक मुँधो उदितनारामराजी ने अनुबाद की समस्त प्रतियाँ गंगाजी में फेंक दी थी। १९०१ में मुस्तजी ने भारतभित्र में मूल जमाना नाटक की उस आलोचना की। भावुकतापूर्ण आरोप और टार्किकता का ऐसा मणिफेस्टेशन संयोग इस आलोचना में हुआ वैसा उसकी अन्य किसी आलोचना में नहीं हुआ। इस आलोचना में प्रकट भावात्मक आरोप का एक उदाहरण है जिस "हम सब देश के पढ़े लिखे लोगों से पूछते हैं कि इस पुस्तक को पढ़कर बंगदेश की सड़कियाँ को क्या छिन्ना मिलेगी और आप सब बंगाली लोग स्याद से कहें कि आपही को उससे क्या उपदेश मिला ! इस पुस्तक के पढ़ने से आपकी पर्यन नीची होती है या ऊँची ? बंग साहित्य के मुँहपर इससे स्याही छिरती है या नहीं ? आपके बंग साहित्य में यदि एसी पुस्तकें बढ़ें तो उस साहित्य का मुँह कासा होया कि नहीं ? जिस पुस्तक का नाम कुछ और मोटो कुछ और है तथा मोटो कुछ और उद्देश्य कुछ और है वह साहित्य में चोर कंक की वस्तु है या नहीं ?"।

इसी आलोचना में उन्होंने एक और गंभीर प्रश्न उठाया था कि ऐतिहासिक महापुरुषों के चरित्र और स्वभाव को कलंकित करने वाली रचना का साहित्य में क्या स्थान हो सकता है ? ऐतिहासिक नाटकों या उपन्यासों की रचना के पूर्व लेखक को अपने विषय में सम्बद्ध इतिहास और भूगोल का सम्यक ज्ञान प्राप्त करना चाहिए या नहीं ? अधुमती के कथानक में प्रचुर उद्धरण देकर मुस्तजी ने निश्चय दिया कि इस नाटक की कथा तथा उसका देशवास विमल संबंधा इतिहास विच्छन्न अतः निन्दनीय है। अपना निर्यय बैठे हुए मुस्तजी ने लिखा "कुछ है कि अधुमतीनार मेवाड़ और राजपूतों के विषय में कुछ भी नहीं जानता किन्तु नाटक लिखने बैठ गया। वह जानता नहीं कि अधुमती प्रताप की सड़की तो क्या किसी राजपूत—यही तक कि किसी हिन्दुस्तानी की सड़की का भी नाम नहीं होता। मेवाड़ के जय-परबत-जगतल-भोजों के विषय में ज्ञान प्रचकार कुछ भी नहीं जानता। इसीमें उमन बही उलपटाय वालों मिली है। अपनी आलोचना के अन्त में मुस्तजी ने लेखक से प्रार्थना की कि अब अपनी इस पापी या छानना बन्ध नीत्रिय और जो पापी छोड़ दूँ बाकी है उन्हें दूर भगाकर उनकी रात बंगाली में फेंक दीजिये।"

मुस्तजी की इस तेजस्वी आलोचना का अनुक्रम परिणाम हुआ। श्री स्यानिर्मल नाथ टागोर ने वाचन इस आलोचना के सम्मुख में किया। पढ़ते पढ़ते मैं

उन्होंने कला की दृष्टि से अपने कथानक का समर्थन किया था किन्तु दूसरे पक्ष में मुत्तजी की आलोचना की ग्याममुक्तता को स्वीकार करते हुए उन्होंने लिखा कि 'आपके द्वारा संकलित विचार पहले मेरे ध्यान में नहीं आया था किन्तु अब जब आपने जनता के समक्ष मुख्यतः कल्पित रचना के रूप में उपस्थित दिये जाने वाले नाटकों में कुछ रामकृत वीरों के नामों के आने की प्रभाव-नीयता की ओर मेरा ध्यान आकर्षित किया है। मैं निश्चय ही आपके द्वारा प्रस्तुत किए गए या दूसरे विचारों को कार्यान्वित करने के लिए काम उठाऊँगा।' ११ मुत्तजी ने अपने लेख में सुझाव दिया था कि या तो हम नाटक से महाकाव्य प्रदान सिंह आदि के नाम हटा दिए जायें या इसका प्रचार बन्द कर दिया जाय। ज्योतिरिन्द्र बाबू के पक्ष के अन्त में हमी दो विचारों की ओर संकेत है। मुत्तजी ने ५ अक्टूबर १९०१ के भारतमित्र में अधुमती कर्मा का प्रतिवाद तथा आनन्द घमाचार' नाम से उसका दोनों पक्ष छाप दिये और डाकुर महाकाव्य की अपनी पुस्तक स्वीकार करने के लिए पत्रवाह भी दिया। इस सम्बन्ध में एक मूल्यी उत्तरी यह पड़ी है। पं० आनन्दमन्त्र कर्मा ने या समाज के पृ १११ पर पर लिखा है कि 'मुत्तजी की आलोचना के प्रभाव से भारत जीवन के मासिक बाबू रामकृष्ण कर्मा जी की प्रकाशित और संशोधित से अनुरित 'बितीरबातरी' एवं अधुमती नाम की दो पुस्तकों के विरुद्ध हिन्दी जगत् में ऐसा आन्दोलन हुआ कि दोनों पुस्तकें संयाजी में प्रकाशित करनी पड़ी थी।' या या पं० मुत्त ने भी अपने हि सा के इ के पृ ४९० पर डा० रामकृष्ण कर्मा द्वारा अनुरित बितीरबातरी के सम्बन्ध में लिखा है कि 'यह पुस्तक बितीर के राजवंश की वर्णिका के विरुद्ध समझी गई और इनके विरोध में वहाँ एक आन्दोलन हुआ कि यह कविता बंका में फेंक दी गई।' विरुद्ध यह है कि मुत्तजी की 'बितीरबातरी' पर कोई आलोचना नहीं मिलती। डा० गणपति सिंह ने अपने चौबिस बंधनार बाबू नाममुक्त मुत्त जीवन और साहित्य के पृ ११२ पर भारतमित्र में प्रकाशित आलोचनाओं की चर्चा करते हुए लिखा है 'इनके अतिरिक्त भारतजीवन के मासिक बाबू रामकृष्ण कर्मा द्वारा बंधनार के अनुरित बितीर की जागड़ी या अधुमती नामक की आलोचना' भी भारतमित्र के २८ नवम्बर सन् १९०१ के अंक में हुई थी।

१४. गु नि पृ. ४४०

१५. या समाज पृ ११२ पर उद्धृत अंग्रेजी पत्र के एक अंक का अनुवाद

गुप्तजी ने इसके हिन्दी अनुबाद की आलोचना हिन्दी बंनवासी में की थी जिसे पढ़कर अनुबादक मुँची उदितनारायणजी ने अनुबाद की समस्त प्रशंसा संवाजी में फेंक दी थी। १९११ में गुप्तजी ने भारतमित्र में मूल बंनवा नाटक की उग्र आलोचना की। भावुकतापूर्ण आवेश और तार्किकता का वैसा समीकाचन संयोग इस आलोचना में हुआ वैसा उनकी अन्य किसी आलोचना में नहीं हुआ। इस आलोचना में प्रकट भाषात्मक आवेश का एक उदाहरण देखिये 'हम बंग देश के पढ़े लिखे लोगों से पूछते हैं कि इस पुस्तक की पढ़कर बयदेस की लड़कियाँ को क्या शिक्षा मिलेगी और आप सब बयामी लोग क्या से कहें कि आपही को उल्लस क्या उपदेश मिला ! इस पुस्तक के पढ़ने से घापकी गर्दन नीची होती है या ऊँची ? बंग साहित्य के मुँहपर इससे स्वाही फिरती है या नहीं ? आपके बंग साहित्य में यदि ऐसी पुस्तकें हों तो उस साहित्य का भुँह काला होया कि नहीं ? जिस पुस्तक का नाम कुछ और मोनो कुछ और है तथा मोनो कुछ और बदेस्य कुछ और है, वह साहित्य में और कर्मक को बस्तु है या नहीं ?'^१

इसी आलोचना में उन्होंने एक और गंभीर इशारा उठाया था कि ऐतिहासिक महापुरुषों के चरित्र और स्वल्प को कलंकित करने वाली बंनवा का साहित्य में क्या स्थान हो सकता है ? ऐतिहासिक नाटकों या उपन्यासों की रचना के पूर्व लेखक को अपने विषय में सम्बद्ध इतिहास और भूगोल का सम्बन्ध ज्ञान प्राप्त करना चाहिए या नहीं ? अजुमती के कथानक में प्रचुर उद्धरण देकर गुप्तजी ने सिद्धकर दिया कि इस नाटक की कथा तथा उसका देशनाम बिना संबंधा इतिहास निरुद्ध अंग निम्ननीय है। अपना विषय देखते हुए गुप्तजी ने लिखा "युक्त है कि अजुमतीदार मेवाड़ और राजपूतों के विषय में कुछ भी नहीं जानता किन्तु नाटक लिखने बैठ गया। वह जानता नहीं कि अजुमती प्रताप की लड़की तो क्या किसी राजपूत—यही तक कि किसी हिन्दुस्तानी की लड़की का भी नाम नहीं होता। मेवाड़ के बम-पर्वत-जंगल भीलों के विषय में ज्ञान सम्पन्न कुछ भी नहीं जानता। इसीसे उसने बड़ी उद्वेगपूर्ण बातें लिखी हैं। अपनी आलोचना के अन्त में गुप्तजी ने लेखक से प्रार्थना की कि अब अपनी इस पोथी का छापना बन्द करिये और जो पोथी धोई हुई बारी है उन्हें पूरा जलाकर उनकी राख पगारों में फेंक दीजिये।

गुप्तजी की इन तीव्रस्वी आलोचना का अनुक्रम परिणाम हुआ। श्री रघुनिरिन्द्र नाथ टागोर ने जो वचन इस आलोचना के सम्बन्ध में लिखे। पहले पत्र में

समझने कसा की दृष्टि से अपने कथानक का समय दिया या किन्तु दूसरे पक्ष में बुद्धिजी की आलोचना की व्यापकता को स्वीकार करते हुए उन्होंने लिखा कि आपके द्वारा संकेतित विचार पहले मेरे ध्यान में नहीं आया था किन्तु अब जब आपने जनता के समक्ष मुक्तमत कल्पित रहना के रूप में उपस्थित क्रिये जाने वाले ग्राहकों में कुछ राजपूत बीरों के नामों के आने की घबराहट-भीषणा की ओर मेरा ध्यान आकर्षित किया है मैं निश्चय ही आपके द्वारा प्रस्तुतित पहले या दूसरे विफल को कार्यान्वित करने के लिए कदम उठाऊँगा। ११ बुद्धिजी ने अपने लेख में मुख्यतः दिया था कि या तो इस ग्राहक से महाशय प्रताप सिंह आदि के नाम हटा दिए जाय या इसका प्रचार बन्द कर दिया जाये। ज्योतिरिन्द्र बाबू के पत्र के अन्त में इन्हीं दो विकल्पों की ओर संकेत है। बुद्धिजी ने ५ अक्टूबर १९०१ के भारतमित्र में 'अधुमती' कर्ता का प्रकाशन तथा आनन्द समाचार' नाम से उक्त दोनों पत्र आप दिये और अक्षुर महाशय को अपनी मूल स्वीकार करने के लिए धन्यवाद भी दिया। इस सम्बन्ध में एक पुस्तकी उत्तरी यह गयी है।

१० अक्षरमल्ल धर्मा ने वा समा. प्र. के पृ १११ पर पर लिखा है कि "बुद्धिजी की आलोचना के प्रभाव से भारत जीवन के मानिक बाबू रामकृष्ण वर्मा जी की प्रकाशित और संशोधित से अनुरित 'चिन्ता-वाचनी' एवं अधुमती' नाम की दो पुस्तकों के विरुद्ध हिन्दी जगत् में ऐसा आन्दोलन हुआ कि दोनों पुस्तकों बंगाली में प्रकाशित करनी पड़ी थी। आ. रा. ब. सुस्त ने भी अपने हि. सा. के ३ के पृ ४९७ पर वा. रामकृष्ण वर्मा द्वारा अनुरित चिन्ता-वाचनी के सम्बन्ध में लिखा है कि 'यह पुस्तक बितौर के राजबंश की मर्माश के विरुद्ध समझी गई और इनके विरोध में यहाँ तक आन्दोलन हुआ कि सब कारिया बंगाल में बंद हो गई। विरुद्ध यह है कि बुद्धिजी की 'चिन्ता-वाचनी' पर कोई आलोचना नहीं मिलती। डॉ० लालन सिंह ने अपने राजबंश घटकार बाबू राममुकुन्द पुस्तक जीवन और साहित्य के पृ ११२ पर भारतमित्र में प्रकाशित आलोचनाओं की बर्णना करते हुए लिखा है 'इनसे अनुरित भारतजीवन के मानिक बाबू रामकृष्ण वर्मा द्वारा बंगाल में अनुरित चिन्ता-वाचनी या अधुमती ग्राहक की भावना' भी भारतमित्र के २८ नवम्बर सन् १९०१ के अंक में हुई थी।

१४. गु. नि. पु. ४५०

१५. वा. समा. प्र. पृ ११२ पर उद्धृत अंग्रेजी पत्र के एक अंश का अनुवाद

२८ मितम्बर १९०१ के भारतमित्र की कतरन हमें देखने को नहीं मिली किन्तु ५ दसदुब १९०१ के प्रंक में अधुमतीकर्ता का प्रतिबाध तथा मानव समाचार धीर्यक लेख छाया है। इसमें अनुमान किया जा सकता है कि २१ मितम्बर का लेख अधुमती सम्बन्धी ही होगा। सवाल है क्या 'चित्तीकृपातकी' और अधुमती एक ही पुस्तक के दो नाम हैं या वे दो पुस्तकें थीं? मुप्तजी ने अधुमती के अनुबाधक का नाम भुंशी उदितनारायण काल मिला है मत अधुमती के क्या द्विती में दो अनुबाध हुए थे? आवश्यक सामग्री के अभाव में ये प्रश्न अभीमाहित रह गये हैं।

श्री त्रिगोरीलाल गोस्वामी के तारा उपन्यास का विरोध भी मुप्तजी ने उसकी मर्यादाहीनता के कारण ही किया था। अपनी मानकी का विबाह एक मुनसमान में करने की अर्जुन की कामना थी तथा वारा जहानारा के भाई बहन होकर भी अत्यन्त निकट बोटि के कामुकतापूर्ण वास्तव्य करने की ताव मत्वेना क बाध मुप्तजी ने चितावनी दी थी 'हम नागरी प्रचारिणी सभा की नावधान करते हैं कि यदि सचमुच वह द्विती की उपति चाहती है तो सबसे पहले तारा पढ़ और गोस्वामीजी महाराज को उनकी पुस्तक के गुणदोष मजभावे कि वह कैसा गया और यथानक काम कर रहे हैं।' ११

मुरली में किसी 'साहित्यमेवी' ने एक लेख लिख कर हिन्दुओं की धर्म पुस्तकों में बौद्ध उपास गयना के उदाहरण दिये थे और प्रकारान्तरसे आधुनिक उपन्यासों की यौन उच्छृङ्खलता का समर्थन किया था। उसका करारा जबाब मुप्तजी ने साहित्य सेवा नामक लेख लिख कर दिया था। उपन्यासों में यौन उच्छृङ्खलता के बिना का विरोध करते हुए उन्होंने उक्त साहित्यमेवीयों को धो पट वारा था साहित्यमेवी चाहे कोई हो पर धन्य वह अपने वो उपन्यास लेखक मजमना है और अवश्य ही उसने गोस्वामी त्रिगोरीलाल का ता कोई गया उपन्यास लिखा है। उस गये उपन्यास की हिमायन के किये ही उनसे रामदृग्ग बर्मा के नाम का अठारा हुंकर यह वेदपार्थों की लिखा है। १

इसी लेख में उन्होंने अस्वीकृता का बड़ा समीचीन विवेचन दिया था। मुप्तजी के बचानसार "अस्वीकृति वह बात होती है जो स्त्री-पुरुषों में अयोग्य विचार को उत्पन्न करने किंवा जो बुद्धिमता में साम्य धर्मों में बही पाप, वैचक

डोफ्टरी धर्मशास्त्र धारि की विद्या सम्माननीय बातें इसलिए बदलीम नहीं कि उनमें उक्त मसाल का सम्मन्ध नहीं हो सकता । १० बदलीमता केसक की पूर्वाचनापूर्व दृष्टि से उत्पन्न होती है और अयोग्य विकार उत्पन्न करती है। बदलीमता का यह मसाल आज भी माननीय है। तुमसीनस्य युष्टजी का यह मर्यादापूर्व मारदाबाद केवम स्नीत-अस्नीत की भीमा तक ही नहीं घंटका यह गया, साहित्य के विविध क्षेत्रों में प्रतिपक्षित हुआ।

इसी मर्यादाबादके पहले उन्होंने साहित्यिक चोरी करनेवालों को काटकारा था, चाहे वे मुदीन कवि हों, चाहे बाबू रंजनाप्रसाद युष्ट । हिन्दी के कई लेखक बंदना का बंधेजी बंधों की नकल करते थे यह एक कुत्सक स्वतः का धीर ऐसा करने के कारण युष्टजी स्वयं उन लेखकों की धारणा करते रहते थे। किन्तु जब इसी बात को लेकर 'प्रबामी' ने हिन्दी लेखकों का उपहास किया तो हिन्दी के अनिमानी युष्टजी को यह असह्य हो गया। उन्होंने 'प्रबामी' की सामोचना तथा 'बंदना साहित्य' केम छिप कर छिद्र कर दिया कि बंदना के बंशिन बाबू बोनगुमार राय उपेन्द्रनाथ मुकजी प्रियनाथ मुकजी जैसे प्रतिष्ठित लेखक भी बंधेजी और फांसीसी पुस्तकों की नकल बिना उनके नाम दिए किया करते हैं। साथ ही यह भी लिखा "पर इन सब बातों के सिमने से हमारा यह मतमक नहीं कि हिन्दी वाले बंदना कितारों का ठरजुमा किया करें और असनी धम्कताओं का नामोनिधान न दिया करें और न उनम ठरजुमा करने की अनुमति लिया करें। बरंज हम यही विमाना चाहते हैं कि जो दोष हिन्दी अनुवाकताओं में आ गये हैं वह बंदना लेखकों में भी है। आशा है कि प्रबामी उस ओर भी ध्यान देगा। ११ इसी प्रकार जब किसी मि० युक्ता ने 'ऐडवोकेट' नामक बंधेजी पर में हिन्दी पत्रकारों और साहित्यकारों की होती उड़ाते हुए उन पर चोरी एवं अयोग्यता का आरोप लगाया था तब भी युष्टजी का हृदय निमगिता उठा था। स्वामि साथ के साथ-साथ आत्मविरासत का परिचय देते हुए उन्होंने 'हिन्दी साहित्य' नामक लेम में लिखा 'यदि उनका एक भी दावा सच है तो हमारे कामन को क्यों मारतमिष ही को मैं और उत्तमों एमे लेम दिताते बले किनमें मर्यादक ने अपनी योग्यता को धूल कर कुतहबसी से काम लिया

हो। अबदा उसमें ऐसे सैन्य सिखे गये हों जिनके विषय की सैद्धांत स्वयं भली भाँति न जानता हो।*** हिन्दी साप्ताहिकों में ऐसा पत्र है जिनमें पुराने नामी जेमुएट लिखते हैं। वह मुकाबिले में अपने देश का किसी भाषा के किसी पत्र से किसी बात में कम नहीं है। इतने पर भी यदि शुक्ला साहब समुष्ट नहीं हैं तो स्वयं हिन्दी में अच्छी अच्छी किताबें लिखें और अपने उन मित्रों से मिलवाएँ जो आपकी समझ में पत्रिका और मासिक हों। अकूरेजी कागजों में घर की मातापत्नी का परिचय देने क्या जाते हैं ? हीनता प्रदिग्ध से घस्ट व्यक्ति केवल धर्मशास्त्रिक धार्मिकता करके अपनी खेपना का प्रमाण देना चाहते थे। गुप्तजी उनमें प्रथम निदवान का भाव जगाकर उन्हें रचनात्मक कार्य करने के लिए प्रेरित करते थे।

पादशास्त्र का प्रचार करनेवाले का० साहिबराय बैस्व को जिस प्रकार उन्होंने कटकाय का उसी प्रकार गुला का प्रचार करनेवाले मिर्सा अन्तुल्लाफूर बी ए० बर्मपान का भी विरोध किया था। साहिबरायजी का शब्द था कि स्वयं में निदमहात्मा मोरखनाथ ने 'कामशास्त्र' उन्हें देकर उसका प्रचार करने की आज्ञा दी थी। मिर्सा अन्तुल्लाफूर शक्तिशाली बर्मपान बन गये थे और तद्दीनूल इस्लाम नामक पोथी में उन्होंने इस्लामी प्रचारकों की कड़ी निन्दा की थी। हिन्दुत्वनिष्ठ गुप्तजी न तो साहिबरायजी से अन्धविश्वास के प्रचार का स्वागत कर सके न बर्मपानजी की अन्ध गुला का। स्वयंसे त्वापी द्वारा अपने पुत्रने धर्म की निन्दा भी उनके अर्थाशय और धर्म की अनुचित बात होती थी।

गुप्तजी ने साहित्य के क्षेत्र में असीम आसक्तिकारी विचार-वादाओं और नूतन रचना विधियों का स्वागत करते हुए भी पुरातन रिकवका सर्वथा परित्याग करने की सलाह नहीं दी थी। भारतमित्र के तैर्मर्ष वर्ष का मिहारा लोचन करते हुए उन्होंने लिखा था "हिन्दी पत्र की भी कुछ बचत भारतमित्र में पत्र बर्त हुई। हमारे कम से कम इतना हुआ कि हिन्दी के कवि अपने लिये एक पत्र निश्चय गवत है। परन्तु अपने जी में इतना समझ रहे कि प्यारी की विरहप्या बर्षन और माधिका भेद बतलाने का समय अब नहीं है। लिखते बचि उक्त विषय में जो कुछ कविता कर गये वह कम नहीं है।

*** समय के बचि अपनी गवत करके जान नहीं पा सकते। यह इतना

मार्ग तलाश करना चाहिये । हम पं० श्रीर पाठक तथा पं० महावीर प्रसाद जी द्विवेदी का हृदय से अभ्यसाध करते हैं । हिन्दी पद्य को पद्य पर ले जाना आप जैसं सोचो ही का काम है । ११ हिन्दी कविता में युगान्तर करने के लिए श्रीरपाठक के ऊनड़याम धीर एकान्तवासी योगी जी के पहले भी प्रयत्न कर चुके थे । पाठकजी ने आन्त पत्रिक का अनुवाद एक तरह से उन्हीं के साधन से किया था । द्विवेदी जी की कविताएँ भी वे हिन्दोस्वाभ हिन्दी कव्यवासी पारमपित्र में निरन्तर प्रकाशित करते रहे थे किन्तु उनकी भाषा की स्किष्टता तथा यक्षता धीर गुरु अनुप्रास आदि के स्वाभ की वृत्ति उन्हें नहीं अच्छी लगती थी । स्वयं भी उन्होंने नये ढंग की कविताएँ लिखी थीं तथा सरयनाउरगु कविरत्न एवं भूषीपिनाम्बर प्रसाद आदि अनेक कवियों को नवीन विषयों पर कविता लिखने के लिए प्रोत्साहित भी किया था किन्तु शृंगार रस का गुरु समक अनुप्रास आदि एकदम स्वाभ है व ऐसा भी नहीं मानते थे । इस विषय पर उन्होंने 'नायिका भेद' तथा 'आहूत' है सो होता नहीं धीरक वा लेख लिखे । वे पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी की इस बात से तो सहमत थे कि आज के युग में नायिका भेद का जमाना नहीं रहा किन्तु इसके लिए प्राचीन कवियों की ज्ञानत मलामत करना अच्छा नहीं समझते थे साथ ही वह भी मानते थे कि नायिका भेद और शृंगार रस की कविताएँ लिखने की परिपाटी केवल हिन्दी में ही न होकर अन्य भाषाओं में भी थी धीर है । बंगला के बुम्माकर सरतचम् और चिमिरबुमार घोष जैसे पुराने नये कवियों के उद्धरण देकर उन्होंने अपने मत का समर्थन किया था । कविता के लिए गुरु अनुप्रास समक मलविचार, मायाविचार, छन्दविचार, आदि को वे आवश्यक तथा उन्नोनी मानते थे फिर भी नवीन प्रयोगकर्ताओं की अपने मिश्रण को प्रमाणित करने का अवसर देने के लिए वे सदा तैयार थे । उनका कहना था कि गुरु अनुप्रास छन्द बिना यदि कोई कविता लिखना चाहे तो पुरानों को बिना कोन अच्छी कविता लिख कर स्या वे उनकी बात मान ली जायगी । ऐसा करने में शक्य होने पर केवल पुराने को कोमले रहना निम्नगीम है बुरागम है प्रति यज्ञा धीर धेष्ट, उन योगी नवीन का अभिमानन यष्टजी का मह्य स्वभाव रहा है ।

मनिन-नाश्रिय के साथ-साथ उपयोगी पारखों की रचना भी हिन्दी में हो बद उनकी बड़ी इच्छा थी । एक स्थान पर उन्होंने उरग्यान मेगन की गुपना

२० हिन्दी साहित्य भा. नि. (१९०५) न. कि. गु के पुस्त. मे सु

२१ का स्मा १ के पू० १२० में छटत पूरा लैस म कि गु के पुस्त. मे सु

हो। अबका उगमें ऐसे लेख मिले गये हों जिनके विषय की सेवाक स्वयं मभी भांति न जानता हो। -- हिन्दी साप्ताहिकों में ऐसे पत्र हैं जिनमें पुराने नामी प्रेमिएट मिलते हैं। वह मुकाबिले में अपने देश का किसी भाषा के किसी पत्र से किसी बात में कम नहीं है। इतने पर भी परिश्रम साहस सम्पुष्ट नहीं है तो स्वयं हिन्दी में अच्छी अच्छी किताबें लिखें और अपने उन मित्रों से लिखावाएँ जो आपकी समझ में फ़ायद और लायक हों। अङ्गरेजी भाषाओं में घर की मातामकी का परिचय देने क्या गति है ?" शीघ्रता प्रविष्ट से प्रसन्न व्यक्ति केवल ध्वंसारमक धातौचना करके धरती भेष्यता का प्रमाण देना चाहते थे। मुत्तजी उनमें प्रथम विचारों का भाव भगाकर उन्हें रचनात्मक कार्य करने के लिए लक्ष्य-धारते थे।

पातण्ड का प्रचार करनेवाले सा० शास्त्रिणाम बैस को जिस प्रकार उन्होंने फटकारा था उसी प्रकार गुणा का प्रचार करनेवाले मिर्सा अणुलम्पूर बी० ए० उर्फ धर्मपाल का भी विरोध किया था। शास्त्रिणामजी का दावा था कि स्वर्ग में मिथमहात्मा मोररत्नाय ने 'कामशास्त्र' उन्हें देकर उसका प्रचार करने की आज्ञा दी थी। मिर्सा अणुलम्पूर गुड्डिकरवाकर धर्मपाल बन गये थे और तृतीयकृत इस्लाम नामक पोथी में उन्होंने इस्लामी प्रभावों की बड़ी लिखा की थी। हिन्दुत्वनिष्ठ मुत्तजी न तो शास्त्रिणामजी के भण्डविश्वास के प्रचार का स्वागत कर सके न धर्मपालजी की अन्य गुणा का। स्वयं स्वामी द्वारा धरने पुराने धर्म की निन्दा भी उनके मर्माशवार और सील को अनुचित मान होती थी

मुत्तजी ने माहिर के क्षेत्र में गरीब आर्यवाणी विचार-वाचकों और मूलतः रचना लेखकों का स्वागत करते हुए भी पुरातन विचारका सर्वथा परिहाय करने की सलाह नहीं दी थी। भारतवित्र के तैमिर्न बर्न का निहाय मोहन करने हुए उन्होंने लिखा था "हिन्दी पत्र की भी कुछ बर्न भारतवित्र में गज बर्न हुई। समय बच से बच दना हुआ कि हिन्दी के कवि बनने लिये एक बच निदान गवने हैं। परन्तु अपने जी में दना समझ रने कि प्यारी की विरहप्यथा बर्नन और नापिना भेद बनाने का समय अब नहीं है। लिखते कवि उक्त विषय में जो कुछ बर्नना कर गये वह कम नहीं है। एक समय के कवि उनकी बर्नन करके नाम नहीं पा सकते। यह मुत्तजी

मात्र तत्साध करमा चाहिये । हम वं० श्रीर पाठक तथा वं० महावीर प्रसादजी
 त्रिवेदी का हृदय से सम्पवाद करते हैं । हिन्दी पत्र को पत्र पर से जाना
 आप जैसे लोगों ही का काम है । ११ हिन्दी कविता में मुमास्तर करने के लिए
 श्रीरपाठक के ऊनकृपाय श्रीर एकान्तवासी बोयी की वे पहले भी प्रसाद
 कर चुके थे । पाठकजी ने धाम्प पत्रिका का अनुवाद एक तरह से उन्हीं के
 प्रायश्च से किया था । त्रिवेदी जी की कविताएँ भी वे हिन्दोत्थान हिन्दी
 बपवासी भारतमित्र में निरन्तर प्रकाशित करते रहे थे किन्तु उनकी भाषा की
 सिस्पष्टता तथा रचना श्रीर गुरु अनुप्रास आदि के त्याग की वृत्ति उन्हें
 नहीं अच्छी लगती थी । स्वयं भी उन्होंने नये रूप की कविताएँ लिखी
 की तथा सत्यनारायण कविरत्न गढ़ मूर्तीपिताम्बर प्रसाद आदि अनेक
 कवियों को नवीन विषयों पर कविता लिखने के लिए प्रोत्साहित
 भी किया था किन्तु शृंगार रस या गुरु वमक अनुप्रास आदि एकत्र
 त्याग्य हैं व एसा भी नहीं मानते थे । इस विषय पर उन्होंने 'भाविका भेद
 तथा चाहने हैं मो होता नहीं सीपक हो लेन निने । वे वं० महावीरप्रसाद
 त्रिवेदी को इस बात से तो सहमत थे कि भाव के रूप में भाविका भेद का
 प्रमाना नहीं रहा किन्तु इसके लिए प्राचीन कवियों की मान्य मन्मत करमा
 अच्छा नहीं समझते थे साथ ही यह भी मानते थे कि भाविका भेद और शृंगार
 रस की कविताएँ मिलने की परिपाटी कबल हिन्दी में ही न होकर अन्य
 भाषाओं में भी की थीर है । बगला के घूणाकर भरतचन्द्र और गिरिगुमार
 पोष जैसे पुराने नये कवियों के उद्धरण देकर उन्होंने अपने मन का समर्थन
 किया था । कविता के लिए गुरु अनप्राय वमक गणविचार, भावविचार,
 छन्दविचार, आदि की वे आवश्यक तथा उपयोगी मानते थे फिर भी नवीन
 प्रयोगकर्ताओं को घउन निष्ठान्त को प्रमाणित करने का अवसर देने के लिए
 वे सदा तैयार थे । उनका कहना था कि गुरु अनुप्रास छन्द बिना यदि कोई
 कविता लिखना चाहे तो पुरानों की बिना कौमे अच्छी कविता मिल कर दिना
 के उमदी बात जान ली जायगी । ऐसा करने में समर्थ होने पर केवल
 पुराने की कोमले रहना निम्ननीय है पुरातन के प्रति भद्रा और घेष्ठ उन
 बोयी नवीन का अभिनन्दन गणजी का गहन स्वभाव रहा है ।
 कविता-साहित्य के साथ-साथ उपयोगी साधनों की रचना भी हिन्दी में हो
 यद् उनकी बड़ी इच्छा थी । एक स्थान पर उन्होंने उग्याय केन की गुणग

२०. हिन्दी साहित्य मा मि (१९०५) म. कि गु के पुस्त. में सु

२१. बा स्म. ८ के पृ० १२० में उद्धृत पूरा लैस म कि गु के पुस्त. में सु

में इतिहास सेलन की अधिक महत्त्व दिया है। भारतीय पुनर्जागरण के एक उद्योग के अनुरूप ही सर्वदा और उपयोगिता जतीठ वीरमबोध और उग्रवत धर्मिय के निर्माण की स्फुहा तथा छावना को ही मुत्तजी ने परम मूर्ख के रूप में स्वीकारा था और उन्हीं के अनुसार साहित्य का कायाकल्प करना चाहा था।

भाषा सम्बन्धी आलोचना

मुत्तजी की भाषा-सम्बन्धी पकड़ बड़ी सख्ती थी। भाषा के वे स्वयं बड़े अच्छे प्रयोक्ता थे और भाषा सम्बन्धी मुटियों की मूर्ख विवेचना भी कर सकते थे। बस्तुतः भाषा-सम्बन्धी क्षेत्र में उनकी सबसे बड़ी देन भाषा सुधार की ही है। भाषा-सम्बन्धी उनके सिद्धान्त बड़े स्पष्ट थे। उनका विश्वास था भाषा सरल प्रवाहमयी बामुदाबरा बुल्ल और जीवन्त होनी चाहिए। इन्हीं सिद्धांतों के अन्तर्गत विभिन्न धीरे-धीरे भाषा उन्हें अग्रिम की अवसर मिलने पर एसी भाषा का उन्होंने विरोध किया और कभी कभी जय कर दिये थे।

भाषा सुधार की ओर उनकी बूझी आरंभ से ही थी। हिंदी बमबानी का मन्दावन पर उन्हें भाषा-संस्कार की समता के कारण ही प्राप्त हुआ था। सन् १८९० ई० में महेनमनिनी के हिंदी अनुवाद की ओर पूर्व भाषा के लिए पटवारा बनाने वाला कामाचनारामक पत्र उन्होंने लिखा था। १० अमृतमान बचवर्नी १० प्रभुदयाम गाँव तथा बाबु बालमुकुन्दगुण के सह-सम्पादनमें हिंदी बमबानी सन् १८९३ व १८८ तक लिखी। तीनों सिद्धांत भाषा की सद्भावा के प्रति अत्यन्त जागरूक थे। १० अमृतमान बचवर्नी में अपने संस्मरण में लिखा था 'हिंदी-बमबानी का माईरुन इन के निरुद्ध हो हम तीनों भाषा उद्धार करने की राह बनाने थे। भाषा-निष्ठ के निम्ने हथारी सहाई ऐसी सहाई होनी थी कि किसी किसी दिन सारी भाषा जीव जाणी थी। इस प्रान्त के लिए सार को बड़ी जोड़न से भाषा का समुचित लाभित्व होना हम पर बड़ी जोड़न बहान होनी थी। 'पण्डित बरनीनारायण चौधरी 'हिंदी बमबानी की 'भाषा सन्ने की टरनाउ बनाना था। उस टरनाउ का सही निरुद्ध बाबु बालमुकुन्द गुण की सहाई बिना नहीं निरुद्ध था।

मुत्तजी उर्दू व हिंदी में आये थे। यह एतिहासिक मध्य है कि गरी बोनी उर्दू गट-मय में ही पढ़ने का निर्धारण सहाई प्राप्त कर कर गयी थी।

यह भी स्मरणीय है कि भाषा की सरलता का अर्थ पुष्पही वह नहीं समझते
 व कि उसे कृत्रिम रूप से सरल बनाने की चेष्टा की जाये और इस तरह उसके
 अभिव्यक्ति को नष्ट कर दिया जाय । हरिऔध जी के 'अपक्षिपा पूत' की
 आलोचना करते हुए उन्होंने हिन्दी की कृत्रिम रंग से सरल बनाने का विशेष
 किया था । वो दूक शब्दों में उन्होंने कहा था "हम ठेठ हिन्दी के तरफदार
 नहीं । ठेठ हिन्दी का हमारी समझ में कुछ अर्थ भी नहीं । यह ठेठ हिन्दी
 किस प्रकार ईसाई द्वारा साहित्य में प्रयुक्त हुई इसकी चर्चा करने के अनन्तर
 पुष्पजी ने 'अपक्षिपा पूत' के कुछ चिरप प्रयोगों की समीक्षा करते हुए अन्त में
 इस शैली के सम्बन्ध में अपना स्पष्ट निर्णय इस प्रकार दिया था "हमारे दिव्य
 इस समय वही हिन्दी अधिक उपकारी है जिसे हिन्दी बोलने वाले तो समझ
 ही गये उनके सिवा जल प्रायों के कोप भी उसे कुछ व कुछ समझ सकें जिनमें
 वह नहीं बोलती जाती । हिन्दी में संस्कृत के सरल-सरल शब्द अवश्य अधिक
 होने चाहिये इसमें हमारी मूल भाषा संस्कृत का उपकार होना और बुझानी
 बंगाली मराठी आदि भी हमारी भाषा को समझने के योग्य होंगी । "

अयोध्यामिहरी स्त्री को 'इतिरि' मित्र की 'मित्र' स्वर्य की सरल' मर
 को मरद' आदि शिल के अपनी भाषा को ही सात पीछे धकेलने की चेष्टा
 क्यों करते हैं ? " इस सिद्धान्त के अनुयाय से सहमत होते हुए भी इनके
 अतिरेक को हम संशोधन सापेक्ष समझते हैं । यह ठीक है कि संस्कृत के
 सत्तम घटा का बहुपकार करने वाली नीति निगम्य स्वाभाव है यह भी ठीक
 है कि मित्र की 'मित्र' के रूप में कृत्रिम रंग से सरल करना भी गलत है
 किन्तु उचित अवसर पर सरल सरल जैसे प्रचलित सदृश्य शब्दों का प्रयोग
 करना अपराध है ऐसा हम नहीं मानते । पुष्पजी लंबकण उर्दू के उम्माशों
 की मरकवात की नीति से प्रभावित व । उन्होंने हमी सेम में लिखा था
 कि "हिन्दी प्रायः के बेचने लोग बोलते हैं तो उन्हें शब्द साधारण भाषा में
 नहीं जाने चाहिये । मातरना का अभिमान रखने वाले संस्कृत शिरो के
 धारकों ने भी 'आम्पना' को दोष माना है । हमारा अन्तर यह है कि
 भाषा के द्वारा प्रयुक्त और देवाय मर भी अवसर के अनुकूल माहित्य में
 व्यवहृत हो सकते हैं । आधिक्य बसाधार हिन्दी में ऐसा कर रहे हैं और
 इससे भाषा की व्यवस्था बाधित बढ़ती है उसमें सादगी आती है ऐसा हम
 मानते हैं ।

इसी तरह हम येष में और अम्यत्र भी गुप्तजी ने प्रो० आचार के इस विचार को पुनराया है कि हिन्दी अर्थात् लड़ी बोमी ब्रज भाषा से बनी है। भाषा विज्ञान के पंडितों ने इस मत को प्रामाण्य प्रमाणित कर दिया है। अस्तु लड़ी बोमी ब्रजभाषा के समान ही गौरवेली अपभ्रंस से उत्पन्न हुई है।

शब्दों के प्रयोग में है कितने सावधान थे और अपने प्रयोग को गुप्त प्रमाणित करने लिए वे अपने पक्ष में पुष्ट उदाहरण देकर प्रतिपक्षी की कठे परारत कर सबने थे हमका अष्ट उदाहरण यों के अर्थ को लेकर श्री बेंकटेश्वर समाचार के सम्पाक पं० मधुसूदन मेहता ने हुमा उनका विवाद का। गुप्तजी ने येष का प्रयोग अम्य के अर्थ में किया था जब कि मेहता जी उसका अर्थ प्रतीतिष्ट करते थे। अम्य में मेहता जी को मानना पड़ा कि येष का एक अर्थ अम्य भी होता है। यह १९०० ई. की घटना है।

निश्चित या अगुप्त भाषा का प्रयोग करने के लिए उन्होंने सरस्वती की कई बार आलोचना की थी। इन व्यंग्यात्मक आलोचनाओं की चरम परिणति 'भाषा की अर्थ चरमा' सम्बन्धी गुप्त विवेची विवाद में हुई। इस विवाद ने अन्तिम भारतीय रूप धारण किया और उस समय के हिन्दी के प्रायः सभी प्रमुख विद्वानों ने इस विवाद में भाग लिया। यह दुर्भाग्यपूर्ण तथ्य है कि इस विवाद की अन्तिम आलोचना का अन्त बना लिया गया और फिर तो व्यंग्यात्मक आलोचना की लोभी छोड़ार हुई कि मुलमुल विवेचनीय तत्त्व या तो बिस्मृत कर दिने नय या लठ एक अर्थ सत्य का सहारा लेकर भीषांगित त्रिपय। उस समय की मर्मदाओं में यदि हमकी मानवीय बुद्धिमत्ताव्य स्मरण मान भी दिया जाय तो भी यह अपेक्षा का कि परवर्ती विद्वान इस विवाद में अम्य निश्चित आधारभूत मिथ्याओं की विवेचना करते दिम्बु पर की बात है कि क्या नहीं हुआ। विचार में बिना गये हम चेष्टा करेंगे कि इस विवाद के बुनियादी प्रश्नों पर विचार करें।

अम्य दृष्टि में विचार करण पर यह मानना पड़ता है कि इस विवाद के घूर्ण में व्यंग्यात्मक अर्थों की एक तत्त्व का। पं० मठाधीन प्रचार विवेची ने जनवरी १९०० ई. में जिम्मी मितावनी के तृतीय भाग की अन्तर समालोचना करने हुए उसमें अगुप्त 'निम्नीना' पुस्तक की कुछ कविताओं की भी अतिशय उद्गारी थी। 'निम्नीना' के केवल गुप्तजी थे। रामचन्द्रावत के नाम में निम्न

केल में बिबीना की कविताओं पर किये गये जखेरो का उत्तर दिया गया था । इस पर पुनः आलोचना प्रत्यालोचना हुई । यह जान कर कि बिबीना के लेखक गुप्तजी ही हैं त्रिवेदीजी न व्यक्तिगत पत्र लिखकर अनजान में की गयी बयानी प्रत्यालोचना के लिए तब प्रकाश किया ताब ही प्रत्यालोचना को बठोरता को मित्रता के व्यवहार से दूर की बात बताया । ^{११} गुप्तजी ने घरने २५ २ १२०० के उत्तर में यह तो लिखा कि बिबीना पर धापके निपटने से मुझे हर्ष है दुःख नहीं । ऐसी बातों का कगार मुझे नहीं होता । किन्तु यह बात उनके मन में चुन अक्षय गयी थी । इसी पत्र में उन्होंने आने लिखा था “बापकी कविता में शीघ्र विज्ञान की चेतना नहीं की परन्तु आज्ञा ही तो कर्म ? पर धर्त यह है कि उसमें अन्य भाव न समझ जाये । वास्तव में तो मैं इस बात का तरफदार हूँ कि किसी पर बेजा हमला न हो । बहरवस्ती किसी का बाप विज्ञान मेरी आपत्त नहीं । मेरे महापत्र पर इसकी रोक टोक और पश्चित मोघरजी के महापत्र को कुछ नहीं । ” इससे यह ध्वनि निकलती है कि गुप्तजी समझते थे कि बिबीना की कविताओं पर बेजा हमला किया गया था । एक सूक्ष्म ध्वनि यह भी है कि त्रिवेदी जी की आदत बहरवस्ती दूसरों का शीघ्र विज्ञान की थी । इनके कहने भी गुप्तजी त्रिवेदी जी से ५ १२-१६ और ११ १२ १३ के अपने पत्रों में प्राथमा कर चुके थे कि जामा भीतराम की अधिक कड़ी आलोचना नहीं की जानी चाहिए । उन्होंने यह भी स्पष्ट कर दिया था कि भीतरामजी न उनके मित्र हैं न उनसे उनका पत्र व्यवहार या जान-बुझान ही है । मेरा मतलब यह है कि किसी अन्य लेखक से कुछ भूल भी हो तो उन पर अधिक कटाक्ष न होने चाहे । ^{१२} गुप्तजी त्रिवेदी जी की बठोर आलोचना पत्रिका है पहले से ही अमन्युक्त वे अब यह अमन्योप और बढ़ गया । गुप्तजी को लगता था कि त्रिवेदी जी अपने का बहुत ऊँचा और अन्य लेखकों को बहुत नीचा समझ कर उनकी आलोचना करने हैं । दोनों स्वाभिमानी और बनस्वी थे दोनों को एक दूसरे की स्पष्टवाचिता कुछ-न-कुछ पकर लानी ही थी ।

इसके बाद त्रिवेदीजी ने गुप्तजी के बारे में तो नवम्बर १९०५ तक आलोचनात्मक कुछ नहीं लिखा किन्तु अन्य लेखकों पर उनका आलोचना का निर्भीक

और निर्मम कुटार चलता रहा। डिबेरी जी द्वारा सरस्वती का सम्पादन स्वीकार करने के पहले ही गुप्तजी सरस्वती की आलोचना मर्मशीर्षक भाषा की निबिडता और अशुद्धियों के छिप कर रहे थे। ऐसी टिप्पणियों में 'मूलरी सरस्वती' 'समालोचक पर सरस्वती' 'सरस्वती की नाट्यी' शीर्षक टिप्पणियाँ उपलब्ध हैं। डिबेरी जी के सरस्वती-सम्पादक होने के बाद भी वे 'सरस्वती का विमल कविता 'साहित्य-समालोचना' सं० चिब आदि को के ध्वंशपूर्ण टीपों में उनकी आलोचनाएँ करते रहे। वे आलोचनाएँ अनुचित थीं ऐसा नहीं कहा जा सकता किन्तु उनमें कभी-कभी डिबेरी जी पर बहुत कटाक्ष रहता था। गुप्तजी ने 'आयिका मेर 'बाहल है सो होता नहीं' शीर्षक छेड़ मुद्रित डिबेरी जी के विचारों का आशिक लण्डन करने के लिये लिखे थे। 'हिन्दी में आलोचना' शीर्षक गुप्तजी की लेखमाला से श्राव होता है कि इनके अनिश्चित भी दो तीन लेख डिबेरी जी के विचारों का संशोधन करते हुए उन्होंने लिखे थे। यह सचमुच आश्चर्य की बात है कि डिबेरी जी जैसे दबंग स्वभाव के व्यक्ति ने अपने विचारों की अपनी आलोचनाओं को चार-पाँच वर्षों तक मोन भाव में रखा।

इन गुप्तमूर्ति के बाद गुप्तजी ने आत्माराम के नाम से 'भाषा की अनस्पष्टता' शीर्षक लेखमाला लिखी। 'व्याकरण विचार' शीर्षक लेख में उन्होंने दावा किया था 'आत्माराम के बटारा उनकी पुस्तकसी विस्मयिका मीठी छेड़ जो कुछ है डिबेरी जी के लिखने के संन पर, उनकी भाषा की बनावट पर, उनके व्याकरण सम्बन्धी ज्ञान पर उनके दलमवरमाकुलता पर उनके गंभीरता की भाषा-मयन करने आदि पर है। हमारी समझ में बहुत की भीमा स बाहर आत्माराम बहुत कम गया है। किसी बातको उसने ठूल भी नहीं दिया।' ' किन्तु धीरा की समझ में उनके बटारा मीठी छेड़ में बहुत भागे जाकर बहुत हो गये थे बहुत की भीमा के बाहर जाकर पापद पहनी बार करने मित्रान्त क विरगिन उन्होंने व्यतिरिक्त छोड़ने भी दिये थे और बहुत सी बातों को ठूल भी दिया था। गेड है कि हम लोगों की समझ को भ्रमिहीन नहीं समझने। गुप्तजी के मतानुसार डिबेरी जी के 'भाषा और व्याकरण' लेख में यह नहीं गलत होता कि डिबेरी भाषा में कोई व्याकरण नहीं है और उनमें एक गया व्याकरण बनाया जाये न ही 'हिन्दी या लिपी ने किसी लेखक के नाम

उसमें कुछ सहानुभूति या यत्ना प्रगट होती हैं' केवल यही स्पष्ट होता है कि हिन्दी में नवर मंच रखा है। जितने पुराने लेखक ने सब अनुष्ठान लिखते थे। नये भी अनुष्ठान और बेलिकामे मिलते हैं। जितने व्याकरण हिन्दी में हैं वह किसी काम के नहीं। पुष्ट हिन्दी लिखना कोई जानता नहीं। जो कुछ जानते हैं सो उस लेख के लेखक। हमारा विद्वान है कि पुष्टजी स्वयं जानते हैं सो उस लेख के बाद यदि डिबेरी जी का 'भाषा और व्याकरण' लेख तथा अपना यह निर्यय छात्र पत्र से पढ़ते तो उन्हें इसकी अतिरंजनाएँ और विह्वलताएँ अनुचित लगती। डिबेरी जी ने अग्यम भले ही लाला लीलाचरण पारि कुछ लेखकों की प्रशंसाएँ छिपछा का अतिशय कर की हों इस क्षेत्र में उनका स्वरसंयत और विचारप्रधान है, न किसी ग्राम्य लेखक की ध्वजा का प्रयास है न अपनी सर्वज्ञता के प्रदर्शन का। उक्त लेख के इस खंडराल से डिबेरी जी की विनीत भूमिका स्पष्ट हो जायेगी। "यहाँ पर हम व्याकरण विषय हिन्दी रचना के दो चार उदाहरण देना चाहते हैं। पर जिनकी रचना के न उदाहरण हैं उनमें इस कारण हम आवश्यकता समा-प्रार्थना करते हैं—चाहे वे इस समय इस लोक में हों चाहे परलोक में। इसमें कुछ मानने की बात नहीं। हम स्वयं भी बहुधा व्याकरण विषय लिख जाते हैं। इसका कारण यह है कि व्याकरण की तरह लोगों का ध्यान ही कम है। ११ हम स्वयं भी बहुधा व्याकरण विषय लिख जाते हैं अथवा प्रकट करना है या न प्रकट करना है यह मानना किसी के लिए भी मुश्किल होगा। उस लेख से यदि किसी को यह भी ध्यात होता हुआ न आठ हो कि लेखक का अति प्राय हिन्दी के सर्वापूर्य व्याकरण की रचना की आवश्यकता दिखता कर विद्वानों का ध्यान व्याकरण-रचना की ओर तथा लेखकों का ध्यान व्याकरण पुष्ट भाषा लिखन की ओर आकृष्ट करना है तो सबका क्या इलाज है ? हम यह नहीं कहते कि उस लेख में डिबेरी जी की कहीं कोई गलती नहीं है निर्यय ही कहते हैं कि डिबेरी जी ने यह विचारपूर्व लेख जिस उद्देश्य से लिखा

३० गु० नि० पु० ४२९

३१ सारस्वती के मध्यम १९०५ और फरवरी १९०६ के अंकों में ध्याप और व्याकरण शीर्षक से दो सगुनी में डिबेरी जी का जो लेख छपा था वह उनमें प्रसन्न समीक्षा में संकलित है। हमने उस लेख के उदाहरण उसी ग्रन्थ से दिये हैं। समीक्षा ५० ८९-९०

वा उस मलय समय पर गुप्तजी ने जिस ढंग से जिस रीती में उसकी हँसी उड़ाते हुए आलोचना की उससे प्रकट व्याकरण विचार का न रह कर व्यक्तिगत मानापमान का हो गया । 'अनस्मिन्नता' का डूँबा दिखा-दिखा कर जिस तरह डिबेरी की को मार्गश्रित करने की चेष्टा की गयी उससे भाषा परिमार्जन के संघीर सिद्धान्तों पर व्यक्तिमुक्त विचार होने के स्थान पर किसी न किसी प्रकार 'अनस्मिन्नता' को व्याकरण शुद्ध सिद्ध करने की जिद बड़ी एक दूसरे पर बेका हमला करने और एक दूसरे के प्रयोगों में जबरबस्ती थोप दिवाने की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिला । गुप्तजी की इस असन्तुलित आलोचना का पहला सिद्धांत ऊँहीका आलोचना सिद्धान्त हुआ । 'आत्माराम की आलोचना' लेख में उन्होंने यह सिद्ध करना चाहा है कि अपनी केलुमाला में उन्होंने डिबेरी की पर व्यक्तिगत आरोप कही नहीं किया है जबकि डिबेरी की घोर उनके समर्थकों ने उन पर अनेक प्रकार के व्यक्तिगत और वर्णमत्त आक्षेप किये हैं । यह ठीक है कि डिबेरीजी पं० गोविन्दनाथयण मिश्र तथा कुछ और विद्वानों ने अनुचित आक्षेप में ऐसे घसीमन आरोप स्थित हैं किन्तु आत्माराम ने ही इसकी पहल की थी यह भी कुत्सह सत्य है । उदाहरण के लिए डिबेरी जी के सम्बन्ध में यह लिखा उन पर व्यक्तिगत आक्षेप करना ही है कि "तबमुच जिस भाषा के ठेठेदार भाग जैसे पर समझी हों उस आभाषी का विचार ही होता है ।" ३१ "एक विशेष प्रकार के जलरसी की भाँति डिबेरीजी को तिनारे के बीकड़ ही में सब मिल जाता है । ३२क इसी तरह के कुछ और आरोपों से दुग्ध होकर डिबेरीजी ने लिखा था "हमारा देहातीपन हमारा संस्कृत स्मोरी बातावानी उच्चारण हमारा बहुत तरह की बातों का फाँक जाना हमारा मस्तुत का अतिमीय ज्ञान—न हमारे लपेट से कुछ लपेटकार रगता है न हमारे नामों में ।" ३३ और पं० गोविन्दनाथयण मिश्र के सम्बन्ध में गुप्तजी ने लिखा था "जब एक पहाड़ी लगीर के पुराने लम्पू की मुड़म मुड़म मुनिये । बहुत दिन में यह बीरगरोध जुगवा था । अब उगने बगवानी के पर्वबवन पर रंग कर करने पट्टों लपिग बोम्मा दुग्ध किया है ।" ३४ क्या वह निम्न बोधि का व्यक्तिगत आरोप नहीं है और क्या इसका कुछ भी सम्बन्ध विचारणीय विचार में या विद्वानों के लेख में है ? हमें यह रंग कर आत्मरिक्त

३१ गु० नि० पृ० ४३५। ३२क वही पृ० ४६६।

३३ वही पृ० १५८-५९। ३४ गु० नि० पृ० ४८१।

कहे जाते हैं कि अपने जीवन में दायद पहली और आखिरी बार मुन्तजी होने बस जाये हो गये कि स्वयं अपने धीपित और अब तक आचरित सिद्धान्त के प्रतिष्ठित सेवकी बसा बैठे । इन्हीं मुन्तजी ने १९०२ ई० में सरस्वती सम्पादक को बाबू योपालराम यहमरी पर अमुषित व्यक्तिगत आक्षेप के लिए फटकारते हुए लिखा था "सरस्वती को चाहिये कि हमधियों का काला रंग मिटानेकी जगह अपने सम्पादक का छिछोरावन पिटाये क्योंकि किसी पुस्तक की समालोचना करते करते, उसके सम्पादक की समालोचना करने का काम निराश्रित छिछोरावन है । लोग सरस्वती के लेखों की समालोचना करने का अधिकार रखते हैं उनके सम्पादककी आलोचना करने का नहीं ।"^{११} यह दुर्भाग्यपूर्ण तथ्य है कि समय पक्षों के व्यक्तिगत आक्षेप और आक्षेप के कारण विचारवस्तु विषय पर सुसंगत विचार नहीं हो सका ।

'माया की अनस्मिता' लेखमात्र के धीरे-धीरे एवं उसके प्रत्येक पक्ष के अन्त में अनस्मिता को व्याकरण से सिद्ध करने की चुनौती के कारण मुन्तजी के लेखों में उदासी बड़ी माया सम्बन्धी अन्य नवीर समस्याओं की तरफ बिनाओं का ध्यान उचित माया में न आकर अनस्मिता के चारों ओर ही केन्द्रित हो गया । बार-बार की चुनौती से स्थिति ऐसी हो गयी कि यह माना जान सभा कि यदि अनस्मिता व्याकरण से सिद्ध नहीं होती है तो द्वितीय जी की हार है और यदि व्याकरण ने अनस्मिता सिद्ध की जा सकती है तो मुन्तजी की पराजय है । स्पष्टतः मुन्तजी की स्थिति सन्नद्ध थी क्योंकि मायाएँ रूप से संस्तुत व्याकरण के अनुसार 'अस्मिता' शब्द बनता है 'अनस्मिता' नहीं । पं० जनप्रापप्रसाद जनुर्वी ने इस स्थिति का वर्णन करते हुए श्री मोक्षिन्द निबन्धावली के प्रारम्भ में लिखा था, "द्विपुष्टवासी बाबू बालमुकुन्द मुन्त जिस समय 'अनस्मिता' शब्द के कारण 'आरम्भिक' में भीषण पण्डित महावीर प्रसादजी द्विवेदी को हराकर रखे के और द्विवेदीजी भी हारने जाते थे उस समय विषयी ने 'हिन्दी बंधु' में 'आत्माराम की टें टें' शीर्षक लेखमात्र में द्विवेदीजी का पक्ष समर्थन किया था और बण्डा लिखा था । कहने वाले अब भी कहते हैं कि यदि विषयी ने पक्ष में न जाते तो द्विवेदी जी ने पक्ष हार जाते ।"^{१२} पं० मोक्षिन्द निबन्धावली विषय ने अनस्मिता शब्द को संस्तुत व्याकरण से नहीं हिन्दी व्याकरण से सिद्ध किया । उनका तर्क था "हिन्दी

११ अन्तर्लोक पर सरस्वती—पृ० १०० के पृष्ठ १० में पृष्ठ

१२ श्री मोक्षिन्द निबन्धावली पृ० १०) ।

घरों में व्यंजन के आगे घाने वाले निवेद्यवाचक 'न' को भी 'अन' होता है। इनमें हिन्दी में 'अनरीति' 'अनरस' 'अनहोनी' 'अनमित' 'अनमोम' 'अनपद' 'अनहित' 'अनमणित' 'अनसुनी' 'अनहुई' आदि अनेकों शब्द सर्वथा विमुक्त ही माने जाते हैं। ऐसी अवस्था में हिन्दी के लेख में डिबेरीजी ने 'अनस्मिरता' मिला ही थी तो अनर्थ क्या किया ?" मुत्तजी 'अनस्मिरता' की मधुमि को आवश्यकता से बहुत अधिक लुब्ध थे वृत्त से घटा इतनी घातानी से 'अनस्मिरता' शब्द को किसी भी व्याकरण से मुक्त नहीं मान सकते थे। हिन्दी व्याकरण के अनुसार अनस्मिर' शब्द बन सकता है यह मान कर भी 'माया की अनस्मिरता' के सबसे श्रेष्ठ में अनस्मिरता' शब्द पर इस आधार पर उन्होंने आपत्ति की कि हिन्दी के अनमित अनमोम अनपद आदि शब्दों में 'ता' नहीं जोड़ी जा सकती घटा 'अनस्मिर' यदि हिन्दी का शब्द है तो उसके आगे भी 'ता' नहीं लगायी जा सकती और इस तरह 'अनस्मिरता' शब्द मुक्त नहीं द्युष्ट। मुत्तजी को यह घाघा भी थी कि शायद डिबेरीजी मिथ्या भी इस मुक्ति को स्वीकार न करें क्योंकि हमस उनके संस्कृत ज्ञान को बड़ा लगाता था। किन्तु मुत्तजीजी दोनों धारणाएँ ठीक नहीं निकली। य दोबारा प्रमाण विषय के पास सीधा लगे था कि 'स्मिर' के समान ही 'स्मिरता' भी हिन्दी का शब्द है अन' हिन्दी व्याकरण के अनुसार स्मिरता के आगे अन लगाकर अनस्मिरता शब्द बन सकता है। उपर डिबेरीजी ने भी फरवरी १९०९ की सरस्वती में संस्कृत से भी अनस्मिरता शब्द को लच्छ मिळ हो सकता है यह कह कर भी वर्तमान विचार के लिए अपने वाचकों से यही प्रार्थना की "कि संस्कृत के बलके में न पढ़ कर 'अनस्मिरता' को के अनमित' 'अनहित' 'अनरीति' 'अनमोम' 'अनहोनी' 'अनसुनी' और 'अनमुनी' की तरह का हिन्दी शब्द समझें।" मुत्तजी की 'ता' सम्बन्धी आपत्ति की जवाब करते हुए डिबेरीजी ने लिखा "इच्छा तो हमारी यह थी कि जिस 'ता' से आदमी इतनी नकरता है उसे हम अनहित' 'अनमित' 'अनरस' आदि शब्दों में भी लगाई पर 'ता' का बहुत अधिक खर्च हम नहीं करना चाहते। यदि ता का लज्जा यही गायी हो जायगा तो मुत्तविज्ञान अपने अल्पज्ञ मुक्त हिन्दी-नाम निरूपणता के लिए 'ता' बर्हा पावेंगे।"।

इसके अतिरिक्त डिबेरीजी ने अनस्मिरता और अनस्मिरता के अर्थ में भी

बुद्ध अन्तर किया था। उनका कहना था "अस्थिरता धर्म केवल स्थिरता के प्रति मूल धर्म का बोधक है, जो स्थिर नहीं है वह अस्थिर है। परन्तु जिसमें अविद्यमान अस्थिरता है जिसमें अस्थिरता का भाषा अत्यन्त अधिक है उनके लिये अनस्थिरता ही का प्रयोग हम अच्छा समझते हैं।" ३९क वस्तुतः इस सिद्धान्त को को मान लेने के बाद कि 'अस्थिर' हिन्दी व्याकरण से जुड़ा है 'अस्थिरता' के लिए विशेष आपत्ति का अभाव नहीं रह जाता। जैसे हिन्दी के 'निरपन्न' धर्म से 'निरपन्नता' सुबह हैं सुपरता धारि धर्म बन सकते हैं। जैसे ही हिन्दी के जिन धर्मों में 'ता' प्रत्यय धोआके साथ साथ लगता है उनमें क्यों न लाया जाय ? हमें 'अनरसता' 'अनपड़ता' जैसे तरह अर्थ छोड़ना और भुक्तिमायुर्ध्व दोनों दृष्टियों से अच्छे लगते हैं। फिर गुणकी निष्ठापूर्ण यह आपत्ति नहीं कर सकते। आपत्ति का आधार तो यही है कि एक भाषा के धर्म में दूसरी भाषा के उपसर्ग या प्रत्यय नहीं लगाने चाहिए किन्तु गुणकी स्वयं बढ़ाने के साथ व्याकरणवादी भाषाशानी कविनाम्हमी बेविधि जैसे धर्मों का प्रयोग करते हैं। यदि वे संस्कृत धर्मों के साथ आरसी प्रत्यय और उपसर्ग लगा सकते थे तो दूसरों की हिन्दी धर्मों में संस्कृत के या संस्कृत धर्मों में हिन्दी के उपसर्ग और प्रत्यय लगाने से कैसे रोक सकते थे ?

हिन्दी से अनस्थिरता को छिड़ करने पर गुणकी ने ध्यान दिया कि जैसे अंग्रेजी के 'अनरसकृत' 'अनपड़' अनतिविज्ञादरत जैसे धर्मों के अनुसृत अंग्रेजी व्याकरण से भी छिड़ दिया जा सकता है।" इसी सन्दर्भ में उन्होंने उसके संस्कृत-व्याकरण से भी छिड़ दिया जा करने की दिव्यी जी की उक्ति भी भुटकी भी ली थी। दिव्यीजी ने उस समय तो नहीं किन्तु 'वाचिनाम' के प्रकाशन के समय अनस्थिरता को हिन्दी के प्रतिरिक्त संस्कृत से छिड़ करने की धृति भी थी। उनका उर्क था 'यदि अनस्थिरता संस्कृत भाषा का धर्म माना जाय, तो संस्कृतव्याकरण के अनुसार भी वह जुड़ा ही है। यथा—न विद्यते अस्थिरं यस्मान् सन् अस्थिरं, तत्प्रमाणं अनस्थिरता अर्थात् जिसने बहिर अस्थिर वस्तु और कोई है ही नहीं उसे अस्थिर कहना चाहिए। उसमें अत्यन्त अस्थिर का भाव भूषित होता है। ऐसे कई प्रयोग संस्कृत भाषा में पाये जाते हैं। वेगिए—बनातीरधनुमन

हि सवसं तत्रापि वास्तुतया' यह एक प्रसिद्ध श्लोक का पहला खण्ड है। इसमें 'अनुत्तम गण्ड का अर्थ प्राप्त उत्तम है। विचारियों ने अपनी अज्ञान के कारण इस अर्थ को अशुद्ध बता कर अपने अपना धीर दूसरों का सम समष्ट किया था। म० प्र० डिसेंबरी २१ १० १९२७ ' '।

जो हो उस समय हिन्दी व्याकरण से भी 'अनस्थिरता को सिद्ध कर डिसेंबरी पत्र को लगा कि उसकी निजम ही पड़ी है, मुत्तबी को भी स्वीकार करना पड़ा कि परीव आत्माराम मठों के हल में फिर गया।

विष्णु क्या यह विषय वास्तविक भी ? 'अनस्थिरता' को अर्थ सम के सहारे हिन्दी या संस्कृतव्याकरण से सिद्ध कर क्या डिसेंबरीजी अपने सम्मान की रक्षा के लिए अपने विद्वान्तों की बलि नहीं चढ़ा रहे थे ? डिसेंबरीजी ने अपना केस आगिर इसीलिए तो मिला था कि सीधे भाषा के व्याकरण विरुद्ध या कम युक्तियुक्त प्रयोगों को छोड़कर व्याकरण शुद्ध सर्वमान्य प्रयोग किया करें। अपने निबन्धमें रचान-रचान पर उन्होंने यह मत प्रकट किया था धीर निरपेक्ष के रूप में मिला था हिन्दी को कानसह पचाई कुछ बात के लिए समझी करने के लिए यह बहुत जरूरी बात है कि उसकी रचना व्याकरण विरुद्ध न है। उसमें भिन्न-भिन्न ऐं-ऐंसे ध्वनियों का प्रयोग हो जो बिनाव व्यापक है। अर्थात् जिन्हें अग्रिम शान्तों के धारणी समझ सकें ' प्रत्यक्ष है क्या हम विद्वान्त के अनुसार भी 'अनस्थिरता का परिमाण नहीं कर सकते थे। अनस्थिरता को यदि निदान्त व्याकरण विरुद्ध न भी माना जाय तो भी वह कम युक्तियुक्त है इसमें कोई शंका नहीं कर सकता। हिन्दी के लेखकों ने जब देखा होगा कि भाषा और व्याकरण के लेखक आचार्य डिसेंबरी यह कहते हुए भी कि 'हम व्याकरण नहीं, और न किसी पंडित या अग्रिम मयात्र में व्याकरण कहावते जाने की हमें आत्मारामों की है। संभव है हम इसी मोट में फितने ही गए और वास्तव व्याकरण विरुद्ध मिला गये हों।" ' करने एक ऐसे पक्ष को छोड़ने के लिए तैयार नहीं है जो विद्वान्तों द्वारा आभासपूर्ण अशुद्ध माना जाना है तब उन्हें फिर बात की प्रेरणा मिली होगी व्याकरण विरुद्ध और हम

सुविष्ट-सुवृत्त प्रयोगों के परिष्कार की जगहा अपने मनमाने प्रयोगों को किसी न किसी प्रकार व्याकरण सुख सिद्ध करने की ! क्या निर्भय है आज का विवेक उस आलोचना समर पर जिसके दोनों प्रतिपक्षियों ने दुवरे पर हाथी होने के लिए अपने अपने सिद्धांत स्थापित किये हों ?

२१ १० १९२० को भी एक पाठ टिप्पणी लिखकर डिबेदीजी ने 'अनस्मिता' को व्याकरण सुख सिद्ध करना चाहा था किन्तु पं० किशोरीदास बाजपेयीका कहना है कि १९११ या १२ में जब उन्होंने आ० डिबेदीजीसे 'अनस्मिता' संबंधी विवाद की चर्चा छोड़ी थी तब उन्होंने जो कुछ कहा उसका सार यह है, "मेरा मतही से वह 'अनस्मिता' एक निरुक्त शब्द था मैं उस समय भी उसे मूल समझता था और आज भी मूल समझ रहा हूँ"। मूल न सही प्रवाह प्राप्त तो वह है ही नहीं। प्रवाह ही वाचा में बड़ी चीज है। मैं मूल स्वीकार कर लेता यदि उस तरह कोई पुष्ट्या—बहुता। बात कुछ दूसरे ढंग से कही गयी। यह भी नहीं कहा गया कि 'अनस्मिता' सही है या मूल बलिष्ठ कहा यह गया कि डिबेदीजी अनस्मिता को व्याकरण से निरुक्त कर दिया आजपेयी जी के अनुसार डिबेदीजी ने यह भी कहा था कि हिन्दी का नाम करने के लिए प्रभाव की जरूरत थी उस समय सब जाने से छिद्र मैं हिन्दी का नाम उस रूप में न कर सकता था नहीं बका। वह मानना मुश्किल है कि अपनी बात को बहुत मानते हुए भी उसे ठीक निरुक्त करने का प्रयास करने के कारण विचारकों की दृष्टि में डिबेदीजी का प्रभाव बना रहा जब कि अपनी मलती मान लेने पर उनका प्रभाव नष्ट हो जाया और वे हिन्दी का कुछ काम न कर पाये। हाँ यह ठीक है कि मुत्तजी की आलोचना पढ़ाति ऐसी थी कि डिबेदी जी जैसे स्वाभिमानी व्यक्ति अपनी मलती को भी सही साबित करने के लिए उत्तमिग हो उठें।

किन्तु अनस्मिता को ही उत्तम विचार की बुरी मान लेना उचित नहीं है। ऐसा मानने के कारण ही यह विवाद अत्यन्त मूल विषय भाषा परिवार के सिद्धांतों के विवेक से बरे हट गया था। अनस्मिता के घटाटोप में संपिशांग लोगों ने मुत्तजी के अन्य महत्वपूर्ण विचारों पर ध्यान ही नहीं दिया और जिन्होंने दिया है भी मुत्तजी द्वारा बनायी गयी डिबेदीजी

के शब्दों भावों और मुहावरों की भुटियों की व्याख्या करते रहे त्रिन सिद्धान्तों के चलते गुप्तजी ने इन तथ्याकल्पित भुटियों को भुटिमाँ माना था उसकी विवेचना से पराङ्मुख ही रहे ।

उपर दिखेयी पद के विचारकों ने गुप्तजी के लेखों में भी बहुत से ऐसे प्रयोग ईइ निवासे से जो उनकी दृष्टि से संशोधन लायेक्य थे । इन समस्त चिन्त्य प्रयोगों पर इस लेख में विचार करना संभव नहीं है अतः हम ऐसे प्रयोगों की अलग-अलग वर्णन कर दिखेयीजी और गुप्तजी के लेखों के मुख्य-मुख्य सिद्धान्तों की विवेचना ही करेंगे ।

हमारी समझ से गुप्तजी और दिखेयी जी के भाषा सम्बन्धी विचार में अन्त निहित मुख्य विचारणीय प्रश्न ये थे —

- (१) व्याकरण और लिख्य भाषा-प्रवाह में कौन अधिक महत्व-पूर्ण है ?
- (२) संस्कृत हिन्दी और प्यारसी उर्दू की परम्पराओं का समन्वय कैसे दिया जाये ?
- (३) अच्छी भाषा का आदर्श क्या हो ?
- (४) पुछने और बड़े लेखकों की भूलों निरासना कहीं तक उचित है ?
- (५) पुछने शब्दों का नये शब्दों में प्रयोग समीचीन है या नहीं ?

इन प्रश्नों का विचार करना आज भी ज़रूरी है किन्तु हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि इनमें से कुछ प्रश्नों के उत्तर ही ठीक नहीं दिये जा सकते न किसी एक विचारक के उत्तर अन्तिम माने जा सकते हैं । अतः विचार के साथ-साथ यह भी ध्यान होगा कि हिन्दी के लेखकों ने लिखे बातों में व्यवहार के द्वारा इनकी सीखना किम प्रकार की है ।

पहले प्रश्न के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि दिखेयीजी ने व्याकरण को और गुप्तजी ने लिख्य भाषा-प्रवाह को (या उनके शब्दों में बामुहावरा भाषा को) अधिक महत्वपूर्ण माना था । इसका यह अर्थ नहीं है कि दिखेयी जी लिख्य भाषा प्रवाह की या गुप्तजी व्याकरण की उपासना करने थे । दोनों ने अनेक स्थान पर इन दोनों मन्त्रों की उपासना स्वीकार की थी । दिखेयी जी

की धारणा थी कि बहुत से लेखक अपनी पुष्टियों को भाषा प्रवाह का मुहाबरे की शीट में लिपाकर हिन्दी में ध्वनि प्रयोग सेद बढ़ा रहे हैं अतः भाषा की स्थिरता की रक्षा के लिए व्याकरण को उनका नियमन करना चाहिए। हिन्दी की के लक्ष्यों में "इस तरह की सारी पुष्टियों को हम मुहाबिरा नहीं समझते। यदि वे सब मुहाबिरा समझती जायेंगी तो मुहाबिरा की परिभाषा के बाहर घास एक भी पुष्टि न रहे जाय। सभी लक्ष्यों का धार्यनी। हम मुहाबिरा के सिवाफ नहीं। मुहाबिरा ही भाषा का जीव है। पर उसकी सीमा का होना आवश्यक है। " तथा "यह बात बहुत जरूरी है कि निमित्त भाषा कबित भाषा की अनेका अधिक समय तक स्थायी रहे। बिरकास तक उसे स्थायी करने का एक मात्र साधन व्याकरण है। " कुछेक तरह पुष्टनी का मत का "लिखने की भाषा भी बड़ी अच्छी समझी जाती है जो बोमबाम की भाषा हो मनपहुँच न हो। उसकी बामुहाबिरा भाषा कहते हैं। मुहाबरे का अर्थ बोमबाम है। बहुतेनुबात और पुमानबात लोगों की बोमबाम बामुहाबिरा बोली की विनती में है। उन बामुहाबिरा भाषा ही बहुत बाल पीछे तक समझ में आती है। जो लेखक रोमबरे की भाषा नहीं लिख सकते वह किटनी ही व्याकरणरानी से काम में उनकी भाषा उन्हीं तक रहे जाती है। " क्योंकि "व्याकरण में शक्ति नहीं है जो भाषा के जोड़-तोड़ को इस प्रकार की भूलों की बगल सेके। " "व्याकरण यह बता सकता है कि यह चीजों बोले जाते हैं इनकी मिठा तो नहीं सकता।" "

इन उद्धरणों से स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी की और पुष्टनी की पुष्टियों में मौलिक अन्तर कहाँ या एक निमित्त भाषा को बिरस्थापी करने का एकमात्र साधन व्याकरण है यह मान कर मुहाबरे की सीमा देगता का दूसरा बामुहाबिरा भाषा की ही बहुत बाल पीछे तक समझ में जाने योग्य मानकर व्याकरण की परिशिष्टीगता की ओर संकेत करता था। इसारा बिरकास है कि इसी मुख्य दृष्टि से के कारण दोनों की एक ही भाषा के दृश्य विभिन्न-विभिन्न दिग्गने

४४ का सि. पृ. १४

४६ एही पृ. ८८

४७ गु. सि. पृ. ४४२-४४

४८ एही पृ. ४३३

४९ गु. सि. पृ. ४३४

वे। एक को राजा विजयसारा की भाषा में कतु पर्वों का समूह संहार और व्याकरण का उत्कर्षण दिसता था तो दूसरे को राजसाधन और पुस्त भाषा प्रवाह एक गो० राधाचरण काशीदास लखी की बहुत-सी अगुइयाँ दिवाकर उनका कारण व्याकरण के प्रति ध्यान न होना बताता था तो दूसरा उनमें से कुछ को बामुहावर मानता था और कुछ के सम्बन्ध में कहता था कि पुराने मुहावरों के अनुसार वे ठीक हैं, जब मुहावरों बरस गया है। एक कवि भाषा और विविध भाषा में अधिक अन्तर मानता था और कवि भाषा को स्वतंत्रता देकर भी लिखित भाषा में व्याकरण की सहायता से एककृता माना चाहता था दूसरा सिद्धान्तों की बोलचाल की और लिखने की भाषा में कोई अन्तर नहीं मानता चाहता और प्रयोग भेद की छूट देना चाहता था। एक की दृष्टि में स्थिरता और व्यापकता लिखित भाषा के बड़े गुण हैं तो दूसरे की दृष्टि में जीवन्तता और स्वाभाविकता।

सत्य दोनों की बातों में हैं और व्यावहारिक दृष्टि से मध्यम मार्ग अपनाना ही उचित है। फिर भी हमें समझता है कि व्याकरण का अनुसंधानीय साधन उन्हीं भाषाओं पर कम सकता है जो जब जनसाधारण द्वारा प्रयुक्त नहीं होती जैसे संस्कृत प्राकृत वीर्य लिंग आदि। लोक व्याकरण के सहारे ही जन-साधारण द्वारा अग्रयुक्त भाषा को सीमने हैं और उसीके अनुसार उनका प्रयोग करते हैं। जीवन भाषाओं में ऐसा नहीं हो सकता। व्याकरण भी सिद्धान्तों के प्रयोगों को ही दृष्टि में रग कर बनाया जाता है उनके प्रयोगों की निष्पत्ति और विविधता के कारण ही उनके नियमों में अन्तर रहते हैं। केवल व्याकरण के सहारे सीमा कर निम्नी जानेवासी भाषा अर्थबोध करने में अपने समर्थ हो जाने प्रयोगजन्य भाषा में कभी दूर रहती है। इसीलिए व्याकरण की तुलना में कवि की भाषा को घेरा जाना जाना है। यह भी समझना ठीक नहीं है कि व्याकरण और सिद्धान्त भाषा-प्रवाहमें सदा विरोध होता है। व्याकरण के नियमों का स्थूल अनुसरण होने के स्थान पर सिद्धान्तों की भाषा में उनका सूक्ष्म अन्तर्भाव होता है जो साहित्यिक प्रयोगों की सीरोत्तरता और सुन्दरता का हेतु है। अब हम यह जानते हैं कि साहित्य-रचना के लिए सिद्धान्त भाषा प्रवाह का अनुशीलन अधिक महत्त्वपूर्ण है। यह अन्तर्भाव है कि प्रयोगजन्य भेदों में अन्तर्भाव लक्ष्यमाना जाने की चेष्टा होनी चाहिए। बरबर्ती लेखकों ने अन्तर्भाव इसी लक्ष्य का पथ पर चलने की चेष्टा की है।

दूसरे प्रश्न के सम्बन्ध में यह स्मरण रखना चाहिए कि लड़ी बोली साहित्य में पहले चर्च कविता के संबंध में होती है। उसे मानने और निखारने में सीधा और ओर आतिथ नासिक आत्म मानिक और बीच बीच में बड़े कवियों ने पर्वान्त धर्म दिया। मूर और तुमसी बिहारी और देव बनजायस और पचाकर ने भाषा परिवर्तन के सम्बन्ध में जो कार्य किया था उसका पूरा लाभ लड़ी बोली के हिन्दी लेखकों की नहीं मिला। आधुनिक युग में जनभाषा के स्थान पर लड़ी बोली को हिन्दी साहित्य का बाहुन चुनने के बाद हिन्दी लेखकों के समस्त जो समस्या आयी वह यह थी कि संस्कृत-हिन्दी और पारसी-उर्दू की परम्पराओं का समन्वय कैसे किया जाये। संस्कृत-हिन्दी की परम्परा तो जीवनभर ही थी। उधर पारसी-उर्दू परम्परा में मंजूर लड़ीबोली का जो परिष्कार हुआ था, उसका उपयोग करना और उनके सहारे अपने प्रयोगों को प्रसस्त करना नितास्त समीचीन था। लड़ी बोली हिन्दी के बहुत से आरम्भिक लेखक चर्च से प्रभावित और उपलब्ध थे। किन्तु इन दोनों परम्पराओं के अतिरिक्त एक दूसरे से टकराते भी थे। त्रिवेदी-मुन्शी विवाद में इन दोनों परम्पराओं की टकराहट स्पष्ट होन लगी है। इस मूल विद्या पर दोनों एक मत थे कि हिन्दी के लड़ी बोली रूप का विकास मुख्यतः संस्कृत के उत्साहमान में उसकी अपनी प्रकृति के अनुसार होना चाहिए। त्रिवेदीजीके शब्दों में, "हिन्दीकी उत्पत्ति संस्कृत से है। इसलिए हमको पचासवस संस्कृत व्याकरण की सहायता से उसे निर्मित करना चाहिए। हाँ यदि पूर्णतः प्रकार के मुहावरों से लेखकों को बहुत ही प्रेम हो गया हो अथवा यदि उसने भाषा में विशेष हीन्ये आने की जगह आया हो तो उन्हें वे रचने दें।" मुन्शी का मत था "हिन्दी में संस्कृत के सरल सरल शब्द अथवा अधिक होने चाहिये इससे हमारी मूल भाषा संस्कृत का उपकार होता और गुजराती बंगाली, मराठे आदि भी हमारी भाषा को समझने के योग्य होयें। किसी देश की भाषा जब समय तक काम का नहीं होती, जब तक उस जगह देश की मूल भाषा के शब्द बहुतायत के साथ प्राप्ति नहीं होते।" हम पर भी दोनों एक मतपेकि चर्च कवियों और लेखकों के उद्योग से लड़ी बोली का जो परिवर्तन हुआ है। अपना पचासवस उपयोग करना चाहिए। मुन्शी तो चर्च से हिन्दी में जाये वे जगह उनकी भाषा और लड़ी पर चर्च का अवसर प्रभाव था ही त्रिवेदीजी ने भी सरस्वती के निचे अन्य लेखकों की रचनाओं का

संघर्ष करने समय तथा अपने लेखों में भी घरनी पारसी सखी और उर्दू शैली का इतना प्रयोग किया था कि उसने अनेक लेखक और पाठक असन्तुष्ट हो गये थे भी कामता प्रसार नुब ने उर्दू पत्र सितंबर अपना असन्तोष व्यक्त किया था । ' इस पर भी दोनों सहमत थे कि 'उर्दू' के होय नकल करना मुनासिब नहीं मुत्तजी ने एक छेद में तो डिबेरी जी के भी भागे आकर उर्दू से एक भयंकर दोष को हिन्दी में बढाने का विधान करने के लिए काशी की गायरी प्रचारणी तथा का बनबोर विरोध किया था । जब समा ने निश्चय किया था कि उर्दू सखी के कुछ उल्हा राज के लिए नागरी लिपि में भी यथाम्मान मुक्ता ख्याता चाहिये तब मुत्तजी ने हिन्दी में हिन्दी लेख सितंबर उनका प्रभावशाली विरोध किया था । उर्दू के मर्मज्ञ होने के बावजूद मुत्तजी अपने लेखों में जानेबाले घरनी पारसी के शब्दों में मुक्ता नहीं लगाया करते थे । जब कि डिबेरीजी अपने लेखों में समा के इस अनुचित निर्णय के पालन की चेष्टा करते थे । फिर भी दोनों के भाषा सम्बन्धी संस्कारों में जो अन्तर था वह इन दोनों परम्पराओं के जन्म से प्रभावित था और इस विचार में वह स्पष्टतः उभर आया । पहली हलकी टक्कर हुई जब तब और जो जो के प्रयोग को लेकर । डिबेरीजी का आरोह था कि समय मूक जब के साथ तब का और धर्म बढाने वाले यदि के साथ तो का प्रयोग करना चाहिए । जहाँ जब का प्रयोग धर्म के लिए करना हो वहाँ जो का प्रयोग करने का सुझाव भी उन्होंने दिया था जब के साथ तो और जो के साथ तब माने का उन्होंने विरोध किया था भार इन मर्मज्ञ में मानिक का एक छेद पद्य का में उप स्थित कर जब के साथ तो माने को अनुचित कहा था । मुत्तजी का कहना था कि उर्दू वाले पहले जब तब और जो तो चारों को धर्म में लाते हैं, जो को पहले उर्दू वाले समय और धर्म दोनों में लाते थे अब कम लाते हैं जब के मुकाबिल में 'तो भी नहीं लाते उसे गायब ही कर देते हैं । जानी वगैरह उन्होंने तब और तो जो गायब करने की ही बगानी ।

दुसरी टक्कर हुई लेगनी उल्हा चाहिये ' 'मिता मेता होयी' और 'जड़ी मुरियां इकट्ठी करने से जैसे प्रयोग वैपश्य को लेकर । एक ही वाक्य में वही किया वर्गी के अनुकूल हो वही कर्म से वही किया था पहला टक्कर

स्वीमित हो कहीं दूसरा यह मन्त्रबन्धा द्वितीय की को मसरी की पीर अपनी तरफ से कोई सुझाव न देते हुए इस पर विचार कर एकसत्ता माने की सिफारिश उन्होंने की थी। इस पर गुप्तजी ने विस्तार पूर्वक हिन्दी और मलमल की बीलबाक के धन्तर के कारण उत्पन्न उर्ई के दो सम्प्रदायों की चर्चा की और कहा हिन्दी वाले मिलते हैं (१) मेखनी उठानी चाहिये। (२) सिमा लेनी चाहिये (३) जड़ी बुटियाँ इकट्ठी करते थे। जब कि मलमल वाले सिमा करते हैं (१) मेखनी उठाना चाहिये। (२) सिमा लेना होनी। (३) जड़ी बुटियाँ इकट्ठा करते थे। हिन्दी में भी इन दोनों प्रकार के प्रयोगों की सुझ मानने का धारण गुप्तजी ने किया क्योंकि वे दोनों मगर भाषा के मन्त्रजन हैं और वहाँ के लोग ऐसा ही सोचते हैं। इसके लिए व्याकरण की किसी वनीत की जरूरत उन्होंने नहीं समझी। इस पर द्वितीयजी ने ध्यान कहा, “हिन्दी में बहुवचनमान पैदा करने के लिए देहनी और मलमल के जुबादाओं की बीली की मन्त्र प्रबुद्ध अपना काम करेगी और बोहे ही समय में मिलने भूह खवनी ही बीलिया हो जावेगी। ~ हिन्दी में जो सवीयता है वह उसे संस्कृत और प्राकृत से मिली है जरूरी जरूरी से नहीं। पर जिस हिन्दी के दुकई लाकर उर्ई जिन्य है उसी हिन्दी को अब उर्ई के द्वार पर जीत मानने—उसके सबकों को बील की मन्त्र करने देहनी-आपरे जाना होना। ११

सीधे टकराहट हुई वह, यह के एकवचन और बहुवचन दोनों में प्रयुक्त बिन्ने जाने की तैयार। द्वितीय की का मत था वह यह का प्रयोग एकवचन में और के के का प्रयोग बहुवचन में होना चाहिए गुप्तजी ने कई आवेस के साथ के को बंबारी बताया और कहा कि बी और ये बहुवचन में बने नहीं। उनके अनुसार “व्याकरणोंमें साफ लिखा है कि ‘वह’ एकवचन और बहुवचन दोनों है और वे परछाही हैं।” उन व्याकरणों के नाम उन्होंने नहीं बताये किन्तु निरवय ही वे उर्ई व्याकरण ही होने।

हमारी समझ में इन तीनों प्रयोगों में गुप्तजी उर्ई का जो परम्परागत हिन्दी में प्रचलित करना चाहते थे वे हिन्दी की परम्पराओं के विरुद्ध थीं। चरने प्रसंग

में यदि जब और जो के बाद उचित रूप से तब और तो का प्रयोग न किया जाये तो कोई हानि नहीं होगी जब के साथ तब का और जो के साथ तो का प्रयोग **ही** प्रयुक्त है ।

उर्दू में हिन्दी और संस्कृत के प्रयोगों को प्रायोगिक माना जाता है, अच्छी बात माना जाये किन्तु यही परम्परा हिन्दी में क्यों चले ? हिन्दी में कसकटा पटना काशी और इलाहाबाद साहित्य के बड़े रहे हैं तो क्या उनके प्रान्तीय प्रयोगों को भी धमधम-धमधम प्रायोगिक माना जाये फिर जबसपुर, जयपुर, आदि नगरों के साहित्यकार अपनी परम्परा का आग्रह क्यों न करें ? हिन्दी के व्याकरण के सर्वमान्य नियम हैं कि कतू वाच्य में कर्ता के लिये और वचन के अनुसार क्रिया के लिये वचन होते हैं और कर्मवाच्य में कर्म के लिये वचन के अनुसार । इन्हीं के अनुसार (१) सेवनी उठानी चाहिये । (२) गिरा सेनी चाहिये (३) जड़ी बूटियाँ इकट्ठी करौं ये । जैसे प्रयोग उचित माने जायेंगे केवल हिन्दी की ओलखान की छन्द के कारण नहीं । अन्यथा कसकटा, काशी इलाहाबाद कसकटा पटना आदि नगरों के प्रान्तीय शैलियों को भी प्रायोगिक मानना पड़ेगा और इनसे भाषा में सचमुच बहुकरियाण आ जावेगा । मुहावरों या भाषा प्रवाह की ओट सेकर इन बिबेशों को बढ़ाना उचित नहीं माना जा सकता, विशेष कर जब हिन्दी राष्ट्र भाषा हो गयी हो ।

उर्दू में भले ही बहु यह का एकवचन और बहुवचन दोनों में प्रयोग होता हो किन्तु हिन्दी में आरम्भ में ही बहु और यह एकवचन में तथा ये और ये बहु वचन में प्रयुक्त होने लगे हैं । पं० गोविन्दनारायण मिश्र ने हिन्दी के पुराने कवियों के अनेक उद्धरण देकर इस बात को सिद्ध कर दिया है ।^{११} हिन्दी में एकवचन में यह बहु का और बहुवचन में ये के का प्रयोग ही ग़ुड़ माना जाना चाहिए ।

हिन्दी के लेखकों ने पिछले साठ वर्षों में मुख्यतः हिन्दी परम्परान्तों को ही ध्यान बढ़ाया है । अनुरीभर उर्दू की ओर देखने की प्रवृत्ति कम हुई है । उर्दू के कवियों को हिन्दी में जगजन का प्रयाण करने वाले लेखकों की संख्या गण्य है । बहु हिन्दी की शक्ति और स्वतंत्र साहित्यिक चेतना का प्रमाण माना जाना चाहिए ।

हिन्दी में प्रचलित दूसरी भाषा के शब्दों में भी संस्कृत व्याकरण के अनुसार वर-सम्बन्ध पद और जल का विधान करना अनुचित है। इस बारे में डिबेदीजी और मुण्डीजी दोनों सहमत हैं।^{१५} दोनों का मत है कि पीस्टमास्टर की जबहु पोष्टमास्टर और यर्नमेष्ठ की जबहु यर्नमेष्ठ मिलना ठीक नहीं है। डिबेदीजी और मुण्डीजी के मतमें दोनों को इसका उल्लेख नहीं है कि दोनों का बहुत से नियमों पर सर्वेक्ष का यह तथ्य सब गवा है। हमारी धारणा है कि दोनों विद्वानों के मतों में भिन्नता से समानता कहीं अधिक की वस्तुमत्त दृष्टि के विचारने पर सहजता से यह तथ्य प्रमाणित किया जा सकता है।

तीसरा प्रश्न मुण्डीजी द्वारा डिबेदीजी की भाषा पर सवाये सब धारों से उभरा। मुण्डीजी का मत था 'डिबेदीजी सरनमे से भाषा तैयार करते हैं' इसमें चतुर्विध कहां? आपात्त कहां? ' क्योंकि 'विद्यने की भाषा भी वही अच्छी समझी जाती है जो बोलचाल की भाषा हो अनविकल्प न हो।' विहित लोगों की बोलचाल मिली जाने पर बहुत काम तक छाती है और समझ में आती है। वह शुभ यक्षीनी और पुस्त होती है, बहुत और बीज्य नहीं होती।^{१६} डिबेदीजी की भाषा में वहां संस्कृत के कुछ कठिन शब्द आते हैं वही मुण्डीजी को अविज्ञता की निशाना हुई है।^{१७} ऊपर लिखा जा चुका है कि ११९ १८६६ के अपने पत्र में मुण्डीजी ने डिबेदीजी से सरन भाषा मिलने का अनुरोध किया था। किन्तु कठिन संस्कृत शब्दों के साथ ही वही डिबेदीजी की चीनी भी बंजीर हो जाती थी वही मुण्डीजी को विफास्य और बढ़ जाती थी। उदाहरण के लिए डिबेदीजी के एक वाक्य पर मुण्डीजी की प्रतिप्रिया है। 'आप व्याकरण धारण का क्या बताते हैं—'व्याकरण वह धारण है जिसमें धारों और वाक्यों के परस्पर सम्बन्ध के अनुसार अर्थोपपन्न धारों के जानने के नियम होने हैं। वही मुण्डीजी द्वारा है। प्रमाण है कोई जरा धारें समझ जाय।'^{१८} एक बात को कई बार दोहराने और संक्षेप में कही जा सकने वाली बात को बहुत विस्तार से कहने का आरोप भी उन्होंने डिबेदी

१६ पृ० ५० पृ० १०० गु० नि० पृ० ४५३

१७ गु० नि० पृ० ४३६

१८ पृ० ५ ४४२-४४३

१९ पृ० ४५४

२० पृ० ४३७-३८

भी पर कई बार लगाया था। इन आरोपों में यह बात अपने आप झूठमती है कि गुप्तजी सरल स्वामाबिक स्वभाव, बुद्धि बूटीसी गठीसी भाषा को पछड़ी भाषा समझने थे। निश्चय ही ऐसी भाषा अच्छी कही जायेगी किन्तु यभीर, उदात्त अलंकृत भाषा भी अच्छी हो सकती है।

इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि गुप्तजी के आरोपों में सत्यांश है। यह सच है कि डिबेरीजी की भाषा में प्रवाह कम है। संदेशी संस्कृत मराठी बंगला उर्दू आदि भाषाओं से अनुवाद उन्होंने बहुत अधिक किया था और स्वभावतः उनकी भाषा स्वच्छन्द न होकर बंधी-बंधी सी लगती है। उसमें कई स्थानों पर त्रुटिगतता भी दृष्टिगोचर होती है। किन्तु वह कठिन या जटिल कहीं-नहीं ही हुई थी साधारणतः उन्होंने प्रसाद वृत्त का ध्यान अकल से ब्यादा रखा था। उनकी अनपेक्षित विस्तारयुक्त व्यास सेमी इसी दृष्टि का परिणाम है कि लोग उनकी बात को ठीक-ठीक समझ जायें। आचार्य गुप्त ने भी उनकी व्यास सेमी पर बूटकी सेठे हुए कहा था डिबेरी जी के सेवों से ऐसा जान पड़ता है कि लेखक बहुत योगी अक्ष के पाठकों के लिए लिख रहा है। एक-एक सीसी बात कुछ हैरफेर—कहीकही केवल घरों के ही—के साथ बीच छः तरह से पाँच छः वाक्यों में कही हुई मिलती है।^{११} किन्तु फिर भी यह सच है कि डिबेरीजी की व्याकरण बुद्ध भाषा को बेलकर उस समयके बहुत से लोगों ने कुछ हिन्दी लिगनी सीगी। सरस्वती के सम्पादन काल में डिबेरी जीने अनेकों लेखकों की व्याकरण विरुद्ध भाषा का संशोधन कर ऐतिहासिक महत्त्व का कार्य किया है। वस्तुतः डिबेरीजी हिन्दी भाषा के समर्थ सास्ता थे और गुप्तजी वृत्त प्रचोत्ता।

चौथे प्रश्न के सम्बन्ध में गुप्तजी का मत था “पुराने लेखक इस समय के लोगों के पय प्रदर्शक और वायोनिपर थे। उनकी यहनत की तरह ध्यान करना चाहिये। वह कवपरिष्कार न करते तो इस समय के लोग चलते छिपर में।^{१२} मत उनकी भूँ में निजालना निजान्त अनुचित है। विरोध कर बाहू हरिचन्द्र का भूल निजालने के कारण डिबेरीजी पर के बहुत गुप्प हुए थे। डिबेरीजी का निदान यह था कि पुराने लेखकों के अनिपूर्ण पदा रचन हुए भी भाषा के विभाग के लिए उनकी बूटियों की बरीता

करना न अग्याय है न अपराध हुयेया से ऐसा होता आया है और आगे भी ऐसा होगा सभी भाषा और साहित्य का समुचित ब्य्याख हो सकेगा । ११

मुल्तजी की यज्ञ भावना का समाहर करते हुए भी हम समझते हैं कि द्वितीयजी का मत ही अनुकरणीय है । प्राचीनों के प्रति सम्मान भाव रखकर उनकी पुष्टियों से बचने के लिए उन पर विचार करने में कोई दोष नहीं है । हमारे पूर्वज भी इसी मत के थे । सर्वत्र जयमन्त्रिधेन् पुत्रात् पिप्यात् पराजयम्' दोषावाप्या पुरोरवि' जैसे वाक्य जगही की विरासत हैं । सर्वत्र जय की इच्छा रखते हुए भी पुत्र और पिप्य से पराजय की कामना करना बुद्धों के दोष भी विचारणीय है बहना न केवल उनकी विद्याम हृदयता का परिचायक है बल्कि इस खरयका भी कि वे जानते थे कि इसी प्रकार संस्कृति का रस भाव बड़ मरुता है । हाँ पिप्या अमिमान और बुरजनों के अपमान की भावना से किये गये एष प्रयास निन्द्य है । किन्तु द्वितीयजी पर ऐसा आरोप लगाना सत्य का अपसाप करना होगा । यही यह भी उल्लेखनीय है कि सबाहपनों का इतिहास' लिखते समय स्वयं

मुल्तजी न भारतविज में प्रकाशित भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र के एत विज्ञापन की इस प्रकार की धामोचना की थी "हम विज्ञापन के आरंभ की भाषा बहुत हीमी है इनमें कई पाठ्य नहीं के हैं और उनके अन्तिम वाक्य से यह धय नहीं निजलना जो निजलना चाहिये । १ इसी के धामे भारत निज में प्रकाशित बाबू हरिश्चन्द्र की लड़ी बोली की एक बकिता की भी आलोचना करते हुए उन्होंने लिखा था 'लिगने की चट्टा की है पर टीरु हो गरी मरा । 'किरली है की बयह फिर लिगा है तथा अण्डा लिगा है । 'यक वा पस्के लिगना पड़ा है और भी भापी हो गई है । इस प्रकार की बहुत सी बट्टादयां वर्तमान हिन्दी में बकिता करने वालों को पढ़नी हैं और पढ़नी ११ बदा अब भी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की आलोचना करने के लिए द्वितीयजी दोषो ट्टरायेमा मरुते हैं ?

पाँचरें प्रान के सम्मग्य मे दोनों विज्ञानों के विचार लिगने जुमते होकर भी कही गरी एक दूसरे के बिगुड बले जाते थे । हिन्दी के पाठ्य मण्डार के सम्मग्य मे विज्ञान्मग्न दोनों का मग एक ही है । दोनों मायन हैं कि हिन्दी

६३ वा वि पृ १६५ ४६ १४८-४९

६४ गु-नि पृ ४८३

६५ गु-नि पृ ४०४

ई संस्कृत के सरस शब्द और ऐसे विवेची शब्द जिन्हें सब लोग समझने में प्रयुक्त होने चाहिये । विवेची भाषों और मुहावरों का अनुवाद हिन्दी की प्रकृति के अनुसार होना चाहिए यह भी लोगों को भाग्य है विवेची का प्रायः है कि ऐसे शब्द जिसका संस्कृत में कुछ अर्थ है पर हिन्दी में अब वे दूसरे अर्थ से प्रयुक्त होने लगे हैं त्याग्य होने चाहिए । उन्होंने बाबिन निर्मल आम्बोत्तल और बटिबद्ध आदि शब्दों को इसी कोटि में रखा था । गुप्तजी बाबिन के त्याग से सहमत होकर भी अन्य शब्दों को उचित मानन में और भिन्न भाषाओं में जाकर मूल भाषा के शब्दों के अर्थ परिवर्तन के अनेक उदाहरण देकर सिद्ध करना चाहते थे कि इसमें सिद्धान्त कोई दोष नहीं है ।

एक कुछ शब्द तो बंगला से आय हैं और कुछ अंग्रेजी शब्दों के लिये पड़े पड़े थे । निर्मल आम्बोत्तल और बटिबद्ध अपने नये शब्दों के लिए प्रयत्न करवाती मित्र हुए निम्नलिखित माठ वर्षों में उनका प्रयोग करना बड़ा है कि अब उनकी गटक निष्पन्न नहीं है । अब मानना पड़ेगा कि समय का निर्माण गुप्तजी के अनुकूल हुआ है । किन्तु यह कभी अस्मिताशील है कि विवेची पर चोट करने का अवसर पाने पर गुप्तजी अपना यह सिद्धान्त भूल जाते थे । विवेची का भाषांचय था उससे समझ की बड़ी हानि होती । इस पर गुप्तजी की छीटाशगी बेगिष "किस समाज की हानि होगी ? आर्य समाज की ? या उग्र समाज की ? यह समाज भी आपके धर्मोत्तरी तरजमे की शराबी है । इसका अर्थ इस समय तो समझ में नहीं आता ही वर्षवाद माने मने तो बुलरी बात है ।" ११ यह विमर्शुस धीमा बीती है । सोमाहरी के अर्थ में समाज का प्रयोग यहाँ विलक्षण समीचीन है और निर्मल या आम्बोत्तल की तुलना में आने मत अर्थ के बहुत निष्ठ है ।

बन्धु के दोनों विज्ञान एक ही उद्देश्य से आभिन्न होकर एक ही धेन में एक ही बन के बनी होकर जाये कर रहे थे । दोनों में धार्मिक लोहाय या यह बुझाव की बात है कि साधारण भी जान की देकर दोनों में मत ब्याप हो गया जिसके चलते एक नास्तिक विचार में आकर एक बन्धुता आ गयी किन्तु इनमें कोई सम्बन्ध नहीं कि इन विवाद के अन्तर्गत हिन्दी

जगत् में जो आसौड़न मार विचार-विमर्श हुआ उससे मापापरिष्कार का कार्य बहुत बाने बढ़ा। इसका ऐतिहासिक महत्त्व है और इसे विमर्श कहकर उड़ा देने की चेष्टा अनुचित है।

अपने लेख का उपसंहार करने के पक्ष हम यह आवश्यक समझते हैं कि इस विषय से सम्बन्ध हिन्दी के कुछ धार्मिक वर्गों में इस ऐतिहासिक विवाद का क्या मूल्यांकन किया गया है इसके कुछ नमूने देना करें। डॉ० भगवत्स्वरूप मिश्र के लौक प्रबंध "हिन्दी आलोचना उद्भव और विकास में" महावीर प्रसाद द्विवेदी के मापासम्बन्धी विवादों की चर्चा के अन्तर्गत कहा गया है, 'मापा और व्याकरण नामक निबन्ध ऐसे ही बाद विवाद के विषयों में आया गया है हमने बालमुकुन्द मुष्ट के प्रतिवादों का तर्क युक्त खण्डन है। 'अनस्मिता' छन्द पर भी पर्याप्त बाद-विवाद रहा। 'कुल जमा दो पंक्ति' और वे भी कितनी सारपूर्वक। स्पष्ट है कि इन पंक्तियों को लिखते समय तक विद्वान् धोबकर्ता ने मापा और व्याकरण तथा 'मापाकी अनस्मिता' दोनों में से एक भी निबन्ध नहीं पढ़ा था। पार्श्वार्थ बालमुकुन्दमुष्ट पर इस पुस्तक में इन दो पंक्तियों के अतिरिक्त और कुछ नहीं लिखा गया है। कैसा ठोस धारणा है डॉ० मिश्रका।

डॉ० उदयमानु मिह के धोब प्रबंध "महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग" के तीसरे अध्याय में 'अनस्मिता का विमर्शवाद उपरीपक होकर एक पुष्ट से भी कम में इनका इतिहासमय विवरण देने का प्रयास किया गया है। डॉ० मिह के वर्णन से ज्ञात होता है कि 'मापा और व्याकरण लेख में अपने प्रयोग को धनुष बनावे जाने से कुछ दूरतर बालमुकुन्द मुष्ट ने मापा की अनस्मिता लेख बाला प्रकाशिन की भी त्रिमका मुहूर्त उत्तर पोषित माध्यम मिश्र ने है दिया। हमपर बालमुकुन्दमुष्ट न 'हम पंचम के द्वाभामा' मत विगडर द्विवेदी की बोनी बैमभाषी का उदाहरण किया। त्रिमका उत्तर, मुख्य द्विवेदी की न मरनी मरक डिवागना मार्ति' धीरेक आम्हे न दिया त्रिमय कुण्डी निमिया गये। करवरी १९०६ ई० में द्विवेदी की मापा और व्याकरण' लेख विमर्श कर गुण्डी की उक्ति' का विमृताहन दिया। भारतविमर्श और मरवनी का यह धपड़ा बरनों बना। उन बाद विवाद में मार्ति के विमर्श विद्वानों ने धीमान दिगमाया। विवाद के

उपरान्त गुप्तजी ने द्विवेदीजी के चरणों पर सिर रख दिया और द्विवेदीजीने उन्हें हृदय से लगा लिया ।^{१०} इस संक्षिप्त और सरोय विवरण में सम्यक्ता है कि जैसे द्विवेदीजी ने अन्याय ही गुप्तजी को परास्त कर दिया हो जब कि वास्तविकता यह थी कि गुप्तजी के प्रहारों से द्विवेदीजी विचलित हो गये थे और तत्कालीन अधिकांश विद्वानों को उनका पद पूर्णतः प्रतीत हुआ था । अनन्तरता के प्रयोगपर भीचित्य अनौचित्य के बारे में विद्वान् लेखक ने न यहाँ कुछ कहा है न 'माया और माया सुधार' सम्बन्धी अध्याय में । द्विवेदी जी ने 'माया और व्याकरण' धीरे-धीरे मूल लेख में गुप्तजी का नाम लेकर कोई धोप नहीं रिलाना था । इस लेख में उन्होंने अवश्य कुछ ऐसी वस्तुओं लिखी थीं जिनसे साज होता है कि पहले लेख में बिना नाम दिये भारतमित्र से कुछ उद्धरण लेकर उनका बाप लिखा गया था किन्तु यह नहीं स्पष्ट होना कि वे उद्धरण गुप्तजी के ही थे । डॉ. सिंह ने जिन निबन्ध के साथ वासुदेवस्य के भी धोप लिखा है उनमें उनका साधारण जानने की इच्छा होती है । वहाँ एक हम आमतो हैं 'वासुदेवस्य गुप्त' ने 'हम पञ्चन के द्वाला भा' धीरे-धीरे कोई लेख नहीं लिखा था । हाँ 'माया की अनन्तरता' धीरे-धीरे लेख में ही एक बार में हमका प्रयोग अवश्य किया था "वही जिसकी रचनाया की पढ़ कर 'हम पञ्चन के द्वाला भा' धोपने वाले हिन्दी धोपने को चौक छोड़ने लगे हैं ।"^{११} यह कहना भी ठीक नहीं है कि गुप्तजी बम्बू अम्बुदत्त का नाम पढ़ कर लिखित गये थे वहकि उनको अपने लेख में गंभीरता से लिखा नहीं था किन्तु उन पर कबली बसी थी । उनके पत्राव में गुप्तजी ने भी ध्यान बरिष्ठार्थ लिखी थीं 'गुप्तजी का ज्ञान' और 'व्याकरणशास्त्र' । भारतमित्र और सरस्वती का यह भ्रमण हमों नहीं बना था गुप्तजी ने भाषा की अनन्तरता का पढ़ना लेख सम्बन्ध दिग्दर्शक १९०५ के प्रथम मसाले में और उग लेखमाया का अन्तिम लेख ३ दिसम्बर १९०६ को लिखा था । उनके बाद दो या तीन महीने और और बाद बनी थी । १९०९ के अक्टूबर में बड़े द्विवेदी-गुप्त मिलन हुआ था जिसकी बर्षा ३० मिनट न इन प्रकार की है जैसे गुप्तजी ने अपनी आजीव नामों के लिए शायनायना की थी । बम्बू गुप्तजी अपनी धार्मिक भावनाओं के कारण बाह्यता की गुप्त अनन्तरता और उनका जलन नहीं कर प्रणाम

करते थे। डिबेटीजी से विवाद के बाद भी वे इसी प्रकार मिले। व० बन्दीर
नाथ पाठक ने डिबेटी अभिनय-न घग्ग में इनको ऐसा रंग दे दिया है जिससे
कमता है कि गुप्तजीने अपनी आलोचनाओं के लिए क्षमायाचना की हो। १९९५
वस्तुन गुप्तजी ने अपनी आलोचना कभी बापत नहीं ली थी और न अन्त तक
अनस्यरता को डिबेटीजी को मुनि और हठधर्मी मानते रहे।

डा० सिंह ने माया और माया मुषार' में 'माया और व्याकरण' में गुप्तजी
बाद पर तीव्र आक्षेप करने वाला एक उद्धरण अवश्य दिया है किन्तु गुप्तजी
द्वारा संकेतित डिबेटीजी की माया-सम्बन्धी नुटियों की कर्त्ता तक नहीं की है
यह कि उचित तो यह था कि वे उनकी धीमाया करण।

उन्होंने अपने शोध प्रबन्ध के अन्तिम अध्याय 'युग और व्यक्तित्व' में 'पञ्च
परिचय उपदीर्घक के अन्तर्गत लिखा है "डिबेटी युग के पूर्व उन्नीसवीं
शती के उत्तरार्ध में केवल दो ही वैदिक पत्र निकल सकें थे 'मुषारपर्वण'
(१८५४ ई०) और भारतमित्र (१८५७ ई०) दोनों ही अकाल कामकबन्धित
हो गए। १९११ ई० में विस्मी घरदार के अवसर पर भारतमित्र वैदिक रूप
में पुनः प्रकाशित हुआ किन्तु जनवरी १९१२ ई० में बन्द हो गया। मार्च
१९१२ ई० से वैदिक रूप में वह फिर निकला और २२ वर्ष तक चलता
रहा। मुषारपर्वण के बारे में तो हम जानते नहीं किन्तु भारतमित्र का
प्रकाशन १७ मई सन् १८७८ ई० को हुआ था १८५७ ई० में नहीं। उस
समय न वह वैदिक पत्र था न ही अकाल कामकबन्धित हुआ था। अपने
प्रकाशन के समय वह पाणिनि या अपनी दसवीं सन्ध्या से वह मात्स्यहिक हो
गया और १८९७ ई० तक साप्ताहिक ही रहा। १८९७ में १८९९ तक
वह वैदिक भी हुआ पर इस बीच में उनका वैदिक संस्करण दो बार का-
हुआ साप्ताहिक संस्करण पूर्ववत् चलता रहा। गुप्तजी के जीवन काय तक
वह साप्ताहिक ही रहा। डिबेटी युग की कर्त्ता करते समय पत्रकार
नियन्त्रण के रूपमें बही-बही गुप्तजी का नाम कर दे दिया
गया है। उनकी देह का मुखांश नहीं दिया गया है। इन प्रायोगिक
उत्प्रेरकों और मद्दतपूर्व अनुत्प्रेरकों न लिए क्या कहा जाय।

डा० नरदन सिंह के शोधप्रबन्ध पत्रकार बाबू रामकृष्ण गुप्त जीवन और
१९५५ ई० में प्र० प्र० ५० ५३० ३२
७० म० प्र० ६० ७० ५० २०३

माहित्य में स्वभावतः इस प्रसंग पर बहुत विस्तार से विचार किया गया है। हम उनकी केवल दो-तीन बातों की बर्णना करेंगे। उन्होंने लिखा है "गुप्ताजी ने 'भाषा की अनस्थिरता' धीरे-धीरे इस लेख भारतीय (सन् १९०९ ई० में लिखे)। 'इससे लगता है जैसे ये उसी लेख १९०९ में ही लिखे गये थे। किन्तु यह सम्भावना संभवतः दिसम्बर १९०५ के पहले सप्ताह से निश्चय से लगी थी क्योंकि ३ फरवरी १९०६ को उसका दूसरी लेख निकला था यह १० गोविन्दरायच मिश्र के साक्ष्यानुसार है।

'अथ वाक्यानुशासनम्' के ऊपर गुप्ताजी की टीका उद्धृत करने के बाद डा० मिह ने टिप्पणी की है 'गुप्ताजी की टीका के आधार पर अनस्थिरता का प्रश्न किया जाय तो पीछे स्थिरता होती है। जो द्विवेदीजी द्वारा अभिप्रेत अर्थ में प्रयत्न नहीं होता। ' समझ में नहीं आता कि इस टिप्पणी पर रोना पाय कि ईसा पाय। एक तो हमसे यह स्पष्ट होता है कि डा० मिह गुप्ताजी का अर्थ नहीं पहचान पाये हैं। गुप्ताजी नहीं मानते कि 'वाक्यानुशासनम्' के अर्थ का अर्थ पीछे है। इसीलिए वे कहते हैं कि यदि वहाँ अनु होने से ही द्विवेदीजी ने यह अर्थ निकाला है कि वाचिनि ने अपने समय तक के वाक्यानुशासन किया था तो अनुपपन्न का अर्थ पीछे गढ़ा होना/ अनुपपन्न का पीछे वाचिनि अनुपपन्न का पीछे रंगना और अनुपपन्न का पीछे रंगना हीना वाचिनि, जो वस्तुतः नहीं है। गुप्ताजी के ध्यान की डा० मिह ने अभिप्राय में ले लिया। अतः वह भी कोई ऐसी बात नहीं किन्तु उनके बाद जो उन्होंने उनके अनुसार अनस्थिरता का अर्थ पीछे स्थिरता दिया है, वह अवश्य विषय है। अतः अनस्थिरता के 'अन' का हम 'अनु' से क्या सम्बन्ध ?

द्विवेदीजी के इन बातों पर कि अथवा वाचिनि विद्यावासीयजी ने अनस्थिरता को संस्कृत में कुछ मान लिया था, रोना करने हुए डा० मिह लिखते हैं, 'पर द्विवेदीजी की उक्त बात को प्रामाणिक मानने में आती यह है कि उक्त वह विषय नहीं बनाई जिसके द्वारा विद्यावासीयजी ने आधोष्य चर को कुछ मान लिया था। दूसरी ओर इनके टीका विपरीत गुप्ताजी तथा उनके समर्थकों ने सच नहीं और कुछ प्रमाणों के आधार पर इन चर को अनुप

एक उबरचमन भूम हा साहब ने गुप्तजी की ओर दिखायी है। उसका कहना है 'इसी प्रकार एकचमन 'बहु' को गुप्तजी ने बहुचमन 'बे' के स्थान पर और 'यह' को 'ये' के स्थान पर भी प्रयोग किया है। यथा— 'जब तक बहु जैसे न होमी यही जैसे बहुचमन समाया 'बहु' एकचमन सर्वनाम प्रयोग किया गया है। यह अगुद है। 'बहु' के स्थान पर 'बे' होना अपेक्षित था। ' इसीको कहते हैं कि मान काण्ड रामायण हो गयी और यह पता नहीं चला कि सीताजी किमती पत्नी थी। हाँ साहब के दोष का विषय 'गद्यकार वास-मुकुन्दमुल जीवन और साहित्य है और व यहाँ वास अनन्तरिता विषय-विचार पर मिल रहे है और गुप्तजी की पत्नी निकालते हैं वे और ये के प्रयोग न करने की। उन्हें जानना चाहिए कि गुप्तजी के और व को ही गलत मानन व वह और यह को एकचमन और बहुचमन दोनों में प्रयुक्त करते वे और लेने ही प्रयोगा को गुद मानते व। डा० साहब से विनय है कि व गुप्त निवन्धावली के गुप्त ४६५ ६६ एकबार फिर पढ़ जायें और अगर गुप्तजी से अनहमन हों तो उनके मिडाल की आमीचना करें, वे व को गली न निकालें बर्राकि गुप्तजी वा ही मिडाल का 'भूल बहु' होती है जो भूल से निमी जाते। जो बाल मनुष्य जान कर बिने बहु तो भूल नहीं। बहु पम है।" एक बाल और है जब गुप्तजीकी गमनी निडालने जायें तो कुरवा " एक चमन 'बहु' को गुप्तजी न बहुचमन 'बे' के स्थान पर और यह को 'ये' के स्थान पर भी 'प्रयोग दिया है' की जगह 'प्रयुक्त किया है' लिखें या यी 'प्रयोग दिया है' को ही रगता चाहें तो 'को' के स्थान पर 'का' कर दें क्योंकि गुप्तजी भागा की रचयिता के बड़े पताली वे। 'यही भाग' बहुचमन संज्ञा का 'बहु' एकचमन सर्वनाम प्रयोग किया गया है वा बरा बर वी बतायें और यह भी कि यहाँ 'व' सर्वनाम है कि सार्वनामिक विरापण। इसी प्रकार वा पाण्डित्य डा० मलय निह ने अपन ज्ञानपुड़ पाप प्रवच में अनवानेक स्थानों पर प्रकट किया है।

जो निम्नी शोध कार्य व नियन्ता व उनमे विभीन प्रावेना है कि निम्नी शोध प्रवन्धों की प्राबालितना के बारे में कुछ अधिक ज्ञान लें।

हृये २२६ है कि ७१ विषयान्तर अक्षयवचना से अविन लच्छ हो गया।

गुप्तजी की रिवा प्रकृत आलाचनाया पर यन्त्रिनि विचार कर लेने के

अनन्तर हम हम स्थिति पर पहुँच गये हैं कि उनकी आलोचना सैली और उनके औचित्य अनौचित्य की चर्चा करें। मुल्तमी की परिचयात्मक आलोचना सैली अमिबा प्रधान है। शेष यदि पसंद आया है तो उसकी उन्मुख शिष्ट प्रशंसा है जैसे बीबर पाठक एवं गन्दास की कविताओं की आलोचनाएँ यदि भुटियकर बना है तो भीरे से किन्तु स्पष्टता से बैसा कह दिया है। उसे तुलसी सुधाकर, अचलना पून लहरीबुन हस्ताम आदि की आलोचनाएँ। समर्पण की अपह समर्पण और विरोध की अपह विरोध दिया है।

विषय बन्तु सम्बन्धी आलोचनाएँ उन्हें निम्नलिखित उन चर्चों या सैन्यों की की है जिनमें वे सैद्धांतिक रूप से अत्यंत बे। उदाहरणार्थ अधुमती तारा जैसी पुस्तकें तथा साहित्यसेवी मि० ऐडवोकेट और प्रवासी जाति के साथ। इन विरोधों में आधुनिकता का अर्थ बहुत अधिक है। अतः जैसी आलोचनाएँ हो गयी हैं। इन आलोचनाओं को उन्हें सहारा दिये हुए हैं किन्तु वह गीत है। आलोचक के लिए अधिक भावुक होना कुछ नहीं कहा जा सकता। इन आलोचनाओं में बलुनिष्ठता की इनी लिए कमी है। पुरातन सभ्यता पर उनका आग्रह भी उन्हें समझ है और वे आधुनिकता के उसका विरोध करते हैं। जहाँ नवीन विषय-बन्तु का उन्होंने समर्पण दिया है वहाँ उन्होंने भूमिका सुझाव देने वाले की है आशा देने वाले की नहीं। बलिना में अन्य समक आदि का प्रयोग हो इसका समर्पण भी वे दूसरों को अपनी बात प्रमाणित करने का अधिकार देते हुए करते हैं अपनी बात को अवाध्य मान कर नहीं। ये प्रयोग के रूप में और वे दूसरों की मायताओं का उटना ही समझ करते हैं जितना अपनी मायताओं पर विरक्त। आपा सम्बन्धी आलोचनाओं में वे अधिक निश्चिन्त सुनि कर राई प्रतीत होते हैं। जले ही दूसरा उन्हें बलव माने किन्तु उनका पक्का आत्मविश्वास है कि उन्हीं का पक्ष गरी है। वह आत्मविश्वास उनकी आलोचनाओं की और अविश्वसनी बनाना है। निर्भीकता तो उनकी सड़क सगिनी की ही किन्तु भाषा के व्यंग्य-विनोदपूर्ण प्रयोग उन्हें जैसे हम क्षेत्र में दिये हैं जैसे आलोचना क्षेत्र में और नहीं नहीं दिये। दूसरे के प्रयोगों और निदाओं की बलिषा उठा देना उनके बाँये हाथ का खेल है और वे बराबर ऐसा करत हैं। विवाद के लिए उनकी पक्ष सैली आती है। इसी पक्षों बहुत बचन लेनगरीर व्यंग्य विनोदमयी आशा प्रशिक्षण को गिराना देनी है जोचित्य देनी है हनमुक्ति कर देनी है। फिर भी हमारा मत है

हि उनकी यह आलोचना बीसी बीसीर आलोचना के लिए अनुपयोगी है। इस पीली से विचार की मर्यादा और स्थिति नहीं रह जाती न मण्डनात्मक उपलब्धि हो सकती है। हिन्दी की बीसीर आलोचना में उनकी परम्परा नहीं बसी। पर्याप्त रूप से न ही कुछ दूर तक उसका उपयोग किया। ही अष्टन और विद्या के लिए यह उपादेय है किन्तु इस बीसी से प्रतिपत्नी कायल होकर मठ परिवर्तन कर सेवा इसकी छाया कम की करनी चाहिए। इसी शाली का प्रयोग अनेकानेक काल एक व्यापारिक बात बनवाने में लिए मुत्तजी ने किया था किन्तु एक उमड़ा हुआ। डिबेडीजी की विद्या और बहुत पड़ी। इसी बीसी के आधिपत्यवादी एक आपस्त पक्षिस्थानी आलोचक डॉ० रामविमल शर्मा के निम्न और बीसी-बीसी परास्तपक्ष गणकों का भी विषादक परिणाम नहीं निकला। अतः हमारी दृष्टि में इन बीसी की उपयोगिता निषेधात्मक ही है।

डॉ० लम्पन सिंह ने मुत्तजी को सुसनात्मक समीक्षा-पद्धति का बीजारोपण करनेवाला भी कहा है। डॉक्टर साहब ने जिस तरह गहनविचार प्रसन्न स्वामी बाबू रामवीर सिंह के प्रकाशन कार्य से भारतेन्दु द्वारा हिन्दी की उत्पत्ति के कार्य की या विज्ञानरहित भारत और इंग्लैंड को सुसना करनेवाले मुत्तजी के वाक्यों के आधार पर यह मौनिक स्थापना की है वह उनके साहस के अनुकूल ही है। उनके समान साहस न होने के कारण हम हम सम्भव में कुछ भी बढ़ने में आने की असमर्थ पाते हैं।

यह सब है कि साहित्य की आलोचना के क्षेत्र में मुत्तजी ने कोई ऐसा मौनिक या स्थायी महत्त्व का सिद्धान्त प्रस्तुत नहीं किया जिससे वे हिन्दी के अग्रणी आलोचक माने जाने लिये अपने समय में उठने लगे जिया उस युग की भीमा की वैभव हुए वह निश्चय ही अभिनन्दनीय है। भाषा की आलोचना के क्षेत्र में उनका कार्य स्थायी महत्त्व का है। हिन्दी भाषा के परिष्कार का ध्येय जिसका डिबेडीजी को दिया जाना है, उतना नहीं तो उमंग कुछ ही कम मुत्तजी का भी प्राप्य है। व्याकरण के ऊपर विष्ट भाषा प्रवाह की मज्जा स्थापित करना और गरम स्वच्छ, मठीली, सुठ प्रवाहपूर्ण भाषा का आदर्श उत्थित करना उनकी दो बड़ी देन हैं जिन्हें हजारों हिन्दी भाषी महा याद रखेंगे। उनकी भाषा की भेजना का सबसे बड़ा प्रमाणगत उनकी भाषा के तीन वर्ष का स्वयं आचार्य डिबेडी ने दिया था। राष्ट्रपिता के यह वृत्त पर कि भारती राम में गवने

अन्धी हिन्दी कोन निसता है ?" आचार्य त्रिवेदी ने कहा था—'अन्धी हिन्दी बस एक व्यक्ति निराला था—बालमुकुन्द गुप्त ।' * हिन्दी भाषा के परिष्कार कार्य में प्रवृत्त दो प्रमुख विद्वान् हैं—पं० किशोरीनाथ बाजपेयी और बाबू रामचन्द्र वर्मा । दोनों ही मुत्तमी के प्रति श्रद्धालु हैं । वर्माजी ने बरि उन्हें १९०२ ई से ही भाषा क्षेत्र में अपना सामर्थ्य मान रखा था । तो बाजपेयी जी ने अपना श्रेष्ठ । अपने को मुत्तमी का स्पष्ट आभाषी मानते हुए उन्होंने कहा है "मैं इतना ही कह सकता हूँ कि आचार्य त्रिवेदी को छोड़ और कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं है जिसकी भाषा तथा आलोचना पद्धति का मेरे ऊपर बड़ा प्रभाव पड़ा हो ।" *

हिन्दी भाषा के पिछ और छह बीं छतवाचिनी के बबसर पर हमारी विनीत बन्ना । ●

सम्बन्धी

एवं

संकेत-सूची

- (१) मुत्त निबन्धावली — स्वर्णव बालमुकुन्द मुत्त स्मारक संस्करण मु० नि०
 (२) बालमुकुन्द स्मारक ग्रन्थ—सं० श्री भादुरबल्लभ वर्मा (प्रथम संस्करण)
 श्री बनारसीदास कटुबेरी का० स्पा० प्र०
 (२) हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य पं० रामचन्द्र मुत्त सं २००३
 हि सा इ
 (४) बाणिलाल—आचार्य पं० महावीरप्रसाद त्रिवेदी (प्र सं) का नि
 (५) श्रीपौकन्द निबन्धावली—पं० श्रीपौकन्दरायण मिश्र (प्रथमावृत्ति)
 श्री श्री नि
 (६) महावीर प्रसाद त्रिवेदी और उनका युग—डा परबबालु सिंह
 (प्रथम आवृत्ति) व प्र डि उ बु
 (७) बटनार बाबू बालमुकुन्द मुत्त—डा नरपल सिंह (प्र सं)
 (जीवन और साहित्य) य का मु जी सा
 (८) हिन्दी आलोचना उद्भव और विकास—डा जयबल्लभ मिश्र (प्र सं)
 हि का उ वि
 (९) त्रिवेदी अभिनन्दनग्रन्थ—बाणी भाषी प्रचारिणी सभा डि ब य

उर = उपपन्न

अनुप अनुपपन्न न नि मु पुम्न मु

= नवनविषय मुत्त के पुम्नवाक्य में नूतन

निबन्धकार बालमुकुन्द गुप्त : एक मूल्यांकन

डॉ. दयानन्द श्रीवास्तव

बालमुकुन्द गुप्त हिन्दी-निबन्ध-साहित्य के अमृतबाल युग के अन्तिम चरण (भारतेन्दु युग) और परिवर्तन युग (डिबेरी युग) के आरम्भिक चरण के लेखक हैं। इन्होंने भारतेंदु युग के अन्तिम चरण में तिराना आरम्भ किया था। बुर्जुआ से इनकी मृत्यु सन् १९०७ ई० में हो गई, जिन भाषा में इनके निबन्ध सीमित हैं परन्तु इस सीमित अन्तर्धर्म में सीमित भाषा में लिगे निबन्धों में गिम्प को परिवर्तता आ गई थी। गिम्प और भाषा की दृष्टियों से बालमुकुन्द गुप्त भारतेंदु युग और डिबेरी युग के लेखक हैं। गुप्तजी का युग भारतीय जीवन में एक संक्रांति लेकर उपस्थित हुआ था। इन युग में समाज संरचना धर्म और ईश्वर जीवन आश्रित थे। ऐसी ही परिस्थिति में जितना के व्यापक परिवारों को लेकर गुप्तजीकी चिन्तन धारा ने निबन्धों के माध्यम से हिन्दी गद्य शैली को प्रीकृता प्रदान की।

बालमुकुन्द गुप्त के पूर्व भारतेंदु हरिश्चन्द्र, आसहृष्टा अट्ट और प्रतापनाथराय मिश्र विचारार्थक आलोचनात्मक आवाजक वर्णनात्मक तथा विचारप्रारम्भक शैली के निबन्ध प्रस्तुत कर चुके थे। ये निबन्धकार तथा इन युग के अन्य निबन्धकार किसी न किसी पत्र के सम्पादक थे। अतः इनके निबन्ध मन्त्रावलीय शिष्टाचारों के रूप में विचार-मनोच्छेदों में धिन्ध-धिन्ध विषयों पर लिखे गए चरित्रों की आलोचना प्रणाली के रूप में विविध प्रयोगों की गणनात्मकता के रूप में राजनीतिक स्थितियों के व्युत्पन्न के रूप में तथा सामाजिक दुरीकरण की आलोचना के रूप में आलोचनात्मक आवाजक बने आसक तथा विचार प्रदान शैलियों में लिगे दये हैं। इनमें हरिश्चन्द्र के नाथ नाथ विरोधनात्मक और तादृश शैलीको भी इन युगक निबन्धकारों ने प्रपय

दिया। साहित्य की भिन्न-भिन्न धाराओं में युग-सापेक्षता विद्यमान रहती है।
 जीवन के सम्बन्धों से प्रस्तुत साहित्यिक धाराओं में सर्वसुगीन और
 सर्वकालीन अस्तित्वता विद्यमान रहती है। इस दृष्टि से विचार करने पर हमें
 सन्तोष होता है कि इस युग के निबन्धों में अपने युग का विस्तृत और
 अनुचिततम प्रतिबिम्बित है। साहित्य-साधना के नवीन स्वर अपने बौद्धिक
 और मानसिक वैभव के साथ इस काल में निम्ने पथ भिन्नता में सुगरित है।
 राजनीति के प्रतिबिम्बित स्वर, साहित्य-जागरण का प्रतिबिम्ब और उसके
 सत्यात्मक चरणों की स्वरित गति अन्य साहित्यिक विधाओं के समान इस
 युग के निबन्धों में भी उपलब्ध है।

बालमुकुन्द गुप्त के युग में साहित्यिक चर्चा-परिचर्चा कमजोर आन्दोलन
 का रूप धारण करती या रही थी। इन आन्दोलनों के प्रवाह में
 साहित्य में उपलब्ध भावपथ और अभिव्यञ्जना प्रणाली की चर्चा के
 साथ भाषा-सम्बन्धी वाद-विवाद भी उपलब्ध हो जाते हैं। तात्पर्य
 यह कि बालमुकुन्द गुप्त के निबन्धों में ये समस्त विषयों और विनोदार्थों
 उपलब्ध हो जाते हैं। इनके विचारपरक निबन्धों में भाषा साहित्य और समाज
 संस्कार के प्रति आग्रह व्यक्त मिलता है। भारतेन्दु-युग के निबन्धों में विषय
 और उसके विधानबोधोपर इस युग के निबन्धकार धारणित नहीं सपने हैं। भाषा
 के उन्नयन और संस्कार की चेष्टा द्विवेदी युग में ही दृष्टिपोचर होती है।
 महावीरप्रसाद द्विवेदी के साथ इन चेष्टा का ध्येय बालमुकुन्द गुप्त को है। द्विवेदी
 युग में भाषा के स्वरूप-विश्लेषण हेतु किये गये प्रयत्नों में बालमुकुन्द गुप्त का
 योगदान ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। भारतेन्दु युग के निबन्धों में भाषा और
 विचारों को उन्नत करनेवाले निबन्ध प्राप्त नहीं हैं। द्विवेदी निबन्धों में
 इन प्रयुक्त की अवधारणा सर्वप्रथम बालमुकुन्द गुप्त द्वारा ही हुई।
 केवल में व्याकरण के नियमों की अवहम्मा इस युग के निबन्धकार कर
 जाने से परम्परा बालमुकुन्द गुप्त भाषा के गुण और परिमाण स्वरूप के प्रति
 मर्मक आधारणीय रहे हैं। अभिव्यक्ति में समय और मर्यादा के प्रति विरोध
 रखने से भी ये इस विचार का सर्वप्रथम मर्यादा करने में समय नहीं रहे
 हैं। द्विवेदी की सार्वजनिक रूप देने के प्रथम भाषा के कारण उन्हें कभी-कभी
 बन्दू भी होता पड़ा है। ताड़ी बोली के स्वरूप-निर्माण का ध्येय महावीर प्रसाद

निबन्धकार बालमुकुन्द गुप्त : एक मूल्यांकन

डॉ. दयानन्द श्रीवास्तव

बालमुकुन्द गुप्त हिन्दी-निबन्ध-साहित्य के अमूल्य ग्रन्थों में से एक हैं। वे भारतवर्ष (भारतीय युग) और परित्याग युग (द्वितीय युग) के आरम्भिक चरण के लेखक हैं। उन्होंने भारतवर्ष युग के अन्तिम चरण में लिखना आरम्भ किया था। दुर्भाग्य से उनकी मृत्यु सन् १९०७ ई० में हो गई, जब मात्रा में उनके निबन्ध सीमित थे परन्तु इस सीमित अवधि में सीमित मात्रा में लिखे निबन्धों में चित्त की परिपक्वता आ गई थी। चित्त और भाषा की दृष्टि से बालमुकुन्द गुप्त भारतीय युग और द्वितीय युग के हेतु हैं। गुप्तजी का युग भारतीय जीवन में एक संक्रमण लेकर उपस्थित हुआ था। इस युग में समाज संस्कृति नर्म और वैदिक जीवन आधुनिक थे। ऐसी ही परिस्थिति में चेतना के व्यापक परिवर्तन को लेकर गुप्तजी की चिन्तन शक्ति ने निबन्धों के माध्यम से हिन्दी गद्य शैली को प्रौढ़ता प्रदान की।

बालमुकुन्द गुप्त के पूर्व भारतवर्ष हरिश्चन्द्र आत्मकृत्य भट्ट और प्रतापनारायण मिश्र विचारधारा आलोचनात्मक आवाज के वर्णन के रूप में विद्वत्तात्मक शैली के निबन्ध प्रस्तुत कर चुके थे। वे निबन्धकार तथा इस युग के अन्य निबन्धकार, द्वितीय नव शैली के सम्पादक थे। अब इनके निबन्ध समाज की दृष्टिगतियों के रूप में विचार-मनोवैज्ञानिकों में विभिन्न-विभिन्न विषयों पर लिखे गये चिन्तनों की आलोचना-प्रत्यालोचना के रूप में विभिन्न चरणों की समालोचना के रूप में राजनैतिक स्थितियों के मूल्यांकन के रूप में तथा सामाजिक दुरावस्थाओं की आलोचना के रूप में आलोचनात्मक आवाज के वर्णन के रूप में विद्वत्ता प्रदान शैलियों में लिखे गये हैं। इनमें हृदय-आत्म के साथ साथ विवेकपूर्ण और तार्किक शैली को भी इस युग के निबन्धकारों ने प्रथम

दिवा। साहित्य की भिन्न-भिन्न धाराओं में युग-सापेक्षता विद्यमान रहती है। जीवन के क्षणों से प्रसफुटित साहित्यिक धाराओं में सबसुगीन और सर्वकालीन अन्तरचेतना विद्यमान रहती है। इस दृष्टि से विचार करने पर हमें सन्तोष होता है कि इस युग के निबन्धों में अपने युग का चिन्तन और अनुचिततम प्रतिबिम्बित है। साहित्य-साधना के नवीन स्वर अपने बौद्धिक और मानसिक बीमब के साथ इस काल में मिल गये निबन्धों में सुरक्षित हैं। रचनात्मक के प्रतिबिम्बित स्वर, साहित्य-जागरण का प्रतिबिम्ब और उसके गहरात्मक चरणों की स्वरित गति अन्य साहित्यिक विधाओं के समान इस युग के निबन्धों में भी उपलब्ध है।

बालमुकुन्द गुप्त के युग में साहित्यिक चर्चा-परिचर्चा क्रमशः धाम्दोमन का रूप धारण करती जा रही थी। इन आन्दोलनों के प्रवाह में साहित्य में उपलब्ध आबपन और अभिव्यञ्जना प्रणाली की चर्चा के साथ भाषा-मन्त्राची काव्यविवाद भी उपलब्ध हो जाये है। तात्पर्य यह कि बालमुकुन्द गुप्त के निबन्धों में व समस्त स्थितियाँ और विशेषताएँ संस्कार के प्रति आबह व्यक्त मिलता है। भारतेन्दु-युग के निबन्धों में विषय-संस्कार के प्रति विनय आबह भाव तो मिलता है, परन्तु भाषा के स्वल्प-निर्माण और उसके विधानशील और इस युग के निबन्धकार धाकपित नहीं लगते हैं। भाषा के उन्नयन और संस्कार की कष्टा द्विवेदी युग में ही दृष्टिगोचर होती है। महावीरप्रसाद द्विवेदी के साथ इस कष्टा का अथ बालमुकुन्द गुप्त की है। द्विवेदी युग में भाषा के स्वल्प-विशेषाद् द्वेयु किये गये प्रयत्नों में बालमुकुन्द गुप्त का योगदान ऐतिहासिक महत्व रखता है। भारतेन्दु युग के निबन्धों में भाषा और विचारों को उत्तेजित करनेवाले निबन्ध प्रायः नहीं हैं। द्विवेदी निबन्धों में इस प्रयुगता की अवधारणा सर्वप्रथम बालमुकुन्द गुप्त द्वारा ही हुई। इन निबन्धों में व्याकरण के नियमों की अवहेलना इस युग के निबन्धकार कर जान से परन्तु बालमुकुन्द गुप्त भाषा के शुद्ध और परिष्कारित स्वरूप के प्रति मर्याद आह्वानीय रह है। अभिव्यक्ति में मर्याद और मर्यादा के प्रति विरोध रगत हुये भी व इस विरोध का सर्वप्रथम संस्कार करने में लगे नहीं रहे हैं। द्विवेदी को सार्वजनिक रूप देने के प्रथम आग्रह के कारण उन्हें कभी-कभी बन्दू भी होना पड़ा है। गङ्गा गोपी के स्वल्प-निर्माण का अथ महावीर प्रसाद

डिबेरी को ही दिया जाता है परन्तु इस सम्बन्ध में बालमुकुन्द गुप्त के योगदान को हम नगण्य नहीं कह सकते हैं। बालमुकुन्द गुप्त ने भाषा में समन्वय के प्रति विद्यार्थियों से व्यापक व्यक्त किया। भाषा और ऐसी विद्वान और भाव-प्रस्तावनों के स्वरूप का नियमन करती है। अपने निबन्धों में प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से गुप्तजी ने इस तथ्य को सम्मुख रखने का प्रयत्न किया है। इस प्रकार का प्रयत्न अपने स्वयं में एक गुच्छर साबित है। इस दायित्व के निर्वाह में गुप्तजी को अपने समकालीन और स्नेहपूर्ण व्यक्तियों का विरोध भी करना पड़ा उनकी प्रतिवन्धिता स्वीकार करनी पड़ी। इस तथ्य पर विचार करते हुये हमारा ध्यान महावीरप्रसाद डिबेरी की ओर आकर्षित होता है। 'सरस्वती' के माध्यम से महावीर प्रसाद डिबेरी खड़ी बोली का संस्कार कर रहे थे। डिबेरीजी अपने समकालीन और पूर्वकालीन लेखकों की भाषा और व्याकरणकी गूटियों पर सरस्वती में निबन्ध प्रस्तुत कर रहे थे। इन्होंने सरस्वती के ग्राहकों के बीच में 'भाषा और व्याकरण' धीरे-धीरे एक विचार-आत्मक निबन्ध लिखा। यद्यपि डिबेरी जी भाषा के स्वरूप का नियंत्रण और नियमन कर रहे थे परन्तु स्वयं उनकी भाषा में गूटियाँ थीं। बालमुकुन्दगुप्त ने डिबेरीजी की गूटियों की ओर संकेत करते हुये 'आत्मार्थ' के नाम से एक लेखमाला प्रकाशित की। इसमें महावीर प्रसाद डिबेरी द्वारा प्रयुक्त 'अनतिवृत्ता' शब्द के असुख रूप की ओर संकेत किया गया था। यद्यपि इस निबन्धमाला के कारण डिबेरीजी और बालमुकुन्दगुप्त में प्रतिवन्धिता की भावना आनृत हुई, परन्तु इस प्रतिवन्धिता से एक लाभ हुआ। युगीन लेखकों में भाषा की चेतना आनृत हुई। इस सम्बन्ध में आगे बर्णन की गई है।

हम स्पष्ट देखते हैं कि बालमुकुन्द गुप्त साहित्य और भाषा की जीवन्त माध्यमों में आपूर्ण थे। इन्होंने सन् १९५० में 'हिन्दी बंगाली' के सम्पादकीय दायित्वों को ग्रहण किया। इस पत्र के माध्यम से बालमुकुन्द गुप्त के हिन्दी पद्य ऐसी के स्वरूप-विधान और नियमन के महत्वाकांक्षी प्रयत्नों से हम सभी परिचित हैं। इन्होंने हिन्दी-पद्य को एक नया रूप दिया उनके इतिहास में एक युगान्तर उत्पन्न किया। इनके प्रयत्नों को 'अन्तर मोड़ी' जैसे हिन्दी 'बंगाली' के प्रधान अमृतलाल बच्चर्जी के एक संस्करण से विना जानी है। अनुवादक बच्चर्जी ने गुप्तजी की हिन्दी भाषा की गूटियों में

इस प्रकार सिद्ध है—जिस समय बाबू बालमुकुन्द गुप्त हिन्दी बंगवासी में घाये उस समय स्वर्गीय पण्डित प्रमुदयाल पाण्डेय गुप्तजी और मैं—हम तीन भिन्न भिन्न भाषा भाषियों का विभिन्न सम्बन्ध हुआ। कदाचित् इन भिन्न भिन्न भाषा भाषियों का एकत्र हिन्दी सेरान में आकर होना हिन्दी भाषाके सिधे कुछ लाभकारी हुआ। तीनों के नववीजन का प्रायः सारा आश्रय मिलित हिन्दी भाषा को सुधर बनाने में व्यतीत हुआ। किसी किसी दिन एक रात्र के पीछे दो-दो तीन-तीन बजे रात तक तीनों में कठिन लड़ाई होती थी भाषा सम्बन्धी विषय ही ऊपर हूय घापस में तय कर लेते थे। और आज दिन उस तय क्रिये हूये निदानों के अनुसार हिन्दी के प्रायः वर्तमान लेखक अपनी भाषा निर्विकोष लिख रहे हैं। इस प्रकार हम स्पष्ट देखते हैं कि हिन्दी भाषा और उसके पक्ष के स्वल्प-निर्धारण तथा उसे व्यवस्थित रूप प्रदान करने में गुप्तजी की साधना का ऐतिहासिक महत्त्व है।

बालमुकुन्द गुप्त के निबन्धों के विषय और उनकी शैली अनिसरत है। इनके निबन्ध प्रायः विषय-प्रधान हैं परन्तु उनके व्यक्तित्व का दबेद्व प्रभाव उनके निबन्धों पर मिलता है। इनके निबन्धों में इनके व्यक्तित्व और विषय पक्ष का संतुलित समन्वय हुआ है। ऊपर कहा गया है निबन्ध लेखन की परम्परा गुप्तजी को भारतेन्दु और प्रतापनारायण मिश्र से प्राप्त हुई थी परन्तु उन्होंने इस परम्परा का विकास स्वयं रूप से किया। 'निबन्धकार' रूप में जब गुप्तजी पर विचार करते हैं तो हमारा ध्यान अभावान्त 'मॉर्जन' की ओर आकर्षित होता है। मॉर्जन के निबन्ध व्यक्ति-प्रधान हैं। जिन्हें हम मॉर्जन अपने निबन्धों में रचना गिल्स के प्रति आग्रहीत नहीं हैं। बलियु मुक्त रूप में बिना किसी बन्धन के मूल शिव सम्बन्धी-मात्रों का प्रतिपादन इनके निबन्धों में उद्देश्य है। इसी मन्त्र में वे सर्वदेवी भाषाके प्रमुग और सम्भवतः प्रथम निबन्धकार 'बैरव' के निबन्धों की ओर भी हमारा ध्यान आकर्षित हो उठता है। मन् १९०३ में जिन क्पोरियो ने 'मॉर्जन' के निबन्धों का धड़ेजी में अनुबाद किया जिसने प्रकाशित होकर बैरव ने अपने निबन्ध लिखा। परन्तु बैरव 'मॉर्जन' के निबन्धों से बनकर कथा में मिला थे। मॉर्जन की शैली व्याप्यात्मक या वर्णनात्मक है बैरव की शैली मूलात्मक है। प्रथम की शैली व्यक्ति-प्रधान है द्वितीय की विषय-प्रधान। परन्तु बैरव ने निबन्धों में द्वितीयता है और व्यक्ति पक्ष पर अधिक ध्यान दिया था मूल्य भाषा में है। धरे कहने का यह तात्पर्य नहीं कि

बालमुकुन्द गुप्त के निबन्ध पाश्चात्य निबन्ध-परम्परा के अन्तर्गत आते हैं। गुप्तजी पाश्चात्य निबन्ध-परम्परा से परिचित भी नहीं थे। परन्तु एक मौलिक निबन्धकार होने के नाते येष्ठ निबन्ध की अगर बहिष्कृत शैलियों का सम्मुख संयोग इनके निबन्धों में उपलब्ध हो जाता है। विषय की दृष्टि से गुप्तजी बेकन की शैली के निबन्धकार हैं अर्थात् इनके निबन्ध विषय-निष्ठ हैं व्यक्ति-निष्ठ नहीं। फिर भी शैली की दृष्टि से वे बेकन से भिन्न 'मोर्तन' से छापीय रहते हैं। बेकन के निबन्धों में उपलब्ध तार्किक शीघ्रगता गुप्तजी के निबन्धों में उपलब्ध हो जाती है किन्तु उनके निबन्धों की सुचारुता शैली या सामासिक शैली गुप्तजी के निबन्धों में उपलब्ध नहीं होती। 'मोर्तन' के निबन्धों के समान इनके निबन्ध व्यास या व्याख्यात्मक शैली में मिले जाते हैं। बेकन के समान गुप्तजी भी अपने निबन्धों के केन्द्र स्वयं नहीं है। फिर भी गुप्त जी के निबन्धों का सुसंगत संघर्षशील प्रवृत्ति पाश्चात्य साहित्य में उपलब्ध निबन्धों के मध्य में अपेक्षित नहीं है। कारण अगर पाश्चात्य साहित्य के जिन निबन्धकारों की चर्चा की गई है उनमें तथा बालमुकुन्द गुप्त में वैध और काम का अन्तर है। गुप्तजी के निबन्ध किसी प्रकार की बाह्यप्रेरणा की उपलब्धि नहीं है। इनके निबन्ध सुमनस्य हैं। इनकी मूल प्रेरणा गुप्तजी सामासिक राजनीतिक साहित्यिक एवं भाषागत परिस्थिति है।

बालमुकुन्द गुप्त अपने समय के विभागीय चिन्तक थे। इनकी चिन्तन धारा और इनका मानसिक चटन इनके निबन्धोंमें स्पष्ट प्रतिबिम्बित है। इन्होंने विचारालम्बक मानोचनात्मक भाषात्मक बर्तुनात्मक विवरणालम्बक निबन्धों की रचना की है। ये निबन्ध प्रौढ़ और परिपक्व शैली में लिखे जाते हैं और इनमें चिन्तन का उच्चतम धरातल उपलब्ध होता है। इनके निबन्धों में प्रमाणावली धारा के निबन्धों और आलोचना शैलियों के दर्शन होते हैं। द्वितीय में इन्होंने यथार्थगुण निबन्ध-प्रणाली को जन्म दिया जिनमें विचारालम्बक चेतना के प्रमाणों के साथ व्यास और उपहास का मार्भक सम्बन्ध मिलता है। और इनमें हास्य और व्यंग्य विषय-मुख्य है। विचारों की शृंगाराने निबन्धकार विषय प्रतिपादन करना हुआ जानी सम्पूर्ण भाषात्मक और शैक्षणिक सत्ता का प्रयोग करता है और पाठक जगदी भाषात्मक और शैक्षणिक सत्ता की अनुमति करता है और इन अनुमतिपत्रों की प्रतीति

में वह निबन्धकार के साथ सामाज्य स्थापित कर लेता है। पाठक की भावना निबन्धों में प्रस्तावित उत्तेजनापूर्ण विचारों के साथ उत्तेजित होने लगती है।

ऊपर कहा गया है कि बालमुकुन्द गुप्त ने अपने युग में उठाये गये भाषा-सम्बन्धी समस्याओं को धीरे-धीरे परिष्कार में लाया था। इस सम्बन्धमें विचार करते हुये हमारा ध्यान सर्वप्रथम इस युग में उठाये गये हिन्दी विरोधी आन्दोलन की ओर आकर्षित होता है। हिन्दी उर्दू के मध्य उठाई गई प्रतिहिंसा के पीछे आर्थिक तथा राजनैतिक अनुप्रेरणायें प्रतिस्पर्धावादी दृष्टियों के रूप में कार्य कर रही थी। इस प्रक्रम पर राजाधिराज 'सितारे हिन्द' और राजा सत्यनारायण सिंह का स्मरण हो उठता है। 'सितारे हिन्द' आरम्भ में हिन्दी की नैसर्गिक विषा के लेखक थे। इनकी टीसी के दो रूप उपलब्ध होते हैं। प्रथम रूप यह है जिसमें 'इतिहास विमिर नायक' की रचना हुई है। इसकी टीसी संस्कृतमिष्ट है। दूसरी टीसी है 'राजानोज का सपना की। यह कवि बोलचाल की भाषा में लिखी गई है। इसी बीच सर सीयद अहमद ने हिन्दी का विरोध आरम्भ किया और सर सीयद के प्रभावमें 'सितारे हिन्द' में हिन्दी के नैसर्गिक रूप का विरोध किया। बालमुकुन्द गुप्त के युग में इन संघर्षों का स्वर अधिक सुतरा से सुनाया गया है। बालमुकुन्द गुप्त ने अपनी सम्पूर्ण आस्था के साथ इस संघर्ष में भाग लिया। इनके भाषा-सम्बन्धी निबन्धों में इनकी भावनाओं की प्रेरणा से ही भाग नहीं लिया है। इनके सिधे उनके पास तर्क और सब प्रमाण थी है। उन्होंने आस्था विराम और विनोद तथा नैसर्गिक दृष्टियों के सहारे विषय के युग में प्रवेश करने का प्रयत्न किया है। अपने भाषा-सम्बन्धी निबन्धों में वे विरोधी मन बाला का उत्तर आत्मविश्वास के साथ देते हैं। उनके समामाधिक उर्दू सगवारों में हिन्दी भाषा की वर्णा-परिष्कार होती थी। इन सगवार पत्रों में लाली के पीछे आमक सगवार न हिन्दी और उर्दू भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते हुए त्रिभुज विचारों को प्रकट किया था उनका मार्ग इन सगवारों में व्यक्त किया जा सकता है—

(क) हिन्दी मुर्दा क्या है। हिन्दी में केवल मुकुन्द बोलने वाले कम हैं (ग)

हिन्दी जिस देवनागरी लिपि में लिखी जाती है वह लिपि धर्मज्ञानिक है। हिन्दी की अपेक्षा उर्दू तेज लिखी जाती है।

वास्तविक रूप से इस प्रकार की आलोचनाओं के प्रत्युत्तर-रूप में और वस्तुस्थिति के स्पष्टीकरण हेतु 'भारतमित्र' में भाषा-विषयक लेख और टिप्पणियाँ लिखा करते थे। परन्तु इन लेखों और टिप्पणियों में इनकी दृष्टि किसी प्रकार की साम्प्रदायिक भावना या पूर्वाग्रह द्वारा नियंत्रित नहीं थी। साहूँर के 'पैसा' अखबार की आलोचनाओं का स्पष्टीकरण करते हुये गुप्तजी द्वारा लिखे गये निबन्धों में 'उसटी बलीब' और 'डू की मीठ' दीर्घक निबन्ध विशेष महत्व के हैं। इन निबन्धों की भाषाशुद्धि है हिन्दी के ऐतिहासिक महत्व का उद्घाटन करना और हिन्दी की वैज्ञानिकता पर उठाई गई धंकावों का सामाधान करना। हिन्दी के प्रति अपने भाव व्यक्त करते हुये 'उसटी बलीब' नामक लेख में उन्होंने इस प्रकार लिखा है 'कौन कहता है कि हिन्दी मुर्दा जवान है? वह हिन्दी ही तो है जो हस्तुस्थिति के हर एक कोने में बोली-समझी जा सकती है। बाकी वह काफ़ी से गरी हुई बले में अटकनेवाली मीठबियाभा उर्दू तो आपके बस-बाँध भीतरी लोग ही बोधते हैं। पैसा अखबार कहता है कि हिन्दी के बैठकस्तुक बोझनेवाले बहुत कम हैं। हम कहते हैं—हिन्दी सभी बोझते हैं। आपके उर्दू ही बोझने वाले बहुत कम हैं। आप कसम खाकर कहें कि आपके पंजाबी मुसलमानों में जो लोग पढ़ित हैं और बी० ए० एम० ए० हैं उनमें से भी तो मैं पाँच सप्त दस उर्दू बोल सकते हैं। हमसे आपकी दो बड़े मुलाकात हुई। आपके उर्दू बोझने पर हमको हंसी तो बहुत आई परन्तु पर आपके बेहजारी के समान से उसमें मुक़ताबोनी नहीं की। आप कैसे कहते हैं कि हिन्दी मुर्दा है?'

इस प्रकार हम देखते हैं कि निबन्धकार अपने विषय-प्रतिपादन में धार्मिक तनक और सजग रहना है और जहाँ तक सम्भव होता है, विषय की सीमा में रहने हुए मर्यादा नीति और धीरचित्त का संरक्षण करने हुये अपने कर्म का प्रतिपादन करता है। वह हिन्दी पर कगार गये आरोपों के धर्म ज्ञानिक ठेकों की नुतिरुन्ता पर संभव से आपत्त करते हुए वस्तुस्थिति का वर्णन करता है 'यही बात कि उर्दू तेज लिखी जाती है कि हिन्दी

की भी काजी में परीया हो चुकी है—धीमा नूलाटुम जो कुछ दिनों के लिये मेरुजानम माहेब के छुट्टी जाने पर परिषदीतर के साठ हो चुके हैं मामरी प्रचारितगी मया में इसका तमासा देन चुके हैं और माया छुटने की आपने खुब बही। हिन्दी सिखनवाले न तो माया छाड़ते हैं, न हिन्दी में कुछ का कुछ पड़ा जाता है। यह तो उर्दू ही है जिसमें कुछ जिस तम्ना हो गया का कुछ 'जदम पोस्ता हो गया' पड़ा जाता है और मुनगों के हर केरसे 'मानी' और 'नानी' में कुछ घेर नहीं रहता। 'मारतमिज' इन निबन्धों में निबन्धकार के विस्तन की सम्पूर्ण सत्ता विद्यमान मिलती है। इनमें बहू-अस्तान हेतु प्रयुक्त प्रत्येक वाक्य प्रयोजनपूर्ण है। इनमें बिचारों के आशय में एकजुट गला मिलती है और प्रतिपक्षियों की बिचारपाय का ताड़न करता हुआ लेग उनके व्यक्तित्व की छावक आलोचना भी करता है। इन मन्वम में 'गणदेवार पण्डित' छीपक लेग का उल्लेख यहाँ अपसित कगना है। यह लेग कारमीटी पण्डितों की माया-सम्बन्धी भावना का उद्घाटन करते हुए उनकी मनोवृत्ति की आलोचना भी करता है। इस निबन्धमें निबन्धकार एक जाति-विरोध के मानसिक-गठन और उसके विस्तन-स्वरूप का परिचय देन हुए राष्ट्रीय पराजय पर उनका मूल्यांकन करता है 'कायस्य साहबों न हुमय रजा हिन्दी बिरोधियों में कदमीटी पण्डितों का है। यह मनेमानस भी मानरी अक्षरों को भेना का छीग ही समझने है। इनके बड़े पण्डित से परल्लु यह पण्डित है। मायब इन्हीं के मुखारक नाम पर बादशाही में 'पण्डनतान' बने से। इन्हीं का वाकिफा उर्दू के कवि ओक ने अपनी मित्राब में छपड़ दिया है। इन गणदेवार पण्डितों के नाम शूनिय—पण्डन इतकाम नयापन पण्डन परलाय क्रिगन पण्डन महापयन क्रिगन भावा आलह बया मुख संस्कृत नाम है।

ऐसे पण्डनों का कारण ही मायब प्रयाय इनाहाबाद बना है। 'रत्तीरे दिल' में बिजिन हुआ कि इनाहाबाद में मुनमानों ने मायरी बिरोधी एक मया की उनमें स्वर्गीय पण्डन अयोप्यामाय (उर्दू में इनका नाम अजयिदामाब लिगा जाता था) के घर के बिताय पण्डन अमरनापत्री ने भी अजयिदामाब का बिरोध दिया था और कहा था कि इन अक्षरों में लिगने से मायरी अक्षरों का बिरोध दिया था और कहा था कि इन अक्षरों में लिगने से उर्दू उमट-गलट हो जायगी हमारे मये पण्डन भी ने यह बात बही वो रिमी मुमनमान को भी न कहने आई। मुना है लगनरु की मयाबी के समय एम नबार आरे ब जिन्होंने कभी येदू का पैर नहीं देना था एक मयाद्विष न उनमें कहा कि हुनुर आज मुनाय गू का पैर देन आया। सत्तर दो बदतर हाथ ऊ का था। एक और उनके बीच आचन कर करती

है। उसी तरह क्या प्राक्कर्म जो आगेरेविछ अवोध्यानाथ जी के सुयोग पुत्र ने देवनामरी का पेड़ भी न बैठा हो।

हम स्पष्ट रूप में बोल पाते हैं कि भाषा-सम्बन्धी समस्या पर गुप्तजी ने एम्मीछ्ठा पूर्वक विचार किया था। गुप्तजी भाषाकी शक्ति से पूर्णतः परिचित थे। भाषा की शक्ति है उसकी अभिव्यञ्जना शक्ति और उसकी प्रेप भीयता। भाषाजनजीवन में विकसित होती है। जनजीवन की भाषा जबका जनजीवन के सम्पर्क की भाषा का ही नैसर्गिक विकास होता है और इसी प्रकार की भाषा में साहित्य की उत्पत्ति अपेक्षित है। बालमुकुन्द गुप्त की भाषा-विषयक भावना इसी प्रकार की थी। सन् १९०३ में मुक्त प्रान्त (वर्तमान उत्तर प्रदेश) के जूजिसियल सेक्रेटरी एच ए० ए० बटसर ने प्रादमरी शिक्षा के लिये ऐसी भाषा की प्रस्तावना की थी जिसमें उन भाषा-रूपों का मिश्रण हो, जिसमें पड़े मिले मुसलमान और हिन्दू मिलते हैं। भाषा बनाई नहीं जाती है, स्वयं बनती है। इस सत्य को गुप्त जी भी प्रकार जानते थे। और इस सत्य से आपूरित होकर इस प्रस्ताव का उन्होंने विरोध किया। इस प्रस्ताव की प्रतिक्रिया में उन्होंने हिन्दी वर्ग का भेद' दीर्घक निबन्ध (भारतमित्र में १९०३) लिखा। परन्तु यह केवल प्रतिक्रिया के आवेग और आवेग में ही नहीं लिखा गया है। इसमें भाषा की चिरन्तन शक्ति का सम्यक् उद्घाटन करते हुये निबन्धकार ने वक्तव्य प्रस्ताव के नैसर्गिक स्वरूप की ओर भी संकेत किया है। इस निबन्ध में गुप्तजी ने कतिपय मौखिक संशयों और सन्देह व्यक्त किये हैं जो विषय प्रस्तावकों की ओर से समाधान की अपेक्षा रखते हैं। इन निबन्ध के मूल भाव इस प्रकार हैं।

(१) पड़े-मिले हिन्दू और मुसलमान भिन्न भाषाओं का प्रयोग करते हैं, वे धान लोपों की भाषा नहीं हैं। ये भाषायें जनजीवन से दूर हैं, जहाँ ये मिश्रा का माध्यम नहीं हो सकती हैं। पड़े-मिले हिन्दू कबहरियों में भिन्न भाषा का प्रयोग करते हैं वह कृत्रिम भाषा है। कबहरियों के बाहर जाने घरों में या दैनिक जीवन के मिश्र-निबन्ध पत्रों में ये इस प्रकार की भाषा का व्यवहार नहीं करते हैं। ग्रामीण सम्प्रदायों से भी इस प्रकार की भाषा का कोई सम्बन्ध या सम्पर्क नहीं है। ऐसी स्थिति में इस प्रस्तावित भाषा-वक्ता की कोई उपयोगिता नहीं है।

(२) जिस भाषा-रूप की प्रस्तावना सरकार करना चाहती है उसकी निम्न क्या होनी देवनागरी अथवा फारसी ? उर्दू के फारसी लिपि में लिखी जाने के कारण और अरबी-फारसी के मुहावरों के प्रति अतिशय आप्रहृष्ट होन के कारण हिन्दी से भिन्न एक स्वतंत्र भाषा का बाध होता है। संघर्षी हिन्दुस्तानी भाषा के प्रकार और प्रकार के प्रति आप्रहृष्ट होता है। इस सम्बन्ध में विचार करते हुये गुप्तजी कहते हैं वह न हिन्दी है न उर्दू और हिन्दी है उर्दू भी है। पर वह धनी भाषा जान सेना चाहिये कि निबन्धकार को वह पारण है कि हिन्दी-उर्दू में वास्तविक एकता उस समय स्थापित हो सकती है जब दोनों एक लिपि धर्मात् देवनागरी लिपि में लिखी जायें। फारसी लिपि के कारण उर्दू एक अभाषा भाषा ही मानी है। फारसी अथवा इस भाषा को अरब और ईरान की ओर आकर्षित करते हैं।

हिन्दी उर्दू के वाद-विवाद से सम्बन्धित निबन्धों के अनिश्चित गुप्तजी ने भाषा और व्याकरण सम्बन्धी अन्य निबन्ध भी विषय और शैली इन दोनों ही दृष्टियों से विवेक महसूस के हैं। ये निबन्ध दो प्रकार के हैं। प्रथम प्रकार के निबन्ध स्वतंत्र रूप में मिल गये हैं। इन निबन्धों में हिन्दी भाषा और लिपि पर केवल ने ऐतिहासिक दृष्टि से विचार किया है। इनमें हिन्दी भाषा की भूमिका 'हिन्दी भाषा' का भाषा और उर्दू हिन्दी में हिन्दी हिन्दी की उपनि 'भारत की भाषा' एक लिपि की अकरण' देवनागरी अथवा 'हिन्दुस्तानी' एक समुदाय का हिन्दी निबन्ध विवेक अने उल्लेख पायी है। द्वितीय प्रकार के निबन्ध इनके युग में उगाये गये भाषा और व्याकरण विषय विवेक के सम्बन्ध में मिल गये हैं। इन निबन्धों में 'भाषा की अतिरिक्तता' शीर्षक निबन्ध विवेक महसूस का है। इन शीर्षक में इन निबन्ध हैं। ये १० अष्टाक्षरीभाषा विवेक के भाषा-सम्बन्धी निबन्ध की प्रति दिया और उत्तर में मिल गये हैं। इन निबन्धों में 'भाषा-सम्बन्धी निबन्ध' और 'अतिरिक्तता' और धरने और पर' शीर्षक निबन्धों में निबन्धों की सम्मिलित करने योग्य हैं।

य निबन्ध विवेक-विषय की हैं तथा आनन्दनाथ व्याख्यात्मक और तात्त्विक दोनों में मिले गये हैं। य निबन्ध धरने मुख्य विषय की प्रस्तावना के

साथ प्रारम्भ होते हैं निबन्धकार अपनी वैयक्तिक मान्यता की अपेक्षा सर्व मान्य तथ्यों और स्थापित सिद्धान्तों का आधार ग्रहण कर हो विषय का विस्तार करता है जिससे विषय-निरूपण को वैज्ञानिक शक्ति मिलती है। इनमें बिना किसी मूढिका के निबन्धकार अपने मुख्य विषय की प्रस्तावना करता है। विषय से सम्बन्धित आवश्यक ऐतिहासिक तथ्यों के सम्बन्ध में विषय का विस्तार करता है। इन तथ्यों के माध्यम से विवेचना और निरूपण के पश्चात् उपसंहार-स्वरूप निष्कर्ष देता है। उदाहरण के लिये 'हिन्दी भाषा की मूढिका' से एक अंश यहाँ उद्धृत किया जाता है 'वर्तमान हिन्दी भाषा की जन्मभूमि दिखती है। वहीं ब्रजभाषा से यह उत्पन्न हुई और वहीं उसका नाम हिन्दी रखा गया। प्रारम्भ में उसका नाम रेस्ता पड़ा था। बहुत दिनों यही नाम रहा। पीछे हिन्दी कहलाई। कुछ और पीछे उसका नाम उर्दू हुआ। अब प्यारसी बोल में उसका उर्दू नाम ज्यों-ज्यों बना हुआ रत्न कर देवनागरी बस्त्रों में हिन्दी भाषा कहलाती है। पृ० १०५ पृ ११५नु नि निरूपणार्थक पद्यों में 'हिन्दी' शब्द की व्याख्याके पश्चात् निबन्धकार हिन्दी-उर्दू के पारस्परिक सम्बन्धोंका वर्णन भी करता है। निरूपणार्थक विवेचनात्मक और व्याख्यात्मक तरीके में निम्न लये निबन्धों में 'हिन्दी में बिन्दी' शीर्षक एक विशेष प्रकार का निबन्ध है। इस निबन्ध का उल्लेख वर्तमान प्रसंग में विशेष प्रयोजन से किया जा रहा है। इस निबन्ध में गुप्तजी भाषा की मर्यादात्मक समता की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हुये इस तथ्य का उद्घाटन करते हैं कि जब दो भिन्न भिन्न भाषाएँ एक दूसरे के सम्पर्क में आती हैं, तो वे एक-दूसरे को प्रभावित करती हैं और दूसरी भाषा के शब्दों को अपनी प्रकृति और प्रवृत्ति के अनुसार परिवर्तित कर या क्वालिफाई कर आत्मसात् कर लेती हैं। नामची प्रचारिणी सभा ने उर्दू शब्दों के शुद्ध उच्चारण हेतु देवनागरी में भी शब्दों के नीचे बिन्दी लगाने की रीति के प्रति आग्रह व्यक्त किया। परन्तु यह इस तथ्य की अवहेलना कर गयी कि प्यारसीलिपि और देवनागरी लिपि की मूल प्रवृत्ति में भिन्न है। दोनों भाषा भाषियों की उच्चारण प्रकृति में भिन्न है। अब नामची प्रचारिणी द्वारा किया गया यह प्रयत्न सार्थक नहीं है। 'नामी प्रचारिणी सभा हिन्दी में बिन्दी लगाना चाहती है। यह 'बिन्दी' शब्द के ऊपर नहीं नीचे हुआ करेगी। ऐसी बिन्दी लगाने का मतलब यह है कि उमम उर्दू शब्द हिन्दी में शुद्ध मिले पड़े जाय। हिन्दी में नामी 'ज' होगा है, और उर्दू में जीम जान ज और बड़ी जे जबाब और जे—इस

जंग में हम स्पष्ट देखते हैं कि निबन्धकार कवि-सरस सुन्य और स्पष्ट रूप में विषय का प्रतिपादन करता है। अपने कथ्य को कवि स्पष्ट शब्दों में व्यक्त करता है। मृच्छी की लक्ष्य अन्वेषणी दृष्टि प्रस्तावित विषय के पूर्ण परीक्षण कर लेने के परवान् मिश्रण पर पहुँचनी है। समस्या के शीर्षक और सभी विषय का सूक्ष्मांकन के बलु-नरक दृष्टि से करते हुये अपने मन्त्रियों को प्रस्तुत करते हैं। 'उर्' में जीम जास जे और बड़ी जे प्याड धीर जोय होता है। हिन्दी में केवल 'ज' होता है। अतः केवल 'ज' के नीचे किन्ही मयाने से इन मिश्र-मिश्र कर्षों का प्रतिनिधित्व किन् प्रकार हो जावेगा ? इस और लक्ष्य करते हुये मृच्छी ने मयार्थ ही कहा है, 'लज्जत' 'जान' से होती है। काव्यम 'जे' से और उच्चर 'ज्याड' से और बाहिर 'जोय' से। नायकी-प्रचारिणी सभा के कर्तव्य एक किन्ही मयान से सबका उच्चारण गूढ़ हो गया। परन्तु इसमें 'जान' 'ज्याड' और 'जोय' की क्या पहचान रही ? यदि 'ज्याड' 'जोय' का फर्क करना संभव नहीं तो किन्ही मयाने की वकल नहीं थीर यदि उन सबमें कुछ भेद समझा जाता है, तो फिर 'जान' 'ज्याड' 'जोय' की कुछ पहचान रखनी चाहिए। मृच्छ निबन्धकारों० पृ० १५०। ऊपर के उद्धरणमें व्यक्त मृच्छी के निरूपे से हमारा किन्ही प्रकार का मतभेद नहीं हो सकता। भाषा सम्बन्धी निबन्धों में अपनी मान्यता की प्राप्ति के संस्थापन हेतु और लक्ष्यपूर्ण बनाने के लिये निबन्धकार उद्धरण लेनी का नियमित प्रयोग करता है। इस प्रविधा का प्रभाव समीचीनी ढंग पर एक विषय प्रकार से पड़ा है। उद्धरण के प्रति अनिच्छा प्राप्त होती है। जाने व चारों विषय की प्रचलित निधि होने लगनी है और वह नियम-नियमन की कुल्लु बारा से सज्जित भी होन लगता है तथा विषय की प्रचलितता तथा प्रमाणता में परिचित हो जाती है। उदाहरण के लिये 'हिन्दी भाषा की भुवि' घोषक निबन्ध प्रस्तुत किया जा सकता है। इस निबन्ध का आरम्भ (जलने अथ निबन्धों के मयान) निबन्धकार विषय प्रस्तावना के साथ सर्वनामक शब्दों में करना है हिन्दी भाषा के उद्भव और विकास का ऐतिहासिक त्रय भी प्रस्तुत करता है। परन्तु लक्ष्य के विवेचन में त्रिन् उद्धरण का प्रयोग बहु करता है उनके माध्यमसे हिन्दी भाषामें उपलब्ध प्राचीन साहित्य के साथ शीघ्रता सम्बन्धन हो जाता है पर भाषा विवरण विवेचन गौण हो जाता है अतः अन्त निबन्ध के केन्द्रीय भागमें वह गलत दूर चला जाता है। यथा 'हिन्दी भाषा के विकास में अमीर तुगलकी भाषा के योगदान और उनके महत्त्व का वर्णन करने हुए निबन्धकार उनके

वाच्य में उपलब्ध भाव सौन्दर्य की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करता है, परन्तु बुराये की भाषा का हिन्दी के विकास में ऐतिहासिक महत्त्व क्या है, इस विषय पर यह सही है। भावों के आवेग के कारण ही ऐसे स्थलों की सर्जना इन तथ्यपरक निबन्धों में निबन्धकार के लिये एक अनिवार्य आवश्यक बन गयी है। यथा—

जी हाँ मैंने जिसकी मकून लगाफुस

पुरापरनेता बनायबसियाँ

कि ताबे हिजरां न बारम ऐ जां न केहु काहे कगार्ये छतिर्याँ

घबाने हिजरां बराज नू जक्को रोये बसमत बुठम कोताह

ससी पिया की जो मैं न देखूँ तो कैसे काटूँ अंबेरी रसियाँ

यह उद्धरण लेकर निबन्धकार इस प्रकार भाव-सौन्दर्य पर अपने विचार व्यक्त करता है, 'यह बात भी लक्ष्य करने योग्य है कि इस गजल में स्त्री प्रपन्न पिया के विषय का वर्णन करती है। संस्कृत और भाषा के कवियों की यही बात है। वह स्त्री की ओर से अपने पति के विरह की कविता करते हैं। फारसी के कवियों की बात इससे भिन्न है। वह पुरुष का विरह वर्णन करते हैं। वह भी स्त्री के विरह में पागल नहीं होता बरन्व बहुतों किन्ती बालक के विरह में प्रसन्न करता है। गल्प निबन्धावली पृ० ११९

इस प्रकार के अनेक सम्यक् वाचमुकुल गुप्त के निबन्धों में मिल जाते हैं। परन्तु समग्रता और प्रभावान्विति की दृष्टिसे ये निबन्ध अत्यन्त सशक्त हैं कारण भावामक आवेगों के प्रभाव की समाप्ति के पश्चात् निबन्धकार पुनः विचारों के समतल धरातल पर आ जाता है और विषय के मूल में प्रवेश कर पुनः तथ्यों के उद्घाटन की बसबनी चेंप करता है। हिन्दी भाषा के विकास में यह अल्प आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के विकास में के मन्दम में है। उनके स्वतन्त्रधारण में मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाके योगदान का सम्पूर्ण तथ्यों का वर्णन करता है। इस अवसर पर हम पुनः मुन्तजी की इतिहासपूर्ण दृष्टि के प्रति साधारण नत हो जाते हैं कारण जिस युग में मुन्तजी ने निम्नता आरम्भ किया था उस युग के साहित्यिको विशेष कर निबन्धकारों और आलोचकों के सम्मुख उनकी अपनी-अपनी सीमायें और धर्मधन्यायें थी। भाषा की दृष्टि उन्हें उपलब्ध नहीं हो सकी थी और

विषय और थीनी इन दोनों के लिये यह प्रयोगकाम था। प्रयोगकाम की रचनामें अत्यन्त धैर्य और चिन्तित होती है। परन्तु लड़ी-बोसी के उस प्रयोग-काल में ही बालमुकुन्द मुष्ट ने हिन्दी भाषा के विकास पर निबन्ध प्रस्तुत कर 'भाषा के स्वल्प-अध्ययन की वैज्ञानिक प्रणाली का सूत्रपात किया। इस सम्बन्ध में इनका अध्ययन अतिप्रौढ़ तर्क-सम्मत और भाषा विज्ञान के कतिपय मान्य सिद्धान्तों से समर्पित है। हिन्दी भाषा के उद्भव और विकास की खोज करते हुए मुष्टजी उन ध्वनिगत परिवर्तनों का उत्प्रेक्ष्य करते हैं जिनके आधार पर हिन्दी का उद्भव और विकास प्राचीन भारतीय आर्य भाषा और सम्यकालीन भारतीय आर्य भाषा का अवलम्ब ग्रहण करते हुए हुआ है। भाषा ही इससे विकास क्रम में उपलब्ध होनेवाले विदेशी शब्दों के प्रभाव और उनके बोध-राम के महत्त्व पर भी उन्होंने सम्यक्-रूप में विचार किया है। ऊपर दिये गये बल्लभ की प्रामाणिकता-हेतु हिन्दी भाषा' शीर्षक निबन्ध में एक संक्षेप यही दिया जा रहा है 'पृथ्वीराज राठौ' में पृथ्वीराज की बीरता का कीर्तन है। उनके पढ़ने से बिचल होना है कि उस समय की हिन्दी भाषा बड़ी विविध थी। इससे पर आश्चर्य की बात यह है कि अरबी पत्रपत्रों के द्वारा उसमें बहुतोत्पन्न में जुने हुए हैं—अबदाहरण की भाषि चन्द की कविता में से कुछ टुकड़े उद्धृत किये जाते हैं—

भाष कोम को दुर्ग है तापर अलत 'मयास' ।

सो देसी भीरों तहाँ तन में ऊड़ी म्यान ।

जिसे दून मल बंध लेर पंतीस जु हाथकर,

अन नवरा बहि माय बली एक मोले बकर ।

'मुब' 'मोय' जात 'अनबक' मान भीरों प्रपान

जुनि पुत्र धाम

बासीस दून दिन पीठ धाम बासीस दून जर

बष्ट मान ।

मुष्ट निबन्धावली पृ० ११५

इस प्रकार का उद्गार देने के पश्चात् निबन्धकार भाषा में जाये हुए शब्दों का वर्गीकरण करने का प्रयत्न करता है—जहाँ 'मयास' 'मोय' 'मुनपान' बाकूब आदि फारसी के हैं और उनका मुरी का शब्द है। ११०

निबन्धकार इस प्रकार के बल्लभ में ही विषय का समाधान नहीं करता परितु विवेचन और वर्गीकरण प्रणाली द्वारा लब्धोक्ति अनावश्यक प्रयत्न भी करता है।

विस्फेपण की इस विधा से वस्तुका संक्षिप्त और सम्यक रूप-विधान होता चलता है। 'पुष्पीराज राघो' के भाषा-स्वरूप का विस्फेपण और वर्गीकरण करते हुए निबन्धकार, उस युग में प्रचलित काव्य-भाषा के स्वरूप का भाषा के स्तरों का परिचय देकर भाषा के स्वरूप अध्ययन की एक विधिष्ट परम्परा वैज्ञानिक प्रणाली की स्थापना करता है। यथा 'उसकी भाषा में तीन प्रकार के नमूने मिलते हैं। एक संस्कृत के ढंग की भाषा जो पढ़ने में संस्कृत ही सी भासूम पड़ती है, पर धसुख है और उसमें हिन्दी मिली हुई है। यथा—

स्वस्ति श्री राजवंश राजन वरं धर्माणि धर्मं बुद्ध ।

इन्द्रप्रस्थ मुद्रा इव समर्थ राजं सुरं बसेते ।

अरदासं तत्तारखान किशियं मुस्तान मोक्ष करं ।

पुम बहु बड़ाइ राजन सुरं राजाशिपोराजन । पु० नि० ११८

इस प्रकार के उद्धरण देने के बाद निबन्धकार व्यक्तिगत लिप्युत्थी द्वारा अपन कथनको प्रत्यधिक बोधगम्य और सरल बनाने का प्रयत्न करता है। यथा 'अजंशानको अरदास बनाकर संस्कृत करने के लिये अरदास कर किया है। दूसरी प्राकृत ढंग की भाषा है। उसमें धम्म कम्म धारि सम्म है। दूसरी भाषाओं के शब्द भी इसी शब्दों में ढालकर उक्त भाषा में मिला लिये गये हैं। उदाहरण को उदाहरण कमान को कम्मान सुस्तान को मुरस्तान कवच को कवच बना डाला। तीसरा नमूना सरल भाषा का है। वह जब भाषा में बहुत मिलती जुलती है वही सरल स्वच्छ और सरल होकर मुझ राजभाषा बनी होगी । पु० ११९

उन्नीसवीं सताब्दी के अन्तिम चरण और बीसवीं सताब्दी के आरम्भिक वर्षों में 'वैज्ञानिक भाषा विज्ञान' की परम्परा का चिन्ताम्याग हुआ। इस चिन्ता-म्याम में पारचात्य विद्वानों विघटकर पितृव्य ज्युम्म अज्ञान केसाक भीम्म हार्नके आदि भाषा वैज्ञानिक के प्रयत्न महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। परन्तु गुप्तजी द्वारा हिन्दी भाषा के स्वरूप-अध्ययन और विस्फेपण इन भाषा वैज्ञानिकों के प्रयत्नों (अपनी सीमा में) के समान ही महत्वपूर्ण हैं। मैं इस माल की ओर हिन्दी भाषा विज्ञान के सम्बन्धियों का ध्यान आकर्षित करना चाहता हूँ। हिन्दी भाषा से सम्बन्धित गुप्तजी के निबन्धों का उचित मूल्यांकन अपेक्षित है।

हमारे देश की राष्ट्रभाषा हिन्दी ही हो सकती है इस प्रकार का मत व्यक्त करते हुये अपने 'साठ की राष्ट्र भाषा' शीर्षक निबन्धमें गुप्तजीने हिन्दी भाषा के स्वल्प और महत्व का मूल्यांकन राष्ट्रीय सम्पर्क में किया है। अपने मूल्यांकन में गुप्तजी ने हिन्दी के प्रतिरिक्त अन्य आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के महत्व की भी चर्चा की है। राष्ट्रीय एकता के निर्माण में अन्य प्रादेशिक भाषाएँ हिन्दी भाषा के समान ही महत्वपूर्ण हैं। मगर उन्होंने हिन्दी भाषा भाषियों को इन प्रादेशिक भाषाओं के प्रति आकर्षित होने और इनके प्रति आस्थावान होने का आग्रह किया है। प्रयास में बंगला भाषा में निबन्धने वाले 'प्रवासी' पत्र के सम्पादक ने यह कहा था कि भारत की एकता के निर्माण में भारतीय विभिन्न-विभिन्न प्रादेशिक भाषाएँ महत्वपूर्ण योग देने की क्षमता रखती हैं। यद्यपि आस्थावान इन बातों की है कि इन भाषाओं में सर्वत्र स्थापित किया जाए और यह सम्भव है देवनागरी लिपि के माध्यम से सम्भव है 'बंगला हिन्दी देवनागरी लिपि के माध्यम से एक पत्र निकले तो कैसा हो ? चारों भाषाओं अलग-अलग रहें मगर केवल देवनागरी हो' बुजबुली और मराठी हिन्दी के अलग भाषा की देवनागरी है। बगदा है केवल बंगाली अक्षरों के लिए। पर इस पत्र में बंगला अक्षरों की अपह देवनागरी अक्षर रहें तो क्या कुछ शिरोवृत्ति होगी। गुप्तजी ने इस प्रस्ताव का समर्थन करते हुये इन चर्चों में अपनी प्रमत्तता व्यक्त की 'हय हमरा अनुमोदन करत है निरवय ही अब भाषाएँ एक ही अक्षरों में एक पत्र में छपेंगी तो धीरे-धीरे वह बहुत मिल-जुल आवेगी' उक्त पत्र ने पाठक भी चारों भाषाओं के जानने सीगने की चेष्टा करेंगे। मजबूत भारतवर्ष के लिये एक दिन ध्यारी भाषा की बहुत जरूरत है। भारतवासियों के नाम हम सत्य कोई ऐसी भाषा नहीं है जिसमें सब प्राणों के लोप नाने कर सकें। पृ० १५८

गुप्तजी की चेष्टा का दर्शनी थी। देश के जन-जन के राष्ट्रीय भावना का स्फुरण उनमें व्याप्त आकर्षित एकता और विभिन्न की एकता के कारण ही सम्भव है। मगर एकता भाषा के माध्यम से ही सम्भव हो सकती है। अब आश्चर्यजनक इस बात की है कि देश की एक भाषा हो और देश की विभिन्न-विभिन्न भाषाओं की निज देवनागरी हो। गुप्तजी की धारणा है कि यूरोप में यदि अलग भाषाएँ बोली जाती हैं परन्तु अलग-अलग देशों के निवासी होने पर भी यूरोप-निवासियों से नहीं है। यद्यपि हमारे लिये यह धोखा है कि हम भारत की भाषा के रूप में हिन्दी और

उगड़ी लिपि नागरी को अवलम्ब स्वीकार करें, यूरोप में १९ देश हैं। सब की भाषा प्रायः अलग अलग है पर अक्षर एक है। जिन अक्षरों में अंग्रेजी किसी जाती है उन्हीं में फ़ारसीसी और जर्मन आदि भाषायें भी किसी जाती हैं स्वीडिश और इटली की भाषायें भी इन्हीं अक्षरों में किसी जाती हैं पर भारतीयों के अक्षरों की विभिन्न गति है यही भाषा एक होने पर भी अक्षरों की गति निरासी है। देवनागरी अक्षर 'मारतमित्र' १८०२ अमाना (अग्रेत-मई १९०७) में हिन्दुस्तान में एक 'रस्मूय अक्षर' शीर्षक अपने निबन्ध में इस विचारचार को धार्मिक विस्तार के साथ प्रतिपादित किया है इस निबन्ध से हमें कई आश्चर्य सूचनायें भी मिलती हैं।^१ अस्टिस छारदाचरण मित्र ने १९०५ में अंग्रेजी की पत्रिका 'हिन्दुस्तान रिव्यू' में भारत की भाषाओं के लिये देवनागरी लिपि के स्वीकार किये जाने का आग्रह करते हुए एक निबन्ध लिखा था (यह निबन्ध कलकत्ता विश्वविद्यालय के डिप्टी और सिन्डीकेट के सामने पड़ा भी गया था। उस सभा में सर मुकेशच भी थे और उन्होंने तादाचरण मित्र के विचार का समर्थन किया था)।^२ इस निबन्ध की प्रेरणा से कलकत्ते में 'एक लिपि विस्तार परिषद्' की स्थापना हुई (विभुजानन्द सरस्वती विद्यालय के प्रिन्सपल पण्डित उमापति दत्त शर्मा इसके सिकटरी और महामहोपाध्याय मनीषचन्द्र विद्याभूषण एम० ए० इसके असिस्टेंट सिकटरी हुये)।^३ इस परिषद् ने 'देवनागर' नामक मासिक पत्र का प्रकाशन आरम्भ किया। इनमें हिन्दी बंगला मराठी गुजराती संसू उड़िया तामिल आदि भाषाओं के लेखकों की रचनायें प्रकाशित होती थी। परन्तु इन समस्त भाषाओं की रचनाओं के लिये देवनागरी लिपि का प्रयोग किया गया। ४ २६ दिसम्बर सन् १९०५ ई० को बनारस में 'नागरी प्रचारिणी सभा' की धार में एक सभा हुई जिसमें भारत की समस्त भाषाओं के लिये देवनागरी लिपि के स्वीकार किये जाने का आग्रह किया गया। इस सभा के समापति से भी समसचन्द्र दत्त सी आदौ० ई०। इसी समय बंगाल में लिपि-सम्बन्धी एक अन्य आन्दोलन चलाने की चेष्टा की जा रही थी। इस आन्दोलन के समर्थक भारत की भाषाओं के लिये 'रोमन लिपि' का समर्थन कर रहे थे परन्तु यह आन्दोलन अधिक दिनों तक जीवित नहीं रह सका। भाषा और

१ हिन्दुस्तान में एक लिपि

२ देसिये—हिन्दुस्तान में एक रस्मूलसत—शीर्षक निबन्ध—बासमुकुन्द गुप्त निबन्धावली—प्रथम भाग पृ० १६७

सिनि-सम्बन्धी इन विचारों से हमें एक प्रकार की प्रेरणा और उत्साह मिलता है। 'हिन्दी राष्ट्रभाषा' और 'बेवनाशी लिपि' को लेकर आज देश में जो विरोधी आन्दोलन चल रहा है उसकी सार्थकता का सन्देह ऊपर की पंक्तियों में कुछ गये विश्लेषण से हो जाता है। बालमुकुन्द मुष्ट ने अपने भाषा-सम्बन्धी निबन्धों में जिन तथ्यों और वित्तिष्ठ घटनाओं का उल्लेख किया है, उनसे हमें ज्ञात होता है कि हिन्दी भाषा आधुनिक भारत की राष्ट्रीय भाषा के साथ सम्बन्ध है। ये निबन्ध हमारे सम्मुख एक युग विषय को मुखरित कर देते हैं उस युग का जिनमें देश छत्रियों की पराधीनता से मुक्त होने की बलवती प्रेरणा से व्यक्ति संघर्ष कर रहा था उस युग का जिसमें एक वर्ग विषय हिन्दी भाषा के माध्यम से ही राष्ट्र-संघटन की परिकल्पना कर हिन्दी के विकास और प्रसार की चेष्टा में विविध विद्याओं से उत्पन्न-संचय कर रहा था। इस वर्ग के विद्वानों में जिन प्रकार की भावना बाध कर रही थी उसका परित्यक्त निम्नलिखित उद्धरण से पता चलता है—'योंकि कीमियत सवार करने के लिये एक जुबान का होना लाजमी है। एक जुबान होने के पूर्वज 'ही भार अपन व्यापार बुनरी पर जाहिर कर सकत है। मनुजी ने भी कहा है कि हर एक बीबा हम्म' जबान ही से होता है। बस अगर कीमती एक भाषे में भाषना है तो पहिले उसके लिये एक जुबान पैदा करो।'

पीछे बालमुकुन्द मुष्ट के 'भाषा की अनस्थिरता' दीर्घक निबन्ध का उल्लेख किया जा चुका है। इस सम्बन्ध में यह भी कहा गया है कि आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' मसम्बर १९०५ भाग ९ संख्या ११ में 'भाषा और व्याकरण दीर्घक एक लेख लिखा। इस लेख में द्विवेदी जी ने भारतीय इतिहास छात्राध्यक्ष प्रसाद' लिखते हिन्दू तथा बालकृष्ण भट्ट आदि की भाषाओं में अनस्थिरता बतानी बर्न किया तब तथा विद्वान सम्बन्धी दोनों की और संबंध करते हुये लिखा 'भाषा की अनस्थिरता प्राप्त हो गई है। 'अनस्थिरता अत्युक्त शब्द है इसका अर्थ यह है अनिश्चयता। मुष्टजी ने इस शब्द का आकार प्रत्यक्ष करते हुये आचार्य के नाम में इस निबन्ध लिख जिनमें द्विवेदी जी की रचनाओं में उपलब्ध होय वाली भाषा-सम्बन्धी पुस्तिका का निर्देश करत हुये मुष्टजी ने द्विवेदी जी की भाषा की आलोचना की। इस इन निबन्धों के अनिश्चित इन्होंने आचार्यजीय लिपि (१) अनस्थिरता और आचार्यजीय लिपि (२) 'अने तीर पर दो निबन्ध लिखे।

गुप्तजी के ये निबन्ध व्याख्यात्मक आलोचनात्मक और तार्किक शैलियों में लिखे गये हैं। व्याख्यात्मक षोडश में निबन्धकार अपने विषय की व्याख्या करता है। इस व्याख्यात्मक षोडश में प्रायः एक व्याख्यात्मक भूमिका भी संलग्न रहती है जिसके साथ विमोह का संघर्ष भी रहता है। यथा 'जो सोप' है समझते थे कि हिन्दी भाषा एक बम आधारित है कोई उसका मुखौटा या सर धरस्त नहीं है वह यह सब सुन कर पुछ होंगे कि वास्तव में उक्त भाषा माठा-पिठा बिहीन नहीं है। पत नवम्बर मास की सरस्वती को देखने से विन्तित होता है कि उक्त पत्रिका के सम्पादक पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी हिन्दी भाषा के संरक्षक या बारिम दोनों में से कुछ एक हुये हैं। ग्राम पाठशाला के मुख्मी की भाँति द्विवेदी जी ने 'क' 'ख' 'ग' से ही अपना लेख आरम्भ किया है—बड़ी सरलता से आप कहमाते हैं—'मन में जो भाव उदित होते हैं वे भाषा की सहायता से दूसरों पर प्रकट किये जाते हैं। मन की बातों को प्रकट करने का प्रधान उपाय भाषा है' 'क्या कहाइये हिन्दी समझने की जगह आपने की है बाह ! बाह ! आप न समझते तो यह मुझ विषय कौन समझकर हिन्दी साहित्य का उपकार करता। तबमुक्त जिस भाषा के ठेकेदार आप जैसे बर घमण्डी हों उस घमापी का बिनास ही होना है ? हम देखते हैं कि गुप्तजी महावीर प्रसाद द्विवेदी के निबन्धों से उद्धरण देकर उन पर आलोचना-प्रत्यालोचना करते हुये उन पर 'क्या' 'बाह' 'बाह' 'कम्य हो' 'क्या कहना' आदि शब्दों में व्यंग्य करते हैं। प्रतापनाथयन मिश्र के निबन्धों में भी इसी प्रकार की कटुव्यक्तिता और व्यक्तित्वत आलोचन पूर्ण शैली का प्रयोग मिलता है। वास्तविकता यह है द्विवेदी गुन के आलोचकों और निबन्धकारों ने इन शैली का प्रयोग अति मुक्त रूप से किया है।'

वासुदेव गुप्त महावीरप्रसाद द्विवेदी द्वारा प्रमुक्त अनुद शब्दों और व्याकरण रूपों को उद्धरण-रूप में प्रस्तुत कर उनके गुण रूपों की प्रस्तावना करते हैं। परन्तु इसके साथ ही साथ उनके व्यक्तित्व का उपहास भी करते हैं। उदाहरण

१. तुम्हारी साक्षिक जी महाराज उद्यर तो आपने व्यर्थ ही सर उठाया है। वह आपकी समझ से बहुत दूर की बात है। वहाँ आपके लिये अंगूर सड़ है आवाज पड़े आवाज आसिरकार श्रीमती एलीनोरी जी के एक वक्ता तो ऐसा निबन्ध लिखने परा चेंबे शुरू किया—साहित्य समालोचक—संवत् १९५३ हिमन्त शंक

विषय-यस भीष हो जाता है और व्यक्तिगत भावों की भावना प्रभावता बारीक कर देती है। इस प्रणामी के अन्तर्गत वे पहले द्विवेदी की के निबन्ध से एक मंच उभूत करते हैं—'मनुष्य और पशु-पक्षी आदि की उन्नत वैद्य-कात-यनस्या और शरीर-बन्धन के अनुसार जुदा-जुदा होती है। इस धर्म में प्रमुख 'उन्न' और 'है' शब्दों के प्रयोग पर गुप्तजी आपत्ति प्रकट करते हैं। उनका कथन है कि 'उन्न' के स्थान पर 'उन्न' और 'है' के स्थान पर 'है' चाहिये। परन्तु इस रूप में न कह कर वे इन प्रकार कहते हैं 'कोई बुद्धे जनाब व्याकरण और साहस उन्न जना-जुदा होती है वा उन्न जना-जुदा होती है ? जना-जुदा होती है कि मनुष्यिक होती है ? एक बार सिद्धान्तोक्त तो कीजिये क्या, अपनी कथाइये हिन्दी में लिखाकर तो बोलिये कीन ली बात ठीक है ? ४५५। इसी प्रकार महावीरप्रसाद द्विवेदी का एक वाक्य है मन में जो भाव उन्न होते हैं वे भाषा की सहायता से दूसरों पर प्रकट किये जाते हैं इस कथन पर गुप्तजी अपना अविमल इन शब्दों में बोलते हैं—'जहाँ जनाब भाषा की सहायता से मन के भाव दूसरों पर प्रकट किये जाते हैं या भाषा से ? भाषा टीकों की सहायता से बनते हैं या टीकों से ? भाषा की सहायता से बनते हैं वा भाषा से सहायता प्रयाद द्विवेदी के वाक्यों को उद्धृत करते हुए वे कोष्ठकों में अपने वस्तुओं को रख कर उन पर टिप्पणी भी करते हैं उन पर पछिास करते हैं—'यहाँ हय व्याकरण विरुद्ध हिन्दी रचना के दा भार उदाहरण देना चाहते हैं (माहक कट्ट करते हैं भाषा पुच मेर ही उत्तरा उदाहरण है।) पर जिनकी रचना के उदाहरण है (कीन में प्रमु धमी लो पेट ही में विद्यमान है। वह 'वे' वहाँ कहा जमाना चाहता है)। ५० ४५१— इस प्रकार के जमी-जमी नीबन्ध लहरमना तथा पिच्छता का ध्यान नहीं रखने ह। परन्तु इन निबन्धों में अनेक स्थलों पर हास्य और व्यंग्य का निर्विनाशिक स्वरूप भी उल्लेख होने है। इस प्रकार स प्रमुख हास्य और व्यंग्य प्रभावकारक हैं इनमें व्यंग्य अति नाविरिक और सूक्ष्म होता है।

महावीर प्रसाद द्विवेदी न अपने वक्तव्य में हर्बर्ट स्पेन्सर का उल्लेख किया है। उन उल्लेख का अर्थ देने हुए गुप्तजी न इन प्रकार व्यंग्य किया है हर्बर्ट स्पेन्सर न ध्यान System of Philosophy के आरम्भ में विज्ञान के दो विभाग किये हैं—The unknowable The knowable उनी प्रकार द्विवेदीजी ने भाषा और नितामयी के दो विभाग किये हैं—अनविचारना और 'स्पर्शा', 'अन' हर्बर्ट स्पेन्सर के वहाँ भी है और द्विवेदीजी

के यही भी। हरमन स्मेर के Education में हमें Unorganizable धर मिला। यह भी द्वितीयी की अनस्थिरता कुंडमका है। Unthought uncivilised आदि शब्दों में द्वितीयी महाराज का 'अन' मौजूद है। 'माया की अनस्थिरता' दीर्घक निबन्ध में दो प्रकार की सीतियों के वर्णन होते हैं। प्रथम गणेशनात्मक सीती जिसमें बाह-विवाद नहीं है और इसमें कलन तथा वक्तव्यों की पुष्टि के लिये पर्याप्त प्रमाण संश्लिष्ट किये गये हैं। द्वितीय प्रकार की सीती चिन्तनात्मक है और इसके अनिकांश अंश बाह-विवादात्मक है। इसमें अपनी बात की पुष्टि और विपक्षियों की मांगलाओं के लक्षणों के लिये तर्कों का सहारा लिया गया है। वस्तुतः ये निबन्ध शास्त्रार्थ पद्धति में लिखे गये हैं। साथ ही साथ इनमें व्यंग्य और हास्य का पूर्ण विकसित रूप भी देखने को मिल जाता है। लक्षणा और व्यञ्जना से यह सीती पुष्ट है।

महावीर प्रसाद द्वितीय और बासमुकुन्द गुप्त के मध्य बसने वाले बाह-विवादों का चरमोच्च बिन्दु-बिन्दु से नीचे उतर कर व्यक्तिगत पदा पर आ गया था। कल्पवृक्ष इन दोनों के प्रमाण और साधना से विकसित और परिपक्व होने वाले भावा-स्वरूप को आंशिक रूप से आजात भी करा। इनके युग का साहित्यिक वातावरण अत्यन्त विद्युत्प्रभ हो उठा था और साहित्य सर्जना की प्रवृत्ति विगुंनसिद्ध भी होने लगी थी।

विषय की दृष्टि से बासमुकुन्द गुप्त के निबन्धों का तृतीय वर्ष समीक्षात्मक निबन्धों का है, जिनमें 'हिन्दी में आलोचना 'अधुमती नाटक' 'गुप्तसीमुवाकर' 'प्रवासी की आलोचना' 'साध उपन्यास' 'मुसलमान हिन्दू' 'कविता पर कविता' 'शेष का अर्थ' 'तेइसवाँ वर्ष दीर्घक लेख विशेष महत्त्व के हैं। इन निबन्धों के माध्यम से गुप्तजी ने अपने युग में आलोचना और आलोचनात्मक निबन्ध-लेखन की वैज्ञानिक-विद्या का शिक्षाप्रदा किया। इन में विषय का प्रतिपादन अनि सांकेतिक परन्तु स्पष्ट रूप में हुआ। इन निबन्धों में यह भी प्रमाणित होता है कि बासमुकुन्द गुप्त अपने युग की साहित्यिक गति-विधि से पूर्णतः परिचित थे और हम यह भी देखते हैं कि वे एक सबसे और निपट आलोचना की प्रवृत्ति से परिचित थे। वे प्रार्थना और पर्याप्त के नरक्षण में पूर्ण विश्वास रखते थे। गुप्तजी के इन निबन्धों से उनके आलोचनात्मक निबन्धों का भी निगमन किया है।

आलोचनात्मक निबन्धों में भी गुप्तजी की दृष्टि तथ्य-व्यवस्था ही रही है और आलोचना में आलोच्य विषय के वैज्ञानिक भाव या वैध्य के उत्पादन में ही वे

संघेष्ट रहे हैं। समस्त रूप इन आलोचनात्मक विवरणों का बातावरण प्रति सजीव और बोधमय है। और उनके साथ हम प्रति सहज रूप में आत्मन्य स्थापित कर लेते हैं। इनमें निबन्धकार की आलोचना शिक्षाओं और विमल दृष्टि के प्रति स्वच्छ स्वयं उपलब्ध होते हैं। इनसे यह भी विनिर्मुक्त होता है कि मुक्त की एक संघेष्ट आलोचक के दायित्वों से पूर्ण रूप से परिचित है। उनके युग में आलोचना की साम्य-प्रणाली बहुत, स्वयं वैज्ञानिक और व्यापक नहीं थी। कृतियों के मुख्य-बोध विवरण की अपेक्षा कृतिकारों के जीवन के व्यक्तिगत पक्ष के विविध कर्णों का उद्घाटन ही आलोचना का उद्देश्य बनता जा रहा था। आलोचना का घरे कृतिकार के व्यक्तिगत की निम्न अवस्था प्रकट बन गया था। उस युग में आलोचना का क्या स्वयं था इसका परिचय युज्जनी के इस कथन से मिल जाता है 'आलोचना की ऐसी घसी हिन्दी में अभी-अभी जारी नहीं हुई है और मैं लोग इसकी आवश्यकता को ही ठीक समझते हैं। इससे लोग आलोचना देखकर पकरा जाते हैं और बहुतों को बहुत अभिमान लगती है, यहाँ तक कि जो लोग स्वयं हम मैदान में कदम बढ़ाते हैं घसी आलोचना होते देख बड़ी मुर्क हो जाते हैं।

इसी सम्बन्ध में युज्जनी आगे आलोचक के दायित्व की चर्चा और संकेत करते हुए कहते हैं आलोचक में केवल बुद्धि ही आलोचना करने का साहज ही नहीं होना चाहिए बरन्व अपनी आलोचना दूसरों से सुनने और उनकी तीव्रता महने की हिम्मत होनी चाहिए। जिस प्रकार वह समझता है कि ये-ही बातों को दूसरे ध्यान में सुनें उसी प्रकार उस स्वयं भी दूसरों की बातें बड़ी धीरमा और निराला से सुनना चाहिए। बालमुकुन्द युक्त स्वरण प्रम १०१३१। हम प्रकार युज्जनी आलोचना में समुच्च के प्रति आहूत व्यक्तियाँ हैं आलोचक का महवर्तम्य है कि वह समुच्चिष्ट और उत्सवहोकर आलोच्यविषयके मुकुण्डीर रोग का निःपेक्ष करे, उनका उचित निर्देवकरे। हम मरुर्जन युज्जनी की आलोचना सम्बन्धी माग्यता को जमजमे के विषे उनका एक अव्य वक्तव्य यहाँ घरेलिन लगता है। भारतमिन का जन्मा एक आता ही का नहीं यह हिन्दी बागों का है। मरु यह सब हिन्दीबागों का जवाह बहान की विष्ण रिषा करना है जिन्दीबागों का बराबर सरकदार रहना है। वक्तव्य इनका अव्य करना है कि जो बोधी उसे बुरी भीति और जम्पना के विरुद्ध जम्पनी या जिस बोधी ने वह जिम्मुषी की हानि दलना है उनके बगाने बागे को टाक देना है जिसम यह बीना करने से बाज रहू। { १००५ बागी के आत्म जीवन के जम्पारक समुह्यता बागी के वक्तव्य का एक घरेल }।

आलोचना का प्रमुख धर्म होता है नवभेषज की प्रोत्साहन देना साथ ही साथ नवभेषज के नाम पर जानत होने वाली अराजकता का नियंत्रण भी करना । अपने सुयोग साहित्यिक नवभेषज को लेकर विकसित होने वाली प्रतिभाओं के विकास में गुप्तजी ने अपना सक्षम सहयोग दिया साथ ही साथ नवभेषज के विकृत प्रतिष्ठावादी शक्तियों का गुप्तजी ने विरोध भी किया । अपनी आलोचना के माध्यम से अपने सम्पादकीय लेखों से गुप्तजी ने नवीन लेखकों की रचनाओं का प्रचार और प्रसार भी किया । इस प्रकार गुप्तजी अपने आप में एक संस्था बन गये थे । इस संदर्भ में हमें धीवर पाठक का स्मरण हो जाता है । धीवर पाठक ने 'गोख स्मिथ' के 'हरमिट' और 'डेक्लेट विसेज' का अनुवाद किया था । यह अनुवाद इस युग की एक विशेष उपलब्धि था जिसमें अनुवादक की मौलिक प्रतिभा भी दर्शनीय थी । हिन्दी में ज्ञान के पूर्व ही गुप्तजी ने उर्दू 'कोहेनूर' में इन कृतियों पर परिचयात्मक और आलोचनात्मक निबन्ध लिखे । अपने निबन्धों में इन्होंने धीवर पाठक की प्रतिभा की प्रशंसा की साथ ही साथ उर्दू वालों के सम्मुख हिन्दी भाषा की शक्ति और समता का उद्घाटन भी किया । इस प्रकार धीवर पाठक को काव्य सर्जनता की नवीन प्रेरणा भी मिली । 'कोहेनूर' में गुप्तजी ने धीवरपाठक के विषयमें जो कुछ लिखा उसमें एक अंश यही उद्धृत किया जा रहा है । इस अंश में ऊपर दिये कये वस्तुत्व का स्पष्टीकरण हो जायेगा 'पण्डित धीवरपाठक साहब इनाहादाजी जिन्होंने साम्बुजीप्ता में गोखस्मिथ के 'हरमिट' का तर्जुमा हिन्दी में किया था और जिसका रिप्सू वर्ज कोहेनूर में हुआ था इस साल उन्होंने उनी बिनायन के मछहर सावर गोखस्मिथ की एक आत्मा बर्ज की एक मछहर मध्य डेक्लेट विसेज का तर्जुमा की हिन्दी जाता बर्ज की पीठी है । गुरुजी यह की लफज ब लफज तर्जुमा उबइशामक नामने दिया है तर्जुमा है और फिर इतना साफ है कि अगर समस्त स्थाव की मूब मूर्तगी देगी जाय तो इससे ज्यादा मही है और अगर धीवरजी अपने ही गमासान को बया करने तो भी इसमें उम्मा न कर सकते । इस प्रकार की आलोचना से धीवर पाठक को कितनी शक्ति मिली होगी इसकी अनुपम हम स्वतः कर सकते हैं ।

ग्रन्थ युग में साहित्य के अर्थ में (धीर जीवन के ग्रन्थ सन्दर्भ में) को प्रकार की प्रतिभा होती है । प्रथम की प्रतिभा मौलिक होती है । इस

प्रकार की प्रतिभा से किसी युग-विशेषकी साहित्यिक प्रक्रिया का मूल्यांकन होता है। विपरीत कोटि की प्रतिभा यद्यपि मौलिक नहीं होती परन्तु मौलिक प्रतिभा की छाया में निगदीय होने के कारण हमसे सज्जित साहित्य का भी स्थायी महत्त्व होता है। इनके अतिरिक्त तुहापसोन्नि के रचनाकार भी होत हैं (सम्भवतः इसकी संख्या बति व्यापक होती है)। और इन कोटिके रचनाकार दूसरों की कृतियोंका अनुकरण ही नहीं करते बरितु दूसरों की रचनाओं को अपने नाम से प्रसारित करनेमें भी संकोच नहीं करते और यम प्राप्ति की परीक्षिका के पीछे लाकार्यित रहने के कारण असमर्थित व्यवहार भी करते हैं। कामसुबुद्ध युग के युग का साहित्यिक वातावरण भी इन दोष के युक्त नहीं था। गुप्तजी ने इस प्रणाली का साहित्यिक बोरी को वृत्तित मानने हूँ, इस प्रवृत्ति की निम्ना ही नहीं की बरितु इस प्रवृत्ति पर यत्नबर्धन करनेवाले साहित्यिकों पर कठोरतम आघात किया। और इन वृत्ति से साहित्य के बानावरण की मुक्त करने का निरन्तर प्रयत्न किया। इस तथ्य पर विचार करते समय गुप्तजी के 'कविता पर कविता' दीर्घक निबन्ध का उल्लेख आवश्यक प्रतीत होता है। इस निबन्ध में गुप्तजी ने पटना निवासी मुनीशजी विरचित 'ऊबड़ गोब' 'छप्पु तथा कभी नामक रचनाओं की आलोचना की है। व रचनामें मुनीशजी ने सन् १८९९ ई० में गुप्तजी के नाम समालोचनाप भेजी थी। ये कृतियाँ थीपर पाठक की कृतियों की अनुवृत्ति थी। गुप्तजी ने मुनीशजी के इस आवरण की निन्दा की। उन्होंने बाठरजी और मुनीशजी की कृतियों का तुलनात्मक अध्ययन किया और मुनीशजी के व्यवहार को स्वल्प और प्रयत्नयोग्य नहीं माना। एक ही बति क दो भिन्न-भिन्न अनुवाद हो करने हैं परन्तु अनुवाची की छान-बीजना बाब भूमि छान और माया में एकरत्ता सम्भव नहीं। अतः इस प्रवृत्तिकी निन्दा करने हुए उन्होंने किया हमनेदेगा कि मुनीशजी की दोनो पुस्तकें पाण्डुरी की पुस्तकोंकी सही प्रक्रम के निवाय और कुछ बर्त है। कथन क्या एक बात थी है? रंग में रंग में छप्पु में—नर में नरन ही प्रक्रम भीबूट है। यदि श्याम से देगा बाप तो मुनीशजी ने छप्पु कविता के करन शीघ्र कथन नहीं किया।

भारतविष—अवगत १८९९। इसी प्रसंग में गुप्तजी ने छात्र जो वृत्त निगा है उसने उनकी आलोचना के स्वतन्त्र उद्भव का राष्ट्रीयकरण हो जाता है हम चाहते हैं कि हमारे देश के सुप्रगढ़ और कवि दूसरे देश के सुप्रगढ़ और कवि के बूटे पर पिरने की मान्य पाई। इस मुनीशजी की अग्रा कवि

समझते हैं। उनमें घण्टे घण्ट बसाने की शक्ति है यह भी मानते हैं। इसीसे हमने उनको इतना मिला। यदि वह अपनी पुस्तकों की भूमिका में भीषरजी पाठक की पुस्तकों की कुछ बात कह जाते तो भी उनपर इतना दोष न रहता।”

हम स्पष्ट देखते हैं कि गुप्तजी की आलोचना सम्बन्धी माय्यता अति व्यापक स्वस्थ और सूचनात्मक थी। जीवन के प्रति आस्थानान होने के कारण वे सदामानना और उच्चविचारों को ही साहित्य का मापदण्ड मानते रहे हैं। जिन कृतिकारों की रचनाओं में इन तथ्यों की छबहेकना या उपेक्षा की गई उन्हें गुप्तजी अपना समर्जन नहीं दे सके। गुप्तजी रचना से अधिक रचनाकार के मानसिक संकल्प और संस्कार को महत्त्वपूर्ण समझते थे और साहित्यिक कृतियों में परम्परा संस्कार और आदर्श का संरक्षण उनका प्रधान धर्म मानते थे। रचनाकार के समान ही आलोचक का भी एक मानसिक संकल्प और संस्कार होना चाहिये अन्यथा वह रचनाकार की रचना विशेष के साथ आशय्य स्थापित नहीं कर सकता। गुप्तजी ने इस तथ्य को एक स्वयं-निष्ठान्त के रूप में स्वीकार किया था यही कारण है कि अपने युग की साहित्य-धारा के मार्ग को प्रशस्त करते उसके गन्तव्य-निर्देशन एवं दिग्दर्शन में वे सफल हो सके थे। जीवन का स्वरूप परिवर्तित होता है यूमनि माय्यताओं परिवर्तित होती हैं, और युग-धर्म भी बदलता रहता है परन्तु जीवन का सत्य अपरिवर्तित रहता है सत्य आवृत्त हो सकता है समाप्त नहीं होता है मरता नहीं है साहित्यकार के व्यवहेजन में उनका युग अपने सम्पूर्ण रूप में विद्यमान रहता है। युग की सूचनात्मक और विमोचक शक्तियों के संघर्ष दिया प्रतिशिया के स्वरूप रचनाकार के चिन्तन और भावसौक पर प्रसरित रहते हैं और रचना-प्रक्रिया को अत्यन्त सक्रियताशी रूप में प्रभावित भी करते हैं परन्तु रचनाकार का धर्म होता है उनको अहमसाग करता हुआ वह सत्य का अनावरण करे। साहित्यकार का दायित्व अपरिमेय है उसकी चेतना को समझना व्यष्टि की अपेक्षा समष्टि के लिये है। साहित्य मानसिक विज्ञान और उपमीन की वस्तु नहीं है। हम व्यक्तिवादी साहित्य को उच्च स्थाप नहीं दे सकते। अपने आलोचनात्मक निबन्धों में कृति विशेष की आलोचना करते हुये या विचार विशेष की आलोचना करते हुए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में आत्ममुग्ध गुण इन्हीं माय्यताओं से आवृत्त रहे हैं। इन कृत्तियों से बिने गये प्रत्येक प्रधान के प्रति गुप्तजी अज्ञा से नत हुये हैं।

इसभाकता स संभासित साहित्यिक आन्दोलनों की गुप्तजी ने अपना समर्थन दिया है और इससे निपटीत की चिन्तन-मारा और रचनात्मक प्रक्रिया पर गुप्तजी ने निर्मम होकर प्रहार किया है।

सन् १९११ में 'भारतमित्र' में गुप्तजी का 'तेईसवाँ वर्ष' शीर्षक निबंध प्रकाशित हुआ। इस निबंध में गुप्तजी ने सन् १९०० में लिखित हिन्दी के काव्य-साहित्य का मूल्यांकन करते हुए हिन्दी के कवियों की रचनाओं के मामूली एक प्रश्नवाचक बिन्दु लगाया। इन्होंने स्पष्ट कहा कि सर्वकालीन काल की कविता जीवन की यथार्थता धारा में सम्मिलित न रहने के कारण सबकासीन सत्य स सूर्य रहने के कारण सम्मान नहीं प्राप्त कर सकेगी। इस निबंध में व्यक्त गुप्तजी के चिन्तन-स्वरूप का आशिक परिचय 'तेईसवाँ वर्ष' शीर्षक निबंध के इस अंश से हो जाता है 'हिन्दी पद्य की भी कुछ वर्षों भारतमित्र में गन वर्ष (सन् १९०० ई.) हुई। उसका कम से कम इतना हुआ कि हिन्दी के कवि अपने मिय एक पक्ष निकाल सकते हैं। परन्तु अपने जीमें इतना समझ रखें कि प्यारी की बिरहभ्यसा बर्तान और नायिका भेद बनाने का समय अब नहीं है। उनके कवि उत्तम विषय में जो कुछ कह पाये हैं वह कम नहीं है। इस समय के कवि उनकी लक्ष्य करके नाम नहीं पा सकते। अब दूसरा मार्ग समाप्त करना चाहिये। भारतमित्र—तेईसवाँ वर्ष शीर्षक लेख—सन् १९०० ईसवी—देगिये नाममुद्रण गुप्त स्मारक प्रबन्ध—गुप्त १००। इसी अंश में गुप्तजी भीतर पाठक और बाह्य महावीर प्रमाण द्विवेदी की सहायता करते हुए कहते हैं 'हम १०० भीतरजी पाठक तथा १०० महावीर प्रसाद द्विवेदीजी का हृदय से सम्मान करते हैं। हिन्दी पद्य को पद्य पर ले जाना मात्र तीन लोगों का ही का नाम है।' बहा।

१ गुप्तजी की यह भावना महावीर प्रसाद द्विवेदी की भावना के अनुकूल ही है—यमुना के किनारे के ले-कौतुक का अद्भुत अद्भुत वर्णन बहुत हो चुका। न परकीयाओं पर प्रबन्ध लिखने की इस कोई आवश्यकता है और स्वकी याओके 'गजगन्ध' की पाली घुमाने का हिन्दी काव्य को होने दशाको देखकर कविों की चाहिये कि वे अपनी विद्या अपनी बुद्धि और अपनी प्रतिभा का दुरुपयोग इस प्रकार के प्रबन्धलिखने में न करें। अच्छे काव्य लिखने का उन्हें प्रयत्न करना चाहिये। अर्थकार-रस और नायिका निरूपण दक्ष हो चला—महावीर प्रसाद द्विवेदी—कवि कथक्य—देसिये—हिन्दी कविता में मुद्रान्तर—द्वितीय संस्करण—पृ० ४९।

गुप्तजी ने इसी भावना से अनुप्रेरित हो, सन् १८९०-९१ में भीमर पाठक और महावीरप्रसाद की रचनामें छापीं। महावीर प्रसाद द्विवेदी की भाषा विषयक धारणा अति स्पष्ट और स्वच्छ थी। वे भाषा के सरल और बोधदायक स्वरूप के प्रयोग के समर्थक थे। अपने युग के लेखकों से भाषा के इसी स्वरूप के प्रयोग के लिये वे आग्रहशील थे। परन्तु द्विवेदी जी अपनी मान्यता के रक्षक में कभी कभी अतन्मर्ष भी रहे हैं। नाममुकुन्द गुप्त द्विवेदीजी का इस असावधानी की ओर समय-समय पर सचेत करते रहे। द्विवेदीजी को बिखे गये एक व्यक्तिगत पत्र से हम सत्य का उद्घाटन होता। सरद्व साव काम वाला लेख बहुत कठिन वा संस्कृत स्टाइल का होने से उसका समझना भी कठिन था। आपका दूसरा लेख भी बहुत कठिन वा सर्वसाधारण के समझने योग्य न था। ऐसे कठिन लेख मिलाने हों तो कुछ सरल और रोचक ढंग निकालना चाहिए।

आलोचना का दायित्व मेरी दृष्टि से कवि कदाहीकार अथवा उपन्यासकार के दायित्वों से कम नहीं होता है। आलोचक एक और रचना के गुण-दोष विवेचन के साथ अराजकता या अतिशयवादी कृतिकारों पर नियन्त्रण करता है दूसरी ओर वह नवीन प्रतिभा का सृजन करता है। नवीन रचनाकारों की रचनाओं की प्रोत्साहनपूर्वक आलोचना कर वह उनमें आत्मविश्वास की भावना को बुरकटा है। गुप्तजी के आलोचनात्मक निबन्धों में आदर्श आलोचक के ये दोनों गुण उपलब्ध हो जाते हैं। अधुमती नाटक की आलोचना हेतु मिले गये निबन्ध में गुप्त जी के नियन्त्रक स्वरूप के वर्तन होते हैं। इस दृष्टि को गुप्तजी ने पाप मरी पुस्तक कहा है। इसकी वषा काव्यनिरुद्ध है। इसमें महाराजा प्रताप की (कल्पित) पुत्री अधुमती और धनवर के पुत्र सलीम की प्रणय-कथा की कल्पना की गई है। इस प्रकार की कल्पना हमारी आदि और संस्कृति के लिये अपमानजनक भी है। गुप्तजी का इस कृति पर उत्तेजित हो जाना अति नैसर्गिक ही था। वे तर्क इतिहास-संस्कृति के सम्बन्धों में इस कृति की सार्थकता का परीक्षण करते हैं। इस दृष्टि की सार्थकता का मध्यम में गुप्तजी अनेक व्यायामगत प्रश्न करते हैं 'हम बचपन के पढ़े-लिखे लोगों से पूछते हैं कि इन पुस्तक को पढ़कर बंग देश की लड़कियों को क्या मिला मिलगी? और आप अब बंगाली लोग क्या मे कहें कि आप ही की उमरी क्या उल्लेख मिला? इस पुस्तक के बड़ने न धारणी नर्तक नीची होनी है या ऊँची? बंग साहित्य के भूँद पर हमने स्याही छिरी है या नहीं?

इस आलोचना में गुप्तजी के मार्मिक संस्कार का उद्घाटन हो जाता है। साहित्य आजीव भावना को प्रतिबिम्बित करता चलता है। 'अय्यमती' जबवा हम कोटि की अन्य रचनाओं से हमारी जाति या जमात बिस्तत स्वल्प का पचार्थ उद्घाटन सम्भव नहीं। अपने युग तथा जाने वाले युगों में इस कृति से भ्रम ही उत्पन्न होगा। इसीलिए गुप्तजी आबध और लीक के आदेय में कहते हैं किन्तु साहित्य जगद्भूम में जय हमको साहित्य से कुछ नष्टमव नहीं हमको जो कुछ मतमव है इस पुस्तक से है वह हिन्दू-धर्म लेकर, राजपूतों का पीरव लेकर और हिन्दू पति महाराणा प्रताप सिंह को लेकर। इस 'अय्यमती' में चाह जो न हो चाह के जाने हिन्दू धर्म पर बहुत बड़ा आक्रमण किया गया है। राजपूत कुल में बलक मगाया गया है। गुप्तजी इस कृतिसे इतने आहत हुए थे कि आलोचना में तत्त्व-विश्लेषण का वा रटियाव कर आवावेग में प्रकाहित हो उठे। 'सायब टाडको यह सबर होनी कि नामर बंजाली जानि में मेरी यह पुस्तक कापसी और उस जानि के बामरं सोय इनको पढ़कर राजपूतों के चरित्र को कर्मकित करेंगे तो वह अपने रजस्वान को न बनाते पर हिन्दुस्तान में एक कहावत है—मरंकी मरमें रहना मच्छा नामरं की मच्छा में रहना अच्छा नहीं। इस धरा की मच्छाबनी मनि बटु और मर्यादा के प्रतिकूल है परन्तु हममें हम गुप्तजीकी मूल भावना और सद्बुद्धय पर लन्देह नहीं कर सकते। भावना यदि पुत्र ही तो अभिव्यक्ति की लीनी या विधि की प्रस्तावधानी को नमन्य मान सकते हैं। गुप्तजी की इमानदारी के लिये मध्य स्वाय न प्रमाण-मनजन की प्राप्तिवना नहीं। 'अय्यमती' भाटक की आलोचना पढ़ कर हमके सेगक यी ग्लोनिरिग्नाब महाराज (कबीरदा रबीग्ननाम के बड़ भाई) ने गुप्तजी को इस प्रकार लिखा

I admit the justice of your criticism of my drama Aabramatu and fully appreciate the spirit in which it was conceived.

The point of view you suggested did not strike me before but now as you have drawn my attention to the undesirability of bringing the name of Rajput Heroes into a drama which placed before the public mainly as a work of imagination, I shall most certainly take steps to adopt one or other of Courses you have proposed.

संज्ञक की इस स्वीकृति से गुप्तजी इषित हो उठे और अत्यन्त स्नेह भाव से लिखा—‘हम हृदय से श्रीमान् ज्योतिरिन्द्र भाब ठाकुर का बन्धवार करते हैं। यह बीसे उदार पुरुष हैं, बैसी उदारता दिखाकर उन्होंने सब हिन्दुओं को प्रसन्न किया है। यह सचमुच महापणा प्रताप पर भक्ति रखते हैं और उनकी ‘छरोजनी’ बाहि पुस्तकें राजपूतों की नीति को उज्ज्वल करने वाली है। देखिये बासमुकुन्द गुप्त स्मारक ग्रन्थ पृ० १११।

जिस भाषना से ‘अधुमती’ नाटक की आलोचना गुप्तजी ने की उसीसे प्रेरित हो चिथोरीकाल गोस्वामीकृत ‘छाट’ उपन्यास की भी उन्होंने निम्ना की हरिजीवकृत ‘अधमिला फूल’ हिन्दी पद्य-वीथी की एक विधाय उपलब्धि है। इस कृति में और इसके पूर्व लिखित ‘ठेठ हिन्दी का ठाठ’ में हरिजीव ने बड़ी बोली या एक प्रवीणात्मक रूप प्रस्तुत किया इस प्रयास की प्रशंसा भी हुई। बासमुकुन्द गुप्त सन्मग्न हो अपने युग के प्रथम और एकमात्र आलोचक हैं, जिन्होंने ‘अधमिला फूल’ दीर्घक आलोचनात्मक निबन्ध लिखकर हरिजीव द्वारा प्रस्तावित भाषा-रूप का विरोध किया। इस भाषा रूप का इन्होंने समर्थन नहीं किया। कारण गुप्तजी ‘अध्मी हिन्दी’ के पक्ष पाठी जबका समर्थक थे। उनका यह कहना था कि अधोघ्या सिंह उपन्यास में जिस भाषा-रूप की कल्पना की है उसे अध्मी भाषा बोलने वाले किसी प्रान्त के लोग नहीं बोलते। गुप्तजी के ‘अधमिला फूल’ के सम्बन्ध में व्यक्त चिये नये विचारों से यह निष्कर्ष निकलता है, कि वे उस भाषा-रूप के पक्ष-पाठी थे जिसमें हम भिन्न अधवा नामरत्नों की बोली या भाषा कहते हैं। गुप्तजी का यह आग्रह भाषा को एक रूपता-प्रदान करने की भाषना के कारण है। उन्होंने ‘अधमिला फूल’ से उदाहरण लेकर पुस्तक की भाषामत् भुक्ति के निर्देश के साथ-साथ इसी भाषा के अस्वाभाविक स्वरूप का स्पष्टी करण किया है। इस प्रकार विशिष्ट शब्दों की रचना-विधि उनके प्रयोग और व्याकरण-गन् रूप इन तीन स्वर्णम सत्यों में उन्होंने वस्तु का सुस्थापन किया है।

बासमुकुन्द गुप्त के इस आलोचनात्मक निबन्धों के बढ़ने के पश्चात् इस प्रकार की भाषना भी बननी है कि इनके लक्ष्य और इनकी विद्वेषण-व्यतिरेक कभी कभी ‘बाल में गान विद्या’ के कथम परिणाम होने लगता है। उदाहरण

के लिये हम ऊपर उल्लिखित 'अवसिमा पून' तीर्थक आलोचनात्मक निबन्ध को ले में। मेरी अपनी धारणा है कि गुप्तजी अयोध्या सिंह उपाध्याय के माथ को समझने में असमर्थ रहे। ठेठ हिन्दी से हरिजीव का तात्पर्य उस हिन्दी-स्वरूप से था जिसका प्रयोग सामान्य जन अपने कार्य-व्यापार तथा दैनिक जीवन में करता है इस कारण ही हमोंने तरुण शब्दों की अपेक्षा अर्थ-तत्त्व या तद्भव शब्दों का प्रयोग किया। ठेठ हिन्दी से उसका तात्पर्य इसी प्रकार के शब्दों से था। अतः रचनाकार के मुख्य उद्देश्य को बिना ग्रहण किये ही उनकी आलोचना करना सत्य पर आधारित जानना है। उपाध्यायजी ने आक्रमण (आक्राण) पञ्चम्य (परिचय) विट्टी आदि शब्दों का प्रयोग किया है। गुप्तजी ने यह आपत्ति उठाई है कि ये शब्द ठेठ नहीं हैं। अतः 'आक्राण' परिचयारा शब्दों या माटी ठेठ हैं (कारण ये शब्द ब्रजभाषा में प्रचलित हैं)। गुप्तजी शब्दों के इन कर्णों से परिचित थे परन्तु अयोध्या सिंह उपाध्याय जिस क्षेत्र के निवासी थे उस क्षेत्र को सम्मूह रतते हुए इनके द्वारा प्रयुक्त शब्दों पर किसी को आपत्ति नहीं होनी चाहिये। ऊपर कहा गया है कि दोष इनमें गुप्तजी ने कभी-कभी अनिश्चयता का भी अवलम्ब ग्रहण किया है। इसी निबन्ध में (अवसिमा पून) रचनाकार के भाषा-शेष की आलोचना करते हुए हमोंने इस प्रकार कहा है 'थोड़ी की भाषा का जो अंश ऊपर उद्धृत किया है उसमें कई एक मुहावरे भी मिलते हैं। "कोई घर की धुती धतों पर टंगा हो रहा है। इस वाक्य का यह अर्थ नहीं है जो अयोध्यामिहजी ने यहाँ मपाया है बरज्जभाषा के लिये टंगा होने का अर्थ है मर जाना'। ठेठ भाषा में इसका अर्थ पीतल ही होता है। इसी प्रकार गुप्तजी ने 'पंजा हो रही है' प्रयोग पर भी आपत्ति की है। उनका कहना है कि हाँटना का प्रयोग वाय-वैत आदि के साथ होता है। वास्तविकता यह है कि इन सङ्ग में भी इन प्रयोगों को हम अनुष्ठ नहीं मानते पंजा हाँटना ठेठ हिन्दी पंजा अपने के अर्थ में प्रयुक्त होता है। गुप्तजी आगे एक अन्य उद्धरण देते हैं। 'राज में जब गुरज का तेज नहीं रहता हम लोगों को अपनी छवि देगने में धाती है। इन उद्धरण के बाद गुप्तजी निर्णय देते हैं 'देगने में धाती' की अपहृ "दिगाई देती है" चाहिये। यदि 'देगने में धाती है' रणा वाय 'तो हम लोगों को अपने में निवास देना होगा। देगने में यह प्रयोग

हिंदी भी रूप में अद्युक्त नहीं है। इस अद्युक्त मानना गुप्तजी का दुराग्रह भाव है। इस प्रकार व अंध बालमुकुन्द गुप्त के निबन्धों और आलोचना के कुर्वन धन्य है।

परन्तु बालमुकुन्द गुप्तजी की महिमा इससे बढ़ती नहीं है। उनका यह स्पष्ट आग्रह था कि आलोचना में व्यक्तिगत ईर्ष्या-द्वेष की भाषा नहीं होनी चाहिये। अपने 'हिन्दी में आलोचना' शीर्षक निबन्ध में गुप्तजी ने इसी मूल तत्त्व की धमि व्यक्ति की है। यद्यपि इस निबन्ध के उद्देश्य के पण्डित महावीर प्रसाद द्विवेदी और यह निबन्ध व्यक्तिगत प्रतिद्वन्द्विता और स्वर्धा के भाव से लिखा गया था किन्तु यह निबन्ध एक प्रकार से युगीन तथा परवर्ती काल के निबन्धकारों एवं आलोचकों के लिये परिपक्व रूप में मिला गया था। द्विवेदीजी अपने विपरीत गुप्तजी की आलोचनाओं से उत्प्रेरित होकर 'सरस्वती' में निबन्ध लिखते थे। और गुप्तजी उनकी आलोचना का उत्तर 'मारुतमित्र' में लिखते थे। इस उत्तर-प्रत्युत्तर की कहानी का उल्लेख अगर किया जा चुका है। द्विवेदीजी ने बालमुकुन्द गुप्त का प्रत्युत्तर देते हुए सरस्वती परवर्ती १९६ में एक निबन्ध लिखा जिसमें एक महत्त्वपूर्ण अंश यहाँ दिया जा रहा है, और जो नाय ज्ञानलब्धुविदग्ध है ईर्ष्या-द्वेष से त्रिस्तका थी जिनका भी जल रहा है उनके बृहस्पति के बाप की बातों में भी पूर्वापर विरोध और तर्दिग्ध भाव देग पड़ेगा। हमारा पहला लेख इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है। गुप्तनिबन्धावली पृ० ५०२। गुप्तजी ने इसके प्रत्युत्तर में 'ईर्ष्या-द्वेष' शीर्षक निबन्ध लिखा। इस निबन्ध में गुप्तजी ने स्पष्ट शब्दोंमें यह प्रश्न किया 'इसका अर्थ यह है कि पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदीजी के भाषा और व्याकरण बाल लेख की त्रिस्त लोभा ने प्रशंसा लिए थेजी वह तो पड़ गिरा और अन्ध है परन्तु त्रिस्त लोभों ने उनके बाप दिलाये वह ज्ञानलब्धुविदग्ध है। मारे द्वेष के पण्डितजी पर उनका भी जल रहा है इससे वह लोग पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी का क्या बृहस्पति के बाप के बाप की बातों को भी टेढ़ी मेढ़ी और तर्दिग्ध बतल गच्छते हैं अद्युक्त गुप्तजी ने यह कहने का प्रयत्न किया है कि आलोचना को अपने विचारों को विचार-वृत्त्य नहीं समझना चाहिये अपनी भाषा को भ्रमरहित नहीं मानना चाहिये। निम्नलिखित आलोचना

महावीरप्रसाद द्विवेदी हर्बर्ट स्पेंसर को अपना भारी मानते थे। उनकी कतिपय रचनाओं का हमने अनुवाद भी किया था। मुफ्तजी ने इस तथ्य का भी उल्लेख किया कि आलोचक और कटिहार को सहनशील होना चाहिये और अपने प्रति की गयी गई आलोचना से लाभ उठाकर धारमात्कार्य का प्रयत्न भी करना चाहिये। द्विवेदीजी के आग्रह हर्बर्ट स्पेंसर अपनी आलोचनाओं का सहर्ष स्वागत करने और अपने आलोचकों के प्रति गद्गलभावना व्यक्त किया करने से उनकी प्रशंसा भी करते थे। मुफ्तजी महावीर प्रसाद द्विवेदी और अपने गुण के अन्य लोगों और आलोचकों का ध्यान इस उदात्त-तत्त्व की ओर आकर्षित करना चाहते थे। लेखक और कटिहार के बीच एक प्रकार की पारस्परिक सहानुभूति अवस्थित है। नवम्बर १८७२ के Contemporary Review में जार्जर ह्यसनन ने हर्बर्ट स्पेंसर के विरुद्ध आलोचना की। इसका उत्तर में हर्बर्ट स्पेंसर ने कहा—*I value them as coming from a thinker of subtlety and independence* (मैं इन विचारों का आदर करता हूँ क्योंकि ये एक स्वाधीनचेता और मूर्खन्दी सेगनी से निकले हैं)।—मुफ्त निबन्धावली पृ० ५०६। अपने एक अन्य आलोचक की आलोचना का उत्तर देते हुए उन्होंने कहा—

I admit this to be a telling rejoinder and one which be met only when the meanings of the words, as I have used them, are carefully discriminated and the implications of the doctrine fully traced out.

मैं इसे बड़ी प्रभावशाली आलोचना समझता हूँ। ऐसी आलोचना तब ही हो सकती है जब वेरी भाषा और मेरा निद्वान् बहुत ध्यान में पड़ा और विचारों का। इस प्रकार मुफ्त जी ने अपने समकालीन लोगों और कटिहारों के सम्मुख ग्राह्य कृतता की शिक्षा भूमिका की प्रस्तावना की। ग्राह्य के क्षेत्र में यदि कुर्बान हठ अविश्वस्य शोषणीय नहीं कारण इनके शक्तिपिक बातावरण विस्तृत होता है धरावचना चीनी है तथा गनिरीय उत्पन्न होता है। मुफ्तजी कभी कभी स्वयं अपने निर्देशों का अनिश्चय कर गये हैं परन्तु उनके आलोचनात्मक निबन्धों पर जब हम समय दृष्टि में विचार करते हैं तब हमें सम्योप होता है कि उन्होंने धनितारना पूर्वक ध्यानि समष्टि और ग्राह्य की पर्याप्तता का सम्मान और संरक्षण करने हुए आलोचनात्मक निबन्ध लिखे।

बाममुकुट्य युक्त के जिन समीक्षात्मक निबन्धों की वर्षा की गई है, उनमें से कुछ निबन्ध ग्रन्थों और ग्रन्थकारों की आलोचना के रूप में लिखे गये हैं। कुछ पुस्तक रिव्यू की समीक्षा-पद्धति पर लिखे गये हैं। वास्तविकता यह है कि यह निबन्ध व्यावहारिक समीक्षा शैली के निबन्ध हैं जिनमें आलोच्य कृति या विषय के गुणों और दोषों का निर्देश मिलता है। इन निबन्धों की दो कोटियाँ हैं। प्रथम कोटिके निबन्ध विद्विष्ट ग्रन्थों की आलोचना में लिखे गये हैं। द्वितीय कोटिके अन्तर्गत वे निबन्ध आते हैं जिनमें किसी ग्रन्थ की आलोचना की प्रत्यालोचना की गई है। ग्रन्थों या ग्रन्थकारों की आलोचना करते समय निबन्धकार ने सज्जनारमक आलोचना पद्धति का प्रयोग किया है। आस्वास् आलोचना प्रणाली में ग्रन्थ की समीक्षा करते हुए अनर्थाहित केवल अक्षतम्य या कृतियों की कटुतम आलोचना करते हुए निबन्धकार तर्क-वितर्क का उपयोग करता है। यही कारण है कि इस कार्य में सुप्तजी नहीं निपटता रही है और एक प्रबल विपक्षी के समान तर्क सज्जवास तथा अप्रामाणिक बातों का विस्तार कर आलोच्य वस्तु या व्यक्ति पर प्रबल प्रहार करते हैं। दूसरी ओर आलोच्य कृतियों से चढ़कर बैठे हुये प्रश्ना के माध्यम से विवेचनात्मक शैली में अपने कथ्य को सुसम्बद्ध रूप में भी प्रस्तुत कर बैठे हैं। ऐसे दोनों में विवेचना की सूक्ष्मता दर्शनीय है चिन्तन-आत्मीय सराहनीय है और औद्धिक-स्तर उच्चपरतसीय।

विषय की दृष्टि से इनके निबन्धों का तृतीय वर्ग जीवन-चरित सम्बन्धी निबन्धों का है। जीवन-चरित सम्बन्धी निबन्ध दो वर्गों में विभक्त किये हैं— (क) साहित्यिकव्यक्तियों के जीवन-चरित जैसे 'प्रताप नारायण मिश्र' साहित्यवाचाय 'पण्डित प्रतापनारायण मिश्र' 'मृगशी देखीप्रसाद' 'हर्बर्ट स्पेन्सर' 'मकनमूलर' और 'दोन साधी' शीर्षक निबन्ध। द्वितीय वर्ग के निबन्ध ऐतिहासिक पुरुषों के जीवन-चरित् से सम्बन्धित हैं।

ये निबन्ध आकार में लघु हैं और इनकी शैली वर्णनात्मक या कथात्मक है। बाल्य-स्वाधन और निबन्ध आरम्भ करने की शैली की दृष्टि से ये निबन्ध दो प्रकार के हैं। प्रथम प्रकार के निबन्ध एक लघु भूमिका के साथ आरम्भ होते हैं। दूसरी विधा उन निबन्धों की है जिनका आरम्भ बिना

बुद्धि का हुआ है। निबन्धकार अपने प्रतिपाद्य की स्थापना में निबन्ध के प्रथम वाक्य से ही संक्षेप प्रतीत होता है। सम्पूर्ण रूप में इस कोटि के निबन्धों की शैली का विधान इस प्रकार किया जा सकता है—

(क) प्रारम्भिक शैली में निबन्ध का आरम्भ (ख) सम्बन्धित व्यक्ति के विषय में ज्ञातव्य तथ्यों का उद्घाटन (ग) स्थापन-स्थान पर भाव प्रदान सम्बोधनों का प्रयोग (घ) विषय की मध्यवर्तिता के साथ निबन्ध का समापन। विषय की दृष्टि से राजनीतिक निबन्धों में विषयार्थ के विट्टे तथा विट्टे और सत की आलोचना-अथवा में विरोध रूप से चर्चा की जाती है। विषयार्थ के विट्टे सक्रियकृत कमलाकांक्षित रूप की शैली में लिखे गये प्रारम्भ शैली के निबन्ध हैं। इस शैली के अन्तर्गत क निबन्धों में भी हास्य और व्यंग्य की प्रधानता है परन्तु इनमें प्रयुक्त हास्य और व्यंग्य हमें चिन्तन और आत्मविस्मरण करने की अनुप्रेरणा प्रदान करते हैं। साँझ वर्जन को सम्बोधित करके लिखे गये इन निबन्धों में धर्मों द्वारा घोषित परम धर्म भारत पर किये गये अत्याचारों के प्रतिरिक्त भारत के मानसिक और सामाजिक स्वरूपों का विस्लेषण भी किया गया है। इसकी व्याख्यात्मक शैली एक विशेष प्रकार की मानसिक उत्तरेता प्रदान करती है। और हमारे अस्तित्व के सम्पूर्ण प्रगल्भता के विट्टे तथा विट्टे की अपने दामिनी के प्रति चेतना जागृत करती है—

‘यह सबरदस्त इष्टा कोय धन बहुत काल से केवल निमित्त निराकार उदस इष्टा की अवस्था में अनुपलब्धता में देग रहे हैं और न जाने जब तक देवे जायें। सबर देगे हैं कि जितने ही गमाने देग वय पर दृष्टि नहीं हटाने हैं। उन्हें पुष्पीयय अवस्था की उबाही देगी मुगलमानों की बादशाही देगी। सबर और सबर सागसाना और सायनेन देगे साहजहानी तन्मताय देग और साही मुमन देगे। साँझ वर्जन भी अपनी साधित प्रजा का यह गुण जान गये थे इसीमें भीमान न भीसामय रूप कारण करके जिनकी ही भीमावे रिहार्ड—विषयार्थ के विट्टे पु० १८३। ये निबन्ध बलुनात्मक और वर्णनात्मक हैं जिनमें भाषायिक तथ्यों का सफट प्रयोग किया गया है तथा सम्बोधित भाषा और व्यञ्जना के सहारे वह भाषा का विकास करना है। इस वयके निबन्ध प्रायः तीन शब्दों में विभाजित नियम जा सकते हैं।

(१) भूमिका (२) मुख्य भाव की प्रस्तावना और उसका प्रतिपादन (३) निष्कर्ष या उपसंहार। भूमिका-अंश में निबन्धकार कभी अश्वोक्ति जैसा 'मत्सरा-पूर्य' प्रतीक-पूर्ण बर्णन बिचान करता है यथा 'माई साह ! सड़कपन' में इस बूढ़ भंगड़ को बुलबुल उड़ाने का बड़ा पाव था। गाँव के फितने ही घीरीम बुलबुल बाज थे। वह बुलबुलें पकड़ते थे पासते थे और उड़ते थे। बासक शिवभम्भु बुलबुलें लड़ाने का नाव नहीं रखता था। केवल एक बुलबुल को हाथ पर बिठाकर प्रसन्न होना चाहता था।

इस प्रकार की भूमिका के गर्भ से मुख्य भाव प्रस्फुटित होता है और साक्षरलिकता वस्तुपरकता में परिवर्तित हो जाती है। निबन्धकार इस प्रकार का "निबन्ध का पल्लवन एक सुनिश्चित योजना बनाकर करता है। आपने माई साह ! भारत में सब से प्यारे हैं बुलबुलों का स्वप्न ही देना था या सचमुच कोई करने योग्य काम भी दिया है। सब दरबार की बात सुनिये कि क्या था ? आपके क्याल से बहुत बड़ी चीज था भारतवासियों के लिये बुलबुलों के स्वप्न से बढ़कर कुछ नहीं था।

इन निबन्धों का उपसंहार निबन्धों में व्यक्त विचारों के सारंश के साथ होता है—मत्सरा समाप्त हो गया। जो भिन्नता था वह मिल गया अब पुनःमा बात यह है कि एक बार वो धीरे झूटी का मुकाबिला कीजिये। वो वो धीरे समझिये वो झूटी नहीं। माई साह आपके दिल्ली दरबार की याद कुछ दिन बाद छतनी ही रह जायगी जिनकी शिवभम्भु सर्गों के सिर में बासक के उस मुख की विचारोद्भाषना और विचारोत्तेजना इन निबन्धों की रीनी की प्रमुखता है। कारण निबन्धकार अपनी सम्पूर्ण बौद्धिक और भावार्थक सत्ताओं के साथ विषय का प्रतिपादन करता है वस्तुबोध और तथ्य-उद्घाटन की बौद्धिक प्रणाली के साथ-साथ भावार्थक प्रणाली भी स्वल्प-स्वल्प पर प्रयुक्त मिलती है और इस प्रकार के सम्बन्धों में वह अपनी अनुमति और प्रतीति को प्रमुखता देता है। इनमें मुख्य भावधार के साथ प्रार्थनिक उद्भावनार्थ भी की गई हैं वस्तु से उद्भावनार्थ मुख्यविचारों की प्रभावशालिनी में सहयोग प्रदान करती हैं और सक्षिप्त भाव-विधान तथा साधारणीकरण की क्षमता को धारित देती हैं। ऊपर कहा गया कि ये निबन्ध व्यक्ति प्रपात है अतः इनकी जन्मरचना भावार्थक है। भावार्थक निबन्धों की दो शीर्षिका मानी गयी है। (१) निबन्धप्रदान और (२) विचार

प्रधान । निबन्धम् के बिट्टे विचार प्रधान भाषात्मक निबन्ध है जिनमें बसु तात्त्विकता की प्रयोग किया गया है "तेमी एकत्री समस्त प्रजा प्रतिनिधि होने की निबन्धम् के पास नहीं है तथापि वह इस देश की प्रजा का यहाँ के विपदा बोम कट्टासों का प्रतिनिधि होने का दावा करता है क्योंकि उसने इस भूमि में जन्म लिया है, उसका शरीर भारत की मिट्टी में बना है और अपने शरीर का मिला देने का इरादा करता है इस प्रकार विचारों के उठने हुए आनेवाले के साथ-साथ मातृभक्तता के उत्पत्तिवर को वह संस्पष्ट कर देता है साथ-साथ पाठक का वह अपने साथ पूर्ण रूप से सम्बद्ध कर देता है ।

'निबन्धम् के बिट्टे हास्य और व्यंग्य दोन्नी में मिल पय निबन्ध है जिनमें निबन्धकार की विस्मयकारक व्यक्ति की निपुणता मोहक है इसकी भाषा मधीम और स्निग्ध है । इसकी दोन्नी में प्रवाह और गति है ।

आर यह संकेत किया गया है कि युष्मती के निबन्ध व्याप्त दोन्नी में मिल पये हैं । अतः नव्य विषय की व्याख्या हेतु है सर्वप्रथम किसी भाव या विचार का वर्णन करते हैं और फिर उस भाव से सम्बन्धित नव्य विचारों की प्रस्तावना से विषय का विस्तार करते हैं । हास्य और व्यंग्य गुण की प्रकृति का धर्म का अतः हास्य और व्यंग्य उनकी दोन्नी के बने बन गये हैं । बलुनिष्ठ हास्य और व्यंग्य ही उत्तम कोटि का हाथ है परन्तु युष्मती के निबन्धों में व्यङ्ग्यशक्ति है जो व्यङ्ग्यगत आरोप और उपहास की सीमा तक पहुँच जाने है कारण उनका व्यंग्य व्यङ्गि को सम्मुख रख कर करते पये हैं ।

आने भावों के स्पष्टीकरण हेतु युष्मती ने अपने निबन्धों में विषयान्तर भी किया है कथवा प्राणविक उपधाननामें भी की है परन्तु ये उपधाननामें गुण विषय से सम्बद्ध ऐसी है जमत्कथ इनमें प्रभाषात्मिक निरन्तर बनी ऐसी है । 'निबन्धम् के बिट्टे तथा 'बिट्टे और राग व्यङ्ग्यशक्ति निबन्ध है इन्हीं वर्गकथ लगे रहता ही अधिक उचित होगा ।

आर यह कहा गया है कि बालमुकुट गुण हिन्दी निबन्ध-साहित्य के दो युगों का प्रतिनिधित्व करते हैं । इन दो युगों में भाषा-सम्बन्धी बार-बार को लेकर निबन्ध विन पय । भाषाविक और सावनीतिक परिवर्तनों पर विचार।

संस्कृत निबन्ध लिखे गये। इनके अतिरिक्त विचारारम्भक भाषाभक्त, वरुण
नरभक्त विवरणात्मक हास्य तथा व्यंग्यात्मक विद्याओं के निबन्ध इन दो
युगों में लिखे गये। ऊपर बालमुकुन्द गुप्त के निबन्धों का जो मूल्यांकन
किया गया है उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि बालमुकुन्द गुप्त ने अपने
निबन्धों में इन सभी विद्याओं का प्रयोग किया है। यद्यपि इनके निबन्ध दो मुक्त-
विशेष का प्रतिनिधित्व करते हैं। गुप्तजी के निबन्ध संघठित परिपक्व और
निर्घणित शैली में लिखे गये हैं। एडिसन ने निबन्ध की शैली पर अपना
अभिमत द्योतित किया है कि एक अच्छे निबन्ध में निबन्धकार की विचारधारा
का प्रवाहपूर्ण स्वरूप उपलब्ध है। विषय के अनुकूल उसकी विचारधारा
कभी उपदेशात्मक रूप धारण करती है। कभी वह आत्मनिश्चयान्विता करती
है। गुप्तजी की निबन्ध-शैली में ये दोनों विशेषताएँ उपलब्ध हो जाती हैं।

बालमुकुन्द गुप्त का समय भारतीय जीवन में नव जयराज का युग था।
समाज संस्कृति धर्म और वैदिक जीवन में अंग्रेजी शासन और सम्मता का
विनाशकारी रूप भयावहता धारण करता जा रहा था। उस युग के
साहित्यकारों के सम्मुख एक बड़ा बाधित्व आ गया था। उन्होंने अंग्रेजी शासन
और सम्मता के भावक परिणामों का सङ्घाटन किया उनके प्रति असन्तोष का
भाव-अक्षय किया और उनका विरोध किया। इन समय स्थितियों का
प्रतिबिम्ब बालमुकुन्द गुप्त के निबन्धों में उपलब्ध हो पाते हैं। इस प्रकार
उनके निबन्ध इनके युग की अन्तर-संज्ञा हैं। साहित्य-सर्जना के सन्दर्भ
में चिन्तन-विधि के विधान के अनेक प्रयत्न इस युग में हो रहे थे। गद्य (और
पद्य) में अङ्गी बोली हिन्दी स्वीकृत हो चुकी थी परन्तु उसमें सबसे तथा
प्रौढ़ अभिव्यञ्जना शक्ति की अवधारणा न हो सकी थी। उसमें प्रवाह
बल और साधारणीकरण की क्षमता न आ सकी थी। इन दृष्टियों से
जिन निबन्धकारों ने हिन्दी गद्य को एक मुनिविशेष रूप धारण की उनमें
बालमुकुन्द गुप्त का स्थान सर्वोपरि है।

वास्तविकता यह है कि बालमुकुन्द गुप्त मूल रूप में अङ्ग्रेजी शैलीकार थे।
हिन्दी में लिखने के पूर्व उर्दू के विविध लेखक तथा शैलीकार-रूप में इनकी
व्याप्ति अङ्ग्रेजी संसार में हो चुकी थी। सन् १८८८ और १८८९ तक गुप्तजी
लाहौर से निजमने वाले 'नौदेनूर' नामक पत्र के सम्पादक रह चुके थे।
भारतभू की भूतल के दो बड़े पत्रचान्द 'अगस्त्य' और 'नौदेनूर' के सम्पादक भी रहे

बुद्धे में। इस प्रकार से उर्दू की दीर्घी और शिथिलविधि लेकर हिन्दी में बाये
अठ इनकी भाषा अत्यन्त प्रबाहुपूर्ण सजीव और विनोदपूर्ण है। इनके
निबन्धों में वाक्य संयोजन और मधुर है। मुहावरों के प्रयोग से इनकी भाषा-
धर्मी को सिंगता उपलब्ध हुई है।

बालमुमुक्षु पुत्र के निबन्धों में लीली की विविधरूपता उपलब्ध होगी है।
उनके प्रबुद्ध तीन रूप मिलते हैं।

(क) कुछ उर्दू-शरसी मिश्रित परावसी।

(ग) संस्कृतमिष्ट परावसी।

और (घ) उर्दू हिन्दी मिश्रित परावसी।

(क) मालूम होता है कि मुझे इसमें तबारीत से बहुत कम पसंद है। मेरी
इकमत के बल की एक मेकमासी बवाल की तबारीत में ऐसी मौजूद है,
जिसकी मजोर मुम्हारी मजोर में बही भी नहीं मिलेगी। ये बवाल के
शामलतनत बाके में एक रुपये के ८ मन बाबल बिकबाये हैं।

(ग) बहुत काल पश्चात् आपका पुत्र भारत के राज्य का विधान हुआ
है एक पण्डित विचारवान और आश्चर्यरहित मज्जन को धाना अष्टमर होने
देन कर अपने भाग्य को प्रबल अटल और कभी टल न पम न होने वाला
वरम्भ आपके कलनामुसार Settled fact समझने पर भी आश्चर्यपूर्ण
मोने-बाये भारतवासी लविन हुये न ? मासी माहेर के नाम० पृ० २२८

(घ) हिन्दी बालीकना के विषय में कुछ विचार आपोचना करने का विचार
जी में आने के पहले उर्दू अगवारों की ओर दृष्टि जाती है क्योंकि उर्दू के
अगवार हिन्दी से पहले जागे हुए हैं और उन्होंने हिन्दी अगवारों से बहुत
तराही के र्दान में बहुत भाग बढ़ाया है। बालमुमुक्षु पुत्र पद्यावली
पृ० २०२। इस प्रकार भाषा के ये तीन रूप बालमुमुक्षु पुत्र के निबन्ध
में मिल जाते हैं।

बालमुमुक्षु पुत्र भाषा में व्याकरण या रचना के दाप को अग्राह्य मानने
में। भाषा-अगवारी भाषा प्रपासों की ही लकर इनमें लया पताहीर प्रभाव
हिन्दी में प्रगतिगिता की भावना आगुन हुई फिर भी कुलजी न निबन्धों
की भाषा प्रगति रतिन नहीं है। उनकी भाषा में भाषों की चुम्बि है जीने

इन्ट्रेस तक पहुँचे थे। पृष्ठ २६ 'सेब सिखने में उन्हीं नियमों का पालन हो जो काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने सर्व सम्मानिति से निश्चय किया है। आप बिद्याको बनी किया चाहते हैं। पृ ११५ वह बराबर सामन की मानिक है पृ १९४ 'विक्रम जसोक जकर, के यह भूमि साब नहीं गई' प १९७

भीरस से भीरस शरीर में यही जसवामु नमकीनी सा देता है। पृ० १९० वह कोई पाँच साल बच्चाया। इस प्रकार के असमठित वाक्य तथा अगुड वाक्य पुस्तकी के निबन्धों की भाषा में मिल जाते हैं। बहुवचन 'वे' के स्थान पर मुत्तबी सदैव वह का प्रयोग करत है। अब हम वह बातें कहत मिलने हैं प० १७।

इनकी भाषा में ब्रजभाषा की वाक्य-गठन-व्यक्ति और शब्द-प्रयोग मिस्र है—
 आप बिद्या को बनी किया चाहते हैं आप का बिज्ञापन देलकर मुझे बेजा हुई। माव प्रकाशन के हतु तथा अपनी भाषा की अभिव्यञ्जना-शक्ति की शक्ति व्यापक करने की भावना से उन्होंने उत्तम और तद्भव शब्दों मुहावरों का साथ देना या ठेठ शब्दों और मुहावरों का भी प्रयोग किया है तथा इनको टिप्पारियाँ दी हैं ८२* बारह वर्ष के पीछे बूरे के दिल भी फिरते हैं ८३* डिबरी जी ने पहले ही हमले में हरिश्चन्द्र को वह धर कर फेंका है। 'मह जा आपने बहुत कुछ कई वाक्य भाये-बीछ मियाँ मचारी हैं गोमों की शक्ति उगल गिय। ४३७ वह सब आपके चेह में बरकर कूर मचा रखी है। ४३७ 'तो कई मण्ड-व्यङ्ग करनी आये पीछे निकल पड़नी है। हमें तानें मार-मार कर भागता है। 'वाक्य रचना के बागड बिम्बागन की प्रशंसा करते बतिय ८५१ बिस्फी मुहावरे—'साल बुझक-क बन कर इस गुहा की सुरमाशानी का पना बनाने लगन है ८४०

व्याप्यात्मक भाषा-रंग में मुहावरों और लोकोक्तिओं का भुब्बर समन्वय इनकी भाषाके रंग की सिन्धुना प्रकाश करता है—उदाहरण—'मोर हाय हाय मारी रब में दुबोई कारी कामरिया' इस तरह गारी (बलि महीणा) घाघरा बेहानी चोबसा ही तो मिलन करता है। ४६० 'इम मा' बुटमा फूटे जोपर न डिबरी जी ने क्या मतलब निकाला ४७० बड़ी भगड़ा पित्राव का निकाला वाय का काम' ४७०।

कवि वालमुकुन्द गुप्त

श्री प्रबोध नाट्यम सिंह

स्वर्गीय वालमुकुन्द गुप्त की सोच सामान्यतः हिन्दी के सचित्र गद्यकार के रूप में ही जानी गई है। सुयोग्य पत्रकार के रूप में उन्होंने निःस्वार्थ हिन्दी गद्य की अठिठीय सेवा की किन्तु इनका कवि-रूप भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। हिन्दी काव्य के इतिहास में स्व० गुप्तजी का अद्वितीय मार्ग भ्रष्टा के साथ स्वरूप दिया जाना रहेगा। आवश्यकता है कि इनके काव्य का सम्यक अध्ययन और विश्लेषण प्रस्तुत कराया जाय।

काव्य-गिर्य की दृष्टि से विचार करने पर हम पाते हैं कि गुप्त जी के काव्य में निःस्वार्थ रूप से उस सौन्दर्य-भूमि तत्वों की विद्यमानता नहीं है जिनके आधार पर उन्हें कालिदास प्रबभूति विद्यापति गूर गुलामी अथवा बिहारी की समवस्था प्राप्त की जाय। उन्होंने आचार्यों द्वारा प्रतिपादित काव्य के विभिन्न मूलभूत तत्वों को आधार मानकर रचना नहीं की। उनकी रचना में नहीं भी सम-साम्य आधार नहीं दीयता है। केवल पूर्ण रीति रचि बर्णित अथवा अंतराल के समावेश का नहीं भी प्रयास नहीं किया गया है। इनके काव्य में सम्यक् सम्यक् सम्यक् की गति की ही है। कभी-कभी व्यंग्य/महात्मा और व्यंग्य/महात्मा अथवा गुरुर हो उठे हैं। उनके रचनाओं पर उनकी भाषा में प्रभाव और प्रभावता का समावेश हो गया है। उनकी मने व्यंग्य/महात्मा अथवा व्यंग्य/महात्मा हो गयी है।

उन योजना के लिए गुरु गुरु परमात्मता है उहाँ प्रत्यक्ष गुरु परमात्मता नहीं दीयनी है उहाँ भी व्यंग्य के लिए के साथ ही साथ अर्थवत्ता के सम्य प्रभाव द्वारा मज-मज गुरु की व्यंग्य/महात्मा गुरु होनी है। किन्तु अथवा व्यंग्य पर गुप्तजी ने बीगम-बीगम/महात्मा का अर्थ दीयनी गुरु व्यंग्यों का सम्य दिया है। उनकी

ध्यात-वृत्त । के कारण एवं गुप्तजी की व्यंग्य-प्रियता के कारण सन्दर्भ की बीजन्त चेतना का संस्पर्श सुगमता से हो जाता है । गुप्तजी की ऐसी रचनाओं में उल्लेखनीय है "जय रामचन्द्र 'भी राम स्तोत्र', "राम मरागा' 'हे राम' 'बुर्ग-स्तुति' 'शारदीय पूजा' 'आमवनी' 'घाबहु माय' 'बुर्ग-स्तवन' 'जय लक्ष्मी' 'लक्ष्मी-स्तोत्र' और 'सर सैमर का बुदापा' । काव्यमयि ध्यात्मियों के द्वारा भी इन्होंने कई स्थानों पर रसमयक सन्दर्भ की सृष्टि करने का प्रयास किया है । ऐसी कविताओं में "मम्य बीबी' तथा "ठाक और हाऊ' की यचना की जा सकती है । राम-विषयक रचनाओं में कवि ने भारत के अतीत गौरव का बड़ा ही सुभाषना विन अवित किया है और वर्तमान कालीन कुदस्ती तथा उत्पीड़न की झड़ी लगाते हुए वैषम्य की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट किया है ।

निम्नलिखित पंक्तियों में कवय रस का उत्कृष्ट सवाहरण मिलता ॥ बीमत्स और मयानक यही संचारी के रूप में कवय रस को और भी अधिक पुष्ट कर लेने हैं —

केते बालक बूब के बिना पल के कीर ।
 रोय रोय भी देत है कहा मुलावे और ॥
 कौन पाप तें नाब यह जनमठ हम पर आय ।
 बूब मयी पे अन्न हूँ मिमल न तिन कँडे हाय ॥
 केते बालक डोलते माता पिता विहीन ।
 एक कीर के केर गेह पर घर आगे बीन ॥
 मरी मात की देह को नीय रहे बहु नाय ।
 ताही गों यक बूब को मिहू रखो सपटाय ॥
 अहें तहें गर-कंकाल के नामें बीजत डेर ।
 गरम-पगुम के हाइ सों भूमि छई बहु केर ॥
 हरे राम केहि पाप तें भारत भूमि यम्यार ।
 हाइन की चउरी जलें हाइन को व्यापार ॥
 धब या मुलमय भूमि मँह ताही नृप को सेम ।
 हाइ-नाम पूरिल जयी धन्न बूब को देम ॥
 बार-बार मारी परल बारहि बार अजान ।
 काल छिरन नित सीग पे सोसे बाल कराल ॥

सारसीस पूजा' धीर्लक्ष कविता में कवि ने पुनर्जन्तु-नाशिनी पुर्वा का अभिनन्दन करते हुए देव-वासियों को उत्साहित किया है । अनुरागिनी पुर्वा की कृपा से देव की आसुरी शक्ति का संहार होगा ही और पुनः सर्वत्र सुखिमासी प्र जावनी । ऐसी भक्त बुधकण्ठ राम की तरह संसार का वसन करने और स्वाधीनता की सीता का उद्धार करे —

पूजहु पूजहु महाशक्ति बल प्रदिन बकावनि ।
मन्त्रन रया करनि दीप्य-दल मारि मयावनि ॥
पूजहु पूजहु मात सदा भव-विमला-हारिनि ।
मनोकायना निह करनि कलि कष्ट निवारनि ॥

मेठा जाके पद पूजिके
रामचन्द्र कीरति लई ।
सीता पाई रावण हृषो
लंक विधीवन गई दई ॥

इसी कविता में प्रकृति-वर्चन के मिल सुन्दर उद्दीपन-योजना है । प्राबुद्ध क कर्दव और कर्कश-वृद्ध सुस्तिष्ठ-पाद का दूरीकरण हो गया है प्रवर्जन की प्रताड़ना और पन-बदा का वसन को बल-मुसरित कर देना सब दूर हो गया है । अब मन्त्र चारिणी मध्य विजय गरिगाएँ हँसता हुआ जाद और स्वच्छ तारिका-मय नीम निमल सब बड़े ही मनोरम प्रतीय हो रहे हैं । ऐसे ही स्फूर्तिमय आनन्द क नवय में बहानी का धुम आयमन होता है । यही उद्दीपन धरी पद-रचना में ईदगी रीति और मन्त्रार्च-श्रुति धनकार की दिग्विष्ट योजना और भी दर्शनीय है । वही एक ही साथ ओज कान्ति माधुर्य सीधुमाय और प्रसार गुण भी विद्यमान है —

बटे जल अंजलि घनन की बट्यो चोरतय ।
निदो बायु की केन हट्यो सब भाटी करतय ॥
मुग्न मुहावनि रानि नील-निर्मल मय अन्दक ।
मौजा अमित अपार करन तारागण भसमक ॥

जल मूय्यो चरनि विधीन भई
बाण बाट निर्वल भय ।
मानाविष तह वल्लभ मना
पवन पुष्प लई घर ॥

रजत तन्त्रमय रजत-तटिनि अति क्षोमा पावत ।
 ह्रीं प्रफुल्ल ससि रजत-किरण तापर बिभ्रुपावत ॥
 विमल स्रोत प्रतिबिम्ब नील मम को ह्रिय भारत ।
 करि कीमम ससि तागगन भूह-महि उतारत ॥

तीसरे ध्येय के कारण बहुधा हास्य रस के परिपाक में व्यवधान उपस्थित हो जाता है किन्तु जबिकोच स्वर्णों पर इनकी हास्य-योजना अति उद्भूत बन पड़ी है । इस प्रसंग में 'नया काम कुछ करना' शीर्षक कविता की कुछ पंक्तियाँ यहाँ दी जा रही हैं —

बास भात रोटी को छोड़ो छोड़ो मीसी मामा ।
 बोट बूट पतकून उतारो पहनो एक पजामा ।
 रस मिलाके सब कोई बौड़ो पहुँचो टाउन हाल ।
 हिन्दूपन पर केचकर भाड़ो गायो ताम बेताल ।
 कमल जमाओ बात बनाओ पसा फाड़ चिस्ताओ ।
 हिन्दू धरम प्रचार करो मई होमोसूनु जाओ ।
 जो न बने तुमसे कुछ भाई पीटो पकड़ सुमाई ।
 अबका नाचो ठाक बिमाबिन सिर पर उन्हें बिछाई ।
 अबका जो तुम होले भाई ती घर मूड़ कटाओ ।
 पर्वत पर से कचो अबका जल में शोते साओ ।
 मय डेन से जीना अबका नये डेन मे मरना ।
 नया नाम कुछ करना साओ ! नया काम कुछ करना ।

विषय-वस्तु अबका भाव-व्यक्त की दृष्टि में विवचन करने पर हम दुष्प्राप्ति के वाक्य में पर्याप्त विविधता के दर्शन पाते हैं । प्रधानता शर्षत्र राष्ट्रीय भाव धारा की हो गई है । कवि जिसी न जिसी ध्यात से समाज की दुरवस्था का विवचन करता है और पुनः हमारी गुणवत्ता सशित का उद्घोषण कर हमें भरपूर प्रेरित करना है । कवि का स्वाभि-बोध इन पंक्तियों में स्पष्ट पड़ा है —

पेट मरण जिन जिहँ हाथ बूझर गे दर-दर ।
 चार्टरि नाइ वीर कपति मार्गहि जे डोरर ॥
 तुम्हीं बनाओ राम तुम्हीं हम बँध जानै ।
 बँधे तुम्हरी मदिया कनयिन हिय भई जाने ॥

जिनके कर सौ भग्न सौ सुदुमो न कठिन दुपान ।
जिनके मुन प्रभु पेट हित प्रये धाम दरबान ॥

X X X

बिरबामिन बघिष्ठ के बंसन हा । भी राम ।
गव बीरत है पेट हित । अब देखत है धाम ॥
बूठि मलेखन की हुआ । खान मगाहि सराहि ।
भीर कहा बाहा मुन्बो जाहि जाहि प्रभु जाहि ॥

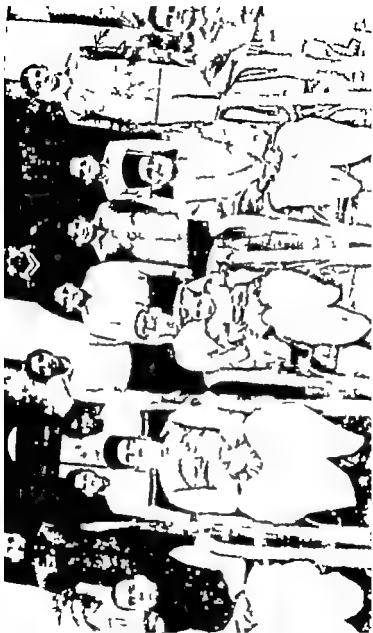
X X X

निति रिम डोलत धाम मदि कुरुर काक समान ।
जन्म बिनाबत प्रेन जिमि कृपा-सिन्धु भयवान ।

बाहे देख-देखी-स्तुति हो बाहे प्रकृति-वस्तुन या हूँसी-दिम्बवी सम्बन्धी कविताएँ मरब बिनो" एवं अनेक गुणों दोनों में राष्ट्रीय भावना ही उद्भासित होती है। वही प्रखर धीर वही प्रकट प्रतीत हुआ बागी इस राष्ट्र-ग्रम का बेम भक्ति की भावना ने इनके वाक्य को अनिच्छा जनप्रिय बना दिया। पराभित भाति का मानागमान-बोध उनकी आह्वन उमरो उनकी वृष्टि आधा-याकीधारे निम प्रकार युग-कवि की बागी में मधकत अभिव्यक्ति वा सजनी है, इसका बडा मुन्दर निरपेक्ष उपलब्ध होता है।

मुत्तजी व भक्ति-गरक कविताओं की भी रचना की है। इन कविताओं में विमुक्त देख-देखी-विवचक भावों का समावेश नहीं है। भक्ति भावना क मात्र मन्त्रावर्णना भी सन्निहित है। यम-मन असहयोग की भावना की तथा प्रमत्तान्तर में जाति की भावना को भी उजाड़ा गया है। छोटा सड़पी बागी दुर्गा राम कृष्ण शिव और अग्याम देख-देखियों के प्रति उद्गार व्यक्त रिम मय है। "नर भयस का बडागा" "तकरीर मुह-जबानी", "उर्दू का उमर" एवं "आजकल का मुग" में हास्य और व्यंग्य का मुन्दर मिश्रम शिगार पफा है। मुत्तजी की वृष्टि और रस का प्रकार व्यासक और विविध था। टेम् "बम्बयुद्ध होनी कर्जम मिने बिरजिनी 'जबान' प्रिम आंक बेम्" तथा अन्य अनेक विषयों पर इन्होंने कविताएँ लिखी है। इनकी "जीतीदा दीनेक एक रचना में 'बेमा-बेनी-नवार में गया "बगल में बिछू में मान बीरता का सद्गुण मन्त्रावेग है। संसार में यही वाता वा मन्त्रा है कि जीवन

और जगत् के प्रायः सभी पदार्थों ने कवि के हृदय का संस्पर्श किया था और उन्होंने उन सबके अन्तर की मूक भाषी को सुना पहचाना तथा उन्हें व्यक्तित्व दी। हिन्दी के उन निर्माण और विकास के दिनों में स्वर्गीय बालमुकुन्दजी मुप्त की रचनाओं का महत्त्व निष्पक्ष इतिहासकार कभी भुला नहीं सकता। आज हमारा देश समाज और काव्य-जगत् वीसा है उसमें स्वर्गीय मुप्तजी का सहयोग और अवदान अत्यन्तम रूपा है। इस प्रकार की प्रतिभा का अवदान पाये हुए, सरस्वती के बरह-पुत्र युगों के पश्चात् भी बिरसे ही आविर्भूत होते हैं।



सर्वतोमुखी गुप्तजी

श्री कृष्णचर्य

पत्रकार

बाबू बालमुकुन्द गुप्त क बहुमुखी व्यक्तित्व में सर्वोच्च चिह्न पत्रकार बाबू मुकुन्द का मामा जाता है। काशी नाबरी प्रचारिणी सभा ने हिन्दी के अन्तर्-प्रान्तीय प्रचाराय एक उत्सव किया था जिसके समापति से अक्सर प्राप्त पार्स० ली० एस० बी रसेलबड हल और जिसमें अन्य वक्ताओं के अतिरिक्त मोरमान्य व० बाळगमावर निमज ने भी भाषण दिया था। मैं उस उत्सव में उपस्थित था पर उसके सम्बन्ध में जितना सुप्तजी निख गए है उसना तो ममा की बापिक रिपोर्ट में भी नहीं है। सभा के तीन सत्यापकों में म एक व० रामनारायण मिश्र को यह टिप्पणी किमी भी पत्रकार के लिए भ्रष्ट प्रमाण-पत्र में कम नहीं है। किन्तु, वह तो किसी पत्रकार की सूझ-बूझ की बात हुई। प्रनिभा और महज बाग प्रायः सम्भवतः तत्त्व हैं। मर्यादापालन व। बुनि साधना और कर्तव्यनिष्ठा से ही सम्भव है।

एक बार प्रसिद्ध व्याख्याविचारक और गुप्तजी के हितैषी दीनदयालु शर्मा ने दक्षिण हैदराबाद के बजीरेबागम महाराजा कृष्णप्रसाद से गुप्तजी की प्रशंसा कर दी। मयोजक महाराजकी गुप्तजी की उर्ध्व धारोंमें 'शाह' छान होनी थी। बजीरेबागम को गुप्तजी में मिलन की इच्छा स्वाभाविक थी। पत्रिणी ने गुप्तजी को हैदराबाद जान को निन्हा। इन निमंत्रण पर गुप्तजी का उत्तर किमी भी पत्रकार क लिए आरम उत्तर हो करना है। उनका उत्तर था—“मेरे मातृमित्र पत्र को जो २)६ बापिक देकर पढ़ना है बड़ी मेरे निय महाराजा वृष्णप्रसाद है। यदि महाराज को मेरे जानना है कि मैं क्या हूँ तो उनसे कहिये कि २)६० बापिक भेजकर

‘भारतमित्र’ के ग्राहक बने और उसे पढ़ा करें। गुप्तजी का यह उत्तर क्या वे स्वयं नहीं गए।

पत्रकारिता की मर्यादा का एक स्तर और है। यह है एक पत्रकार का दूमरे पत्रकारों से बर्ताव या पत्र के मास्किन से सम्बन्ध। सब जानते हैं कि गुप्तजी ने ‘हिन्दीबगवासी’ कैसे छोड़ा। उसी समय भारतमित्र के स्वामी ने उन्हें अपने पत्र का संपादक बनाना चाहा। गुप्तजी ने भारतमित्र के मास्किन से कहा कि वे तो फिजहास गुड़ियानी (अपने गाँव) जाने की तैयारी कर चुके हैं। यदि इन पत्र को बालमुकुन्द की बकरत है तो उसे बुढ़ियानी में बुढ़ाया जाय। गुप्तजी एक मास भी अपने गाँव नहीं रह पाए कि तार टार बुझावा जा गया। उधर बचनबद्ध गुप्तजी ने अपनी बात रख ली।

गुप्तजी के जीवन में इससे भी कठिन परीक्षा की बड़ी ‘बैकटेद्वर समाचार’ में निवृत्ति के समय आई। ‘आपूर्व विचारद अगस्त्यप्रसा’ शुक्ल बैकटेद्वर समाचार के संपादक थे। गुप्तजी बंवाई गए और मास्किन लेमराजजी हैं और श्रीशुक्लजी से जानबीत की। गुप्तजी की पता लगा कि मास्किन संपादक को स्वतंत्रता नहीं देना चाहता। ‘आज्ञा’ देता है। शुक्लजी ‘आज्ञा’ शिरोधार्य करने की प्रस्तुत न थे। ऐसे विकट समय में भारतमित्र से दूने बैठन का संपादन भार न समास गुप्तजी शुक्लजी की यह शिक्षा लेकर उल्टे पाँव सोए घाए—परिवार बेल घुमाकर ओला जाता है। पत्रकार गुप्त के मानस का अभ्यसन करने की दृष्टि से ये उपर्युक्त घटनाएँ पर्याप्त हैं। अन्य बातें—कि अपने महयोगी समुत्पन्न बचवर्ती को कष्ट में किस सहमति की यह कि वे बड़े निर्भीक पत्रकार थे समय पर पत्र निकालते थे और पैसा उन्हें भ्रष्ट करने में समर्थ न था—अन्य पत्रकारों में भी मिल जाती है। गुप्तजी पत्रकारिता की सामान्य मर्यादाओं न ऊपर उन मर्यादाओं के कायक से बिनक कारण समुत्पन्न थी उन्हें अपनी मति न सर्वोच्च विधेयन मनुष्य दे गए हैं।

मंगूरी डिपेंडी युव में बालमुकुन्द गुप्त का ही व्यक्तित्व ऐसा था जिसने हिन्दी पत्रकारिता के दृष्ट का निहामन दीवाशेन कर दिया। आज के पुच्छों में गलत होना और समय में निरुद्ध कर दिया है कि गुप्तजी का पत्र ही ‘गप’ ‘मनचिरता’ आदि के आरोपन में पुच्छ था।

साधु हिंदी के प्रमर्त्यक

निबंध-लेखन-कला और उत्तम भाषा का सहोदर संबंध है। किसी भाषा सामर्थ्य में शुभ्य साहित्यकार के लिए खेप्ट निबंधकार होना संबंध नहीं। भारतोन्मुख खेप्ट निबंधकारों की दृष्टि से बिरोध रूप से भाष्यमान रहा है। डिबेरीजी ने लड़ी बोली को साहित्यिक भाषा की मर्यादा देने तथा अन्य क्षेत्रों से शिक्षाने की भी खेप्टा की थी। किन्तु निबंध के अनिवार्य गुण—व्यक्ति की अपनी निजी छाया सहज भाव से रह-सम्प होने का कीज्जल छोटी से छोटी जीवमध्यापी बम्पु का मानवीय चित्रण मुहाबरे बानी के साथ जीवन से साथ बिजोर बीड़ामय अनुराग निबंध कला को पूर्णता देते हैं। हिंदी-मेवा और निष्ठा की दृष्टि से किसको बड़ा माना जाय ? इस संबंध में डिबेरीजी के साथ श्री रायकृष्णरास वा इटरम्पु उद्धृत करना अनुचित न होमा। १९१० ई० में मुत्तजी के निघन के तीन वर्ष बाद डिबेरीजी हिन्दी साहित्य सम्मेलन के समारंभ के मिलमिल में बनारस जाकर श्री राय साहब के यहाँ टहरे थे। एक दिन जबसर पाकर राय साहब ने डिबेरीजी से “बिज्ञाता की—जायकी राय में सब से अच्छी हिन्दी कौन निगना है ? उन्होंने कहा—अच्छी हिन्दी कम एक व्यक्ति निगना था—बाकमुबुग्द मुत्त। मुत्तजी निबंधकार की दृष्टि से भारतोन्मुखी निबंध के सम्पक बिज्ञान और भाषा प्रवाह के चारणी की दृष्टि में डिबेरी युग तक के क्षेत्रों में नि-सम्पेह खेप्ट थे। पुनः श्री राय साहब के उपपुन्य वचन के अनन्तर पं० किशोरीरास बाजपेयीजी का इटरम्पु भी इष्टम्प है ? गन् १९११ वा १९१२ में श्री बाजपेयी जी शोलतपुर गए और डिबेरीजी ने उन्हीं के घर पर पुराने अनमिपराता आरोपन की खर्ची कर बैठे। श्री बाजपेयीजी ने उन बार्ता का मार इन प्रकार णिया है —

“मेवा चलनी के वह अनमिपराता गप्प निगन गया था। मैं उस समय भी उसे गप्पन समझता था और धात्र की गप्पन समझ रहा हूँ। गप्पन नहीं प्रवाह प्राप्त तो वह है ही नहीं। प्रवाह ही भाषा में बड़ी चीज है और मेवा बुझ भी अपनी भाषा के अनुसार हिरीचा कुछ भाव बनना था प्रवाह उगड़ गया तो लज गया। त्रिज रंग में और त्रिज रंग में वह बिज्ञा उड़ाया गया था उसे मैंने उबिन न समझा। उस समय मैं सब जाना तो मोद निम्नी उड़ाने और फिर मैं उस रूप में कुछ न कर पाया।”

को महान् हिन्दी लेखकों में से जब एक दूसरे को बड़ा मान लेते हैं तो हम जैसे सामान्य लेखकों की जान सस्ते में ख़ुशती है। इसी सिलसिले में एक ऐतिहासिक तथ्य और स्मरण आता है। यह यह कि डिबेदीजी केवल उम्र में गुप्तजी से एक वर्ष बड़े थे (ज० १८६४ ई०)। १९०० ई० में उन्होंने बाबू ब्याममुन्दरबाग की सिफारिश पर १९०३ ई० से सरस्वती का सम्पादन भार सम्हाला था। पुनः अपनी बीमारी सुधारते और पत्रकार के मुण्डी सीखते सीखते समय ममता है। जब गुप्तजी ने छोटी उम्र में १८८६ में केवल २१-२२ की आयु में) अकबारे कुमार का सम्पादन किया। पुनः साहीरके 'कोहे नूर' (१८८८-८९ ई०) कात्माकीर के हिन्दोस्थान (१८८९-१८९१ ई०) वक्तव्य के हिन्दी-अवस्था (१८९३-१८९८ ई०) सम्पादन कर चुके थे और भारतमित्र का सम्पादन कर रहे थे। ऐसी स्थिति में डिबेदीजी उनसे पत्र व्यवहार करें, कुछ परामर्श लें तो कोई घातकर्म नहीं। आत्म-विश्वास के इस पद में ही १ दिस १८८८ के एक पत्र में गुप्तजी ने डिबेदीजी को सरल और मुहाबरेदार हिन्दी मिशन का सुझाव दिया था। यह कि साहित्यिक विवाद उठने में पूर्व दोनों में सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध था तथा डिबेदीजी भीतर से गुप्तजी की स्पष्टता को मानते ही रहें होंगे।

बाबू बाममुकुन्द गुप्त के 'धिवर्धमु के चिट्ठे' 'चिट्ठे बीर बन' में प्रायः ब्यांगत्मक राजनीतिज निबंध हैं। यों इन निबंधों में भी गुप्तजी का साहित्यिक गुण ही रूपक या उपमा के सहारे अधिक उभरा है। हिन्दी और उर्दू भाषा संबंधों निबंध शुद्ध साहित्यिक भाषा की रूप में परिवर्तित किए जा सकते हैं। भाषा में प्रवाह साबू भाषा की एकदम और मुहाबरेदार प्रयोग की दृष्टि में भारतेन्दु महास की लेकर गुप्तजी तक के लेखकों में संभवतः गुप्तजी ही सबसे अच्छे निबंध लेखक थे।

हारकपलेशक सुछात्री

बाबू बाममुकुन्द गुप्त का व्यक्तित्व जो उनकी अग्र्य सब पुरान और सम बामीन लेखकों में 'बिगेय' का पर देता है उनकी बिनोबी प्रशंसि से मबड है। संभवतः इसी कारण गुप्तजी को भारतेन्दुजी की परोपरा को विरहित करने वाली कड़ी के रूप में प्रायः स्मरण किया जाता है। यह स्थापना हम अब में ठीक होते हुए भी स्थाप गंभीर नहीं है। बाभट्टण्य भट्ट प्रतापनारायण मिश्र धादि निबंध लेखक बिनोबजीन या बिनोर के मित्र मित्रन थे। वेबड गोग्गामी राजाचरणजी के हास्य में उहृदय-मध्य स्पष्ट है। 'तन-मन-यन

‘मुर्दाईजी को बर्षण’ या ‘बुढ़े मुँह मुँहास’ जैसी रचनाओं में पाठक को स्पष्ट करने की प्रवृत्ति थी।

गुप्तजी के ‘बिट्टे धीर राठ राजनीतिक संघर्ष और कानून की सपेट में बचने के लिये थे।’ उन्होंने भारतीयवादी ‘बैदला स्वागत’ जैसी छंदों की प्रशंसा का स्तवन करनेवाली रचनाओं की परंपरा को समाप्त किया। दक्षिण पंजाबी-जता निरक्षरता की ओर ध्यान दिखाने के लिये बिन गा लन और बिट्टु दुहरी मार करने में समर्थ थे। एक ओर वे सामक अंग्रेज की बह बतलाते थे कि भारतीय मानक की बातें मजबूत हैं, दूसरी ओर अपने देश की अपनी बीनदरा का बोध कराने में भी देश को जागृत करने का दायित्व भी पत्रकार गुप्त निभाते थे। गुड साहित्य की दृष्टि से सोहेय्या की कसारा लेखक बोध भी मान लेते हैं। हिन्दी पत्रकार गुप्तजी की कलम से निकले वे लेख साहित्य हीनता के उच्चार नहीं बने। इसके ठीक विपरीत उन लेखों को खेच निवास का बर्ताना मिला। यह अनिश्चितता साम की बात है कि गुप्तजी के व निबंध अपने समय के इतिहास की भी छापी देने रहेंगे।

जिनक जीवन में बिजोद कुटी की तरह नहीं बिना होना प्रायः ऐसे ही लेखक ‘कला बना के लिये’ मिथ्याता का वन गान है। वे जीवन में न पाकर हान्य का साहित्य में बुझने हैं। गुप्तजी बचपनसे न ही कुशाग्र बुद्धि और बिनोदप्रिय थे। पाँचवी या छठी कक्षा में पढ़ने हुए पुष्पास की मीथिया के महारे ऊँ की पान्थाना की छत पर बड़ाना ऊँ पानिक का दृष्टन हाना और पुन इसी मुक्ति का नग बंग में देना कर—यानों बड़ान का अन्तःप रिनी ओर ने किया है—ऊँ को उठरवाकर यामिक में मिथ्या गान का बजाद बचन में ही गुप्तजी की बिनोदी प्रवृत्ति का परिचायक है। आप पत्रकार भी यह प्रवृत्ति उन्हीं हिंदी बचिना ओर लेना में बनती है।

बचपन में भी भाग्यमित्र का मोहादन करने मजबूत पन्थामें उन्हीं बिनोदप्रिय का परिचय दिया था। मजबूतमित्र लेखक ‘हान्य मज्जा’ जगन्नाथ प्रमाण बचपन में मारी समुत्पन्नता बचपन में ० जगन्नाथप्रसाद गुप्त जी के लेखक—मित्रों ने बिना संबंधी मजबूतता रण छोड़ है। बाबू गुणाधरप न १९५४ में आशापवाणी पार्ता में कहा था कि बाबू बापमुकुन्दजी के ध्यान मार्गमित्रिक आकाशवाणी में प्रेरित थे।

संभर कार्यरत और मर्यादाओं का निर्वाह करते हुए भी विनोद-व्यंग्य के सहारे मनुष्य अपने को कैसे ताबा रख सकता है ? यह कठिन कला बिरले भाग्यवान् को ही प्राप्त होती है । मुप्तजी इस दृष्टि से सर्वत्र भाग्यवान् रहे । आशाय त्रिवेदीजी में यह प्रवृत्ति बहुत कम थी । वे अपेक्षाकृत मिठी और कोधी भी थे । गुप्तजी इन दोनों से मुक्त थे । विनोदी प्रवृत्ति ने उन्हें पीबन से टकराने वाली कटुता ईर्ष्या आदि से सर्वत्र बचाया । मुप्तजी की विनोदी शैली का एक नमूना ही पर्याप्त होगा । अपने 'उर्दू अखबार' सेल में मुप्तजी ने अंग्रेजपरस्त व्यक्तियों का जो पाठा दिया है उससे उनकी जिहा रिल्ली बात को दो दूक कहने की आवश्यकता किन्तु कटुता रहित सत्य को तात् अंश से कहने का डम एक ही जगह सिमिट आया है । कोहेनूर अखबार के सितसिले में वे लिखते हैं—“कोहेनूर के कापीनबीसों में कई एक प्रेमों के मासिक हैं । कलकत्ता के स्वर्णीय मुंशीनवलकिशोर जो हिन्दुस्तान के प्रेसबाला में कासानी हो गए हैं एक समय कोहेनूर प्रेस के मुसलमिन् थे । मुगी हरमुल्लरायजी की कृपा ही कलकत्ता में मझी नवलकिशोर की पारंपरिक उन्नति का कारण थी । भारतमित्र के वर्तमान संपादक का जिस समय कोहेनूर से संबंध था उस समय एकबार मुझी नवलकिशोर साहीर पय थे । कोहेनूर आफिस में जब मुंशी हरमुल्लराय से मिले तो बराबर उनकी 'हुनूर, हुनूर' कह कर संबोधन करते थे और हरमुल्लराय उन्हें 'मुंशी साहब' कहते थे । वह प्रयाग की चौथी कांग्रेस का अमाना था । उस समय 'कोहेनूर' ऑफिस का पूरा तरफदार और मुंशी नवलकिशोर, सरसमर अहमद या और राजा निकप्रसाद कांग्रेस के बड़े विरोधी थे । मुंशी साहब टहलते-टहलते कोहेनूर संपादक के कमरे में जा आये । करमाया—एडीटर साहब एक ऐंटीकाईस आपके बरमे उतर रहा हूँ आप उसे मार तो न डालेंगे । उतर मिला—“एक तो आप बड़े साहसी दूसरे छोटलाट काल-बिलकी आप पर इनायत हम मरीज एडीटरों पर रहम की जरूर रहे । मुंशी साहब ईनवर चले आये ।

अग्यत्र उर्दू मासिक-पत्रों की वर्णना करते हुए मुप्तजी ने 'उर्दू अखबार' सेल में मुसलमाना नामक निकलने वाले कई अखबारों की वर्णना करते हुए लिखा—इन मुसलमानों की महक कलकत्ता पहुँची । यह एक बड़ी रिल्ली की बात है कि इन मुसलमानों को बहुतो बहो लोग निगलते थे जो इनर भी बेचने से । कलकत्ता के निगलहुनैन और कम्मोज के रलीन शोनों ही इनर की दुबान

करते थे। यह कायबी गुसरस्ते इन्हीं के प्रबंध थीं इनमें से मुगपित होते थे। इस क्षेत्र का सेलक भी उनकी बुद्धि से एक बारगी बखित न रहा। उनके छोड़े हुए दो पार जंगली फूल भी कभी-कभी इन गुच्छों में घामिल हो जाते थे। उस समय हुआ ही ऐसी थी।

पं० बालकृष्ण दामाजी मधीम के संबंध में बताया जाता गया है कि वे मुक्त साहित्यकार थे किन्तु राजनीति उनपर हावी रही। गुजराती के सम्बन्ध में इस प्रकार का निर्णय देना आसान नहीं है। जिस व्यक्ति ने अपने समय के श्रेष्ठ हिन्दी उर्दू के पत्र मपत्तना पूर्णतः सम्पादित किया जिसने हिन्दी उर्दू में दोनों लिबरलों के अलावा उर्दू-हिन्दी में कविता भी प्रभुभाषा में लिखी जिसने आधा आन्दोलन आग भाषाकी पकड़ उसकी अन्तर्ग्रहण का प्रीति परिचय दिया उसे श्रेष्ठ पत्रकार कहा जाय या श्रेष्ठ साहित्यकार ? हमें व्यक्ति को दोनों बन्धनों में श्रेष्ठ मानना ही होगा।

आदर्श और मर्यादा के तारों में निमित्त मध्ये अर्थों में आमात्रिक व्यक्ति बाबू बालकृष्ण गुप्त हिन्दी साहित्य के इतिहास में तो अग्रगण्य हैं ही वे कीर्तुन्धिक मधी के सम्बन्धों में भी पाकशायन और कर्मव्यभिक्त हैं।

हिन्दी का अग्रिम बालकृष्ण गुप्त जैसे सर्वतोमूर्ति साहित्यकार और पत्रकार पाकर इतिहास से विचलित हो सकता है।

अन्धकारोत्पीडित विवरण

बाबू बालकृष्ण गुप्त का जन्म रीतुरा जिसके क गृहिणी घर में पुनर्मन्त्र अग्रवाल के घर १९२२ बिजयी (१८९५ ई०) बनिम पुत्र ४ को हुआ गुजराती केवम मिहिल परीक्षा पास थे। १८८५ में पं० रीतुरा दामाजी म उर्दू में मपुरा अग्रवाल निवास था। यह पत्र एक वर्ष न अधिक न बना। गुजराती म यह म पहिल इमी पत्र में लिखा। किन्तु इनने छोड़े समय में सैमक ने दार्याजी पर अपनी योग्यता की पार जपा री।

दिर तो पं० जी की महाजना ने गुजराती अग्रवाल बनार (१८९५-८८) का सम्पादन करने लग। जब दार्याजी काहीर के बाहुर के सम्पादन होकर चले दये तब गुजराती भी बर्हा गए और १८८८-१८८० ई० में इस पत्र के सम्पादन रहे। यह बाहुर करने समय में बिजवर करने जीवन के पूर्वाप

में (१८५०—१९०० तक) उर्दू का सबसे बड़ा पत्र था । पुनः मदनमोहन मालवीय ने गुप्तजी को 'हानहार विरवा' लेकर काकाकाँकर से निकलने-वाले हिम्नोस्थान में ल सिया । किन्तु जब मालवीयजी बकासत पढ़ने इलाहाबाद चले जाये तब राजा रामपाल द्वारा रचित यह पत्रवार कांग्रेस विरोधी हो गया और गुप्तजीको यह कह कर हटा दिया गया कि 'बहुत बड़ा लिखते हैं । यहाँ से गुप्तजी सर्वत्र के लिये हिन्दी के हो गये ।

हिन्दी बंयबानी (कमकता से प्रकाशित) ने महेक भगिनी नाम के उस समय के प्रसिद्ध उपन्यास के अनुसार की आलोचना से प्रसन्न होकर गुप्तजी को बुलाया । वे यहाँ १८९३-१८९८ ई० तक सम्पादक रहे पुनः १८९९-१९०७ ई० तक भारतविम्व के सम्पादक—एक प्रकार से सक्रिय । पिछले दो सप्तवारों के संपादन-काल में गुप्तजी का विकास अद्भुत तेजी से हुआ । कोई प्रतिभावान उर्दू का प्रसिद्ध पत्रकार हिन्दी का भी सफल बन उससे भी अधिक सफल पत्रकार हो सकता था—यह बात गुप्तजीके उदाहरण से सिद्ध हो सार रूप से सामने आती है । इतना ही क्यों ? गुप्तजी हिन्दी-उर्दू के मतभेद के कारण हिन्दू-मुसलमानों के मतभेद की आशंका करते थे । उनका कहना था कि दोनों भाषाओं के पत्रकारों को गुप्तजी के विरुद्ध लड़ना चाहिये—न कि आपस में ।

इतने पत्रों का (एक के बाद एक) संपादन करते हुए भी गुप्तजी कोहेनूर अबध एवं पल्लवारे जुनार रहबर, बिन्दोरिया यमन भारत प्रताप मयजन उर्दू-म-मोप्रस्ता जैसे उर्दू के प्रथम लेखी के पत्रों तथा दयानारायण निगम के संपादन में प्रकाशित 'जमाना' में भी लिखते थे । यह अन्तिम पत्र भी उर्दू के प्रमुख लेखकों का कृपा भाजन था । इसमें गुप्तजी ने सबसे अधिक लिखा । निम्न साहज गुप्तजी के अन्तरंगों में थे । गुप्तजी के निधन पर सबसे अधिक मार्मिक लग 'बहुत-सी लुबिबाँ थीं भरने वाले में' नाम से निम्न जी न ही लिखा था । और बलसाया यह कि गुप्तजी के लिये हिन्दी-उर्दू के मयन एक ही थे ।

हिन्दी साहित्य और विरोधकर भाषा के लिये केवल ६६ वर्ष की आयु में (१८ नवम्बर १९०७ ई०) गुप्तजी ने जो कुछ दिया उसकी स्मृति आज के मर्घ के दिनों में और भी अधिक उभर कर सामने आने लगती है । गुप्तजी ने हिन्दी के प्रश्न को मूल्य राष्ट्र और उर्दू को समाहित करने की

फारसी में भी उस समय मैं हिन्दी नहीं जानता था। वह हिन्दी का प्रबन्धक है उसमें हंसी-दिल्ली की प्रबन्धक बातें हैं हिन्दी कालाकाँड़ में स्वर्गीय प्रतापनारायण मिश्र के सम्बंधों में आई। हिन्दी कमकला भारतमित्र प्रेस १९३४ बि (१९०७ ई० XA ६ २८ २२ से० सेल्फ का बिच बूमरा से० कमकला से यशोदानन्दन अर द्वारा १९२२ ई० में प्रथम १२ पु० में अनुसूचित अक्षरों की कृति का परिचय।

बाल साहित्य

बिस्मिता प्रयास हरिश्चन्द्र प्रेम १८९९

सेल समाप्ता १८९९ (२४ पु०)

बोनों पुस्तकों पर सेल्फ का नाम 'रमिकन्मास वल' दिया है।

अनुवाद सर्पाक्षर चिकित्सा

अनुवादक बालमुकुन्द गुप्त कमकला भारतमित्र प्रेस १९५६

(१८९९ ई०) मूल बंगला पुस्तक 'सर्पाक्षर प्रतिकार' से०

रघुदेव रत्नावली माटिका

अनुवादक बालमुकुन्द गुप्त कमकला भारतमित्र प्रेस १९५६

(१९०७ ई०) X ० पु० १७ से० यह बूमरा संस्करण है।

मे समुद्रियों पर लेख प्रकट किया है। मा हरिश्चन्द्र द्वारा अनुवाद

कार्य पूरा करने के लिये। पहला सं बंगाली प्रेस १९५५ बि० में

पोम्पुचन्द्र अनु महेम भगिनी (१८५४ १९०५)

अनुवादक बालमुकुन्द गुप्त कमकला बंगाली प्रेम १९०६ ? बंगला

भी ० भागों में बंगाली प्रेम के भागी (यो० ब बमु) द्वारा ही १९०७ ई० में

१८८७ ई० में छपा था यह बहुत प्रसिद्ध हुआ। सेल्फ की संशोधन में

अनुवादक ने बिगी की जो भारतमित्र में १९०५ में प्रकाशित हुई।

देविम—गुप्त निबन्धक (१९५०) पु० ४३ ४६।

रामायण मुगोपाख्याय हरिदास

अनु० बालमुकुन्द गुप्त उर्दू में—रहबर प्रेम १८८० ई० हिन्दी:

कमकला बंगाली प्रेम १८९९ ई० १३२ पु० १८ से० अनुवाद

अनुवाद यह अनुवाद नहीं अपने हंस पर अपनी भाषा में दिया है।

रत्नवीरनामा अनु० बलीबरी प्रसाद मया बालमुकुन्द गुप्त—अनु०

का बीबनी मणि कमकला १ ०५।

विस्मयतां किमिव बालमुकुन्दगुप्तः

श्री कल्याणम्भ लोका

बाल बालमुकुन्द गुप्त ने सन् १९०५ में पं० देवकीनन्दन खत्री के बारे में पिता
 का हिन्दी का एक सुयोग्य लेखक को धार्य से ही कलासी में रखा पर
 हिन्दी के प्रती की उसे गुमनामी के हवाले करते हैं यह बड़ी धारण
 की बात है। यह प्रसंग उनके लिए है जिन्हें हम एक दृष्टि से हिन्दी का
 प्रथम उपन्यासकार कह सकते हैं, (१) और शिनक नाटकों के लिए महामना
 बालमुकुन्द मामवीय ने एकरित कहा था कि हिन्दी में नाटक लिखना पं०
 देवकीनन्दन से सीखना चाहिए। आगे चलकर बाबू स्वयमुन्दरदास कृत हिन्दी
 भाषा और साहित्य के इतिहास में वैयपीपकारक और सुवर्ण के समान्य
 सम्पादक पं० हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक पं० माधव प्रसाद मिश्र का बड़ी ही
 उल्लेख न देना पं० परमेश्वर दासी ने मुख्य होकर लिखा था इस बड़े से बड़ा
 पुस्तक पोथ में हिन्दी के इस उज्ज्वल विद्वान का नाम तक नहीं आया (२)
 अयोध्याप्रसाद खत्री को भी इस कथ में जगता नाम व उल्लेख न बाकर बड़ा
 दुःख हुआ जिसकी वजह उल्लेख पं० श्रीधर पाठक से एक वक्त्र में भी की।
 और तो और, मारने-पु द्वारा प्रकाशित हिन्दी की प्रसिद्ध पत्रिका 'विविधजन
 मुखा' में तो उनकी ही कृपा पर एक बालम की बातों नहीं किया (३)
 बाबू बालमुकुन्द गुप्त का जन्म पं० परमेश्वर दासी का छोटा और गरीबी
 का सांत्विक क्षेत्र वैश्य मायाका माया न था इसके पूर्व में साहित्य के
 इतिहास की सर्वोच्च का एक विविध ग्रन्थ भी प्रकाशित था। निम्नर
 प्राग बड़े हुए बरषों की दिग्गज में और अपनी प्रवृत्ति विमनस्यीयता
 में साहित्य का इतिहास बहुरा पाया अपनी पूरी दृष्टि से देना नहीं पाता और

उसके अनेक सम्पर्क साहित्य-मगीपी जाने समजाने अपेक्षाकृत गौण रह जाते हैं। पहिलों की वृत्ति में बुरीका सत्य बहुधा दृष्टिगत नहीं होता संभवतः इसी से नारन आस्टिन को कहना पड़ा कि इतिहास अपने मूल में कुछ सम्पर्कों का उमरे हुए प्रसंगों का केवल संकलन मात्र है और साहित्य का इतिहास भी इसका अपवाद नहीं। आधुनिक हिन्दी साहित्य में उत्तर भारतेन्दु-युग इसी प्रकार उपेक्षित रहा है। बहुतों ने तो इसे द्वितीय युग की उमड़झाड़ की पीठिका (४) तक कह जाता। परन्तु भारतेन्दु और आचार्य द्विवेदी के बीच की यह कड़ी अपनी संक्षम स्थिति में भी कम महत्वपूर्ण नहीं। इस युग के उपेक्षित साहित्यकारों का केवल वर्णन हुआ है उनके कर्तृत्व का सम्यक विवेचन और उनकी देन की महत्ता का उचित मूल्यांकन अब भी अनेक दृष्टियों से अपेक्षित है। यदि भारतेन्दु का आधुनिक साहित्य का बीजारोपण काम था तो उत्तर भारतेन्दु-युग उसकी अंकुर अवस्था। इस युग के उप-पूठ त्वागी साहित्यसेवियों ने भयकर भौंहियों सुपानों और समझौतों के मध्य इस अंकुर की रक्षा की और भारतेन्दु के काम को पूरा किया एवं जागे जाने वाले आचार्य द्विवेदी के लिए मृत्ति को समतल किया। उत्तर भारतेन्दु युग 'अराजकता का युग' (५) नहीं था इसका सत्य पत्र-पत्रकार पक्षघट नहीं थे सभी सहकर्मी थे सहचर भी जिनमें न कोई मुँह था न कोई शिप्य। सन् १८७१ में यदि भारतेन्दु ने हिन्दी को नई भास में डाला तो उसकी पक्की व्यवस्था करने का योग्य इन्हीं साहित्यकारोंको है। कवि बचनसुधा के धारण 'हरिपदमर्ति' 'नारि नरसम' और 'जलकी जगुतबाची' का उन्होंने पालन किया इन्होंने साहित्य को जातीय जीवन से संयुक्त कर दिया विदेशी शासन और शोषण का गोर विरोधकर स्वदेशी आन्दोलन को सुदृढ़ किया उन्हें के प्रतिरोध के समय इन्होंने हिन्दी को केन्दुमुभी बनायी जिस भाषा और जगह के साथ साथ हमारी सांस्कृतिक और सामाजिक परम्पराओं को स्वस्थ और मजबूत जीवन देकर 'हिय गुल' को मिटाया। संक्षेप में यह युग हिन्दी की ऐतिहासिक आवश्यकताओं की पूर्ति का युग था इस युग के पत्र और पत्रकारों ने इन प्रायः परम्पराओं की पूर्ति की वे हमारे साहित्य को दिग्भ्रात होने से बचाने के लिए आत्मिक स्तम्भ के समुदाय रहे। उत्तर भारतेन्दु-युग में ही अजोष्याप्रवाद नहीं ने गड़ी बीपी का पथ (१८८७-८९) प्रकाशित किया हरिश्चन्द्र मैत्रजीन और बंकिम ने मध्य के त्रिस परिप्लुत

‘गवर्नमेन्ट के विरुद्ध बहुत कड़ा लिखनेके लिए’ उन्हें ‘हिन्दोस्तान’ छोड़ना पड़ा। कांग्रेस के जन्म के साथ ही उन्होंने पत्रकारिता के क्षेत्र में प्रवेश किया था। देश के स्वतन्त्र राजनीतिक प्रश्नों और पहलुओं पर उन्होंने बेबड़-धोर निरांक सैरानी पसारई। बंग भंग आंदोलन से देश में जो जागृति की महार बायी थी उसे आगे बढ़ाने में भारत मित्र’ अग्रणी था। सार्ड कर्जन मुत्तजी के प्रतिभावक थे। उनके कुहरणों को केन्द्र गुप्तजी ने जितने चिट्ठे लिखे जितनी कविताएँ लिखीं उतने हिन्दी अन्ध के लिए नहीं। मुत्तजी के विरोध का परिणाम निकला कि ‘बैकपोपकारक’ जैसा पत्र भी जिसमें पहले सार्ड कर्जन का सम्बंध किया था उनका विरोधी बन बैठ और कहने लगा ‘करजम हरजन दिन रहे समय नियराया। अब पीछा छोड़हु नाब बहुत कसपाया’ मुत्तजी ने मिटोमारले मुपारों की भी कठोर धोर स्पष्ट आलोचनाएँ की। सन् १९०५ में कमरले के कांग्रेस महापिबेसन पर जो दावा भाई गौरोजी की अग्र्यप्रता में हुआ था मुत्तजी ने लिखा “यह खदेर फूट है कि अंग्रेजों ने भारत की तलवार ने जीता है—भारतवानियों की तलवार ने यह देश फटह करके अंग्रेजों के सुपुर्ब कर दिया था जिन हिन्दुस्तानियों ने अपना पून पानी की तरह बहा कर दिया है उनकी बात सुनने से तुम्हें क्या होती है किजनी बड़ी झगलता है किजनी बड़ी सज्जा की बात है। (८) बंग-ध्वज आम्बोसन पर उन्होंने लिखा कि यह इस देश का अन्तिम विप्लव और भापके लिए अन्तिम हथ है। बंग-विच्छेद पर २१ अक्टूबर १९०५ में भारत मित्र की टिप्पणी उनके प्रसन्न धोर सदुर देश प्रेम का अन्त्यतम उदाहरण है। बंगदेश की भूमि जहाँ भी बही है और उसका हरएक नगर धोर नाब भी जहाँ बा बही है और भारतवानियों के मन में यह बल जम गई कि धर्मजों ने भक्ति बाव करना बुधा है बुधल की बह नहीं गुनठे’ (९) सार्ड मिन्टो के स्वापन पर किजनी निभीकता न उन्होंने कहा कि प्रजा की इच्छा ने आप यहाँ क मानक निबन नहीं हुए। गिबसम्बु के चिट्ठे कलसयक ध्यंय के बाव साथ मुत्तजी क पाप्म और स्वदेश प्रेम क उन्मत्तम लघन है। से पर्वनर पुनर माहक की बसकी का जबाब देने के लिये उन्होंने पारसना ता बा लल पुनर माहक क माय’ लिखा। पत्रजों के द्वारा किये गये इन पर उनका गुन गोम उछ। ‘मुस्क की हासत बहुत तारीक होती या रही है। माता जनकपराय जेस में है माता माजपराय जसासन जाट जजिन मिह पर जसायनो का बार्ड। होय में आधो। जबाबनी और सायरो पर मानक —न्यायी धोर दोसक का जमाना अब नहीं है, गई

कविता मिलने को कहा जिससे निराश किसानों को धैर्य बने। पं० माधव प्रसाद मिश्र ने पं० श्रीधर पाठक की 'हेमन्त' कविता की कठोर आलोचना करत हुए लिखा था "पाठक जी इसमें धनतरंग रहस्यमय ध्वनि प्रणम और सुरति मृग तरु का वर्णन कर गए हैं। पर सबको और बाजारों में दुमिन्न-बलित बस्तुहीन बुद्धिर्ता को विस्तुम्भ भूस गए। 'यूनवन्त हेमन्त' में इन बेबारी को क्या बसा हुई कुछ न जाना।" ऐसा ही आक्षेप बाबू बाबूमुकुन्द गुप्त ने पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी की कविता 'प्रियबन्दा पर किया क्योंकि "राष्ट्रीय आचरण और सांस्कृतिक मरचेतना के प्रसार काम में श्रुतिमार्तिक कविता करता आत्महूनन है। पं० आलोकप्रसाद के कामधाराएँ पर उन्होंने जो कड़ी कटकार बताई वह भी इसका प्रमाण है। यह स्पष्ट है कि गुप्तजी के निबन्ध उनका काव्य और उनकी धर्म रचनाएँ उनके वेस प्रेम उनकी राजनीतिक चेतना और राष्ट्रवाद के पुष्ट प्रमाण हैं।

गुप्तजी हिन्दी पत्रकारिता के उन्मायक कहे जाते हैं। गुप्तजी ने हिन्दी पत्रकारिता के क्षम में एक वास्तविक परिवर्तन उपस्थित कर दिया। यह परिवर्तन केवल साहित्यिक ही नहीं व्यावसायिक भी था। पत्रकार के लिए सैद्धान्तिक बुद्धि, व्यावहारिक निष्पक्षता और चारित्रिक उच्चता का होना अनिवार्य है। गुप्तजी में यही बुद्धि, निष्पक्षता और उच्चता थी। उन दिनों हिन्दी पत्र के पाठक कम होते थे जो हाते थे व भी बल्पकाल के लिए। पत्रों को उस राजनीतिक दृष्टि के कारण उनके प्रति जम साधारण में संका और भय विद्यमान थे। यही कारण है कि उस युग के पत्रों को प्रायः आर्थिक दुर्दिन देखने पड़े। गवकी इसका समान थी—मन पत्र अर्थात्तव में समय पर निकल नही पाते थे। पं० प्रतापनाथप्रसाद मिश्र का आक्षेप इसी लिए बह हुआ। व बार-बार पाठकानिबन्धन करत गए 'घाठ मास बीत जायमान घर तो करतु पश्चिन्ता दान' आतृत्तम भट्ट के हिन्दी प्रदीप' के समस्त यही समस्या प्रमाण रही। उन्होंने पत्र बेगाकर पढ़ा न देनवाला छाहकों को 'मनम कजुम बीड़ाबुम' तक कह धर्म सम्पादकों को इससे आनमान करन के लिए मूर्खी तक प्रवर्णित कर दी। 'आक्षेप' और 'हिन्दी प्रदीप' इसी में मुभाँ गए—या भट्टजी के हो घरों में 'हाथ'। हमारे लिए रत्ना शिशोर्त मूल्य हो गई। कमरत क पत्रा बी दया भी यही थी। 'सार' । '।' जैन पत्र पाठकों के हान मान्य प्रति प्रयासनीय सूचना में बस भजने का निव न करते थे। प्रकाशन के एक ही बरं पत्रात

१८८० ई० में उस आदर्श की महात्मा के दिना बर होना पड़ा।
 मिन विनाम इसके बर हान पर आठ-पाठ आँसू रोना। यदि जयपुर मेने
 की महात्मा राज न हानी तो मारमुनिवि समाज हो जाता। यही
 बसा "उपनिषद्वादी" की हुई। पहिल दुर्गमिमान मिथ के गंगा म पाठशा की
 मानि। प्रारम्भ न ही जमनी गई। मरान पना के राम म देन मे
 भारतवासिना म गया गुहा है जो दूबर बना म हुइन म भी नही मिनया।
 इस परिस्थित म यदि हम बाबु बाबुमुकुन्द गुप्त की मन्तामन बना का मने
 गा बर अरिह घल्लरी गरुह गच्छ हो मरुभी। गुप्तजी न भ्रमन रोगम म
 भारतमित्र की मदेव ही आयनिर्भर रता। जयन्ताव प्रमाजी दुर्गमि (भारत
 मित्र के मन्तामन) ने ममल मार गुप्तजी पर छाया पा—गुप्तजी ने इस
 रोगम म उस जमाया कि भारत मित्र की कभी भी पार प्राधिक मरुट
 म नही मुकना पना। कभी-कभी तो मन्तामनीय विषय के घालि मरुट
 भारतमित्र बर छात्र म प्रावसकता पढ़ने पर बगोत्र और मुकुन्द भी कर मरु
 थे। उसन भ्रमना मरुट इस की सामान्य जनता म रता—छोटी न छोटी
 पटना उसमे प्रशमिन् होती थी। यही कारण था कि उसका प्रचार और
 प्रभाव अगिल भारतवर्षीय रता। गुप्तजी के महात्माक मन्तामन बाबु माताम
 राम गढ़मरी ने दिया है "पहिल मन्तामन" के मन्ता म भारतमित्र के
 बाहुक पर मरु थे। गुप्तजी की निधीक मन्ताम न मरु प्रमन्त हा पा और
 भारतमित्र का गुप्त प्रचार बड़ा। भारतमित्र का मन्ताम मरुता का बाग्य
 गुप्तजी की गुप्त मन्तामन नीति थी। एक ओर उस राजनीतिक कर्षा
 दूनरी और मार्गिक बाह बिहार गा नावरी मार "गाना" का उभा देवी
 सामाजिक दुरीहीनी भी भारतमित्र के बिच रता था।
 गुप्तजी के मन्तामन—अन्तिम का एक ओर पदम इच्छा है। गुप्तजी
 के समय में ही की मन्तामन रता म सामाजिक इस समय और पाह बाह
 बिहार बना ही मरु था। उपनिषद्वादी २६ मिनबर १८८१ म बसाद रता
 का सामाजिक विरोध दीक म एक मन्ताम मन्तामिक पत्र रतामिन रता
 था इस बिधि पर प्रचार छाया है। मार गुप्तमिनि का बिषय भारतमित्र न
 रता बिचबनमुखा और बिहारकपु का भ्रमन गा मिन है ही
 कि ही प्रीत और मन्ताम मन्तामन का बाह बिहार भी मन्तामनक कष बाकिह
 मिक था। उपनिषद्वादी का बिहार हो जाय कभी रता न मरु। भारत-
 मन्ताम और मारमुनिवि का बिहार न है मिन को मरुट बना। भारतमित्र

और बिहारबबू का भगड़ा भाषा के प्रश्न को लेकर एक किर्तिकावाद बन गया
 मुन्तजी ने इन बिबाहों की गति ही बरस ही उन्होंने इनको कुछ साहित्यिक
 भूमिका पर स्थित किया 'बाहे बावे जयल उत्पद्योष' नामा सिद्धांत धपताया।
 मुन्तजी का जो बिबाह 'सेप' छत्र लेकर प० लज्जाराम महुता से और
 'अनस्मिरता' को लेकर जो पं महावीरप्रसाद द्विवेदी से हुआ वह धपने
 मूल में नैदानिक था। यह सही है कि इस बिबाह में दोनों पक्षा की ओर से
 पीछे असफल आक्षेप किये गये अघिष्ट भाषा का प्रयोग भी हुआ पर यह
 सब एक कृत्रिम घोर मिथ्या आवेश का परिणाम था बिबाह का मूल हेतु
 नहीं। 'छप संबधी बिबाह' का करार मुन्तजी ने घत में महुताजी की बरालत
 की प्रतमा की। महुताजी ने इस बिबाह को एक उत्कृष्ट साहित्यिक बिबाह
 के रूप में स्वीकार किया। इसी प्रकार 'अनस्मिरता' छत्र के घोर बिबाह
 के घत में सब कुछ मूलकर कानपुर जानपर मुन्तजी द्विवेदी जी से मिछने
 गए। मुन्तजी द्वारा प्रवर्तित यह बिबाह अतएव ध्वंस के वितरकावाह न होकर
 भाषा के प्रपाय घोर उचित धन्यपाम से अधिक संबध रखते थे। मुन्तजी ने
 हिन्दी पत्रकारों के समक्ष साहित्यिक बिबाह की एक नैदानिक भूमिका
 प्रस्तुत की—बाहे उसका पूरा परिणकार उस समय न हो सका हो। भाषायें
 महावीरप्रसाद द्विवेदी मुन्तजी के मिर्षों में थे। उनकी अनक रचनायें मुन्तजी
 ने प्रकाशित की थी उनका पारस्परिक व्यवहार और पत्राचार भी अच्छा था।
 भाषायें द्विवेदी न जब सासा सीताराम की कड़ी आलोचना की तब
 मुन्तजी ने अनक बार उन्हें प्रकाशित किया। प्रकाशित ही नहीं उन्होंने अपने
 मानिक तर्क से कह दिया कि यदि सासा सीताराम बाहे तो उनका उत्तर
 है। भाषायें द्विवेदी में जितनी कमठना की उतनी ही अधूम्यता भी।
 इन अधूम्य और रज्ज्यापारी प्रकृति के कारण ही उनका वास्तविक उस
 युग के अनेक उद्भट साहित्यकारों से नहीं बैठे। काफी नागरी प्रचारिणी
 सभा में उनकी प्रवचन भी ही। ये भाषक प्रसाद विध में भी उनका बार
 बिबाह नैपथ करित का करार पला और बाबू बालमुकुन्द मुन्त से अनस्मि-
 रता का करार। भा द्विपागीराम बाजपेयी से लिया है कि स्वयं भाषायें
 द्विवेदी ने यह स्वीकार किया "मेरा पसन्दी में यह अनस्मिरता छत्र निद्रम गया
 था मैं उस समय भी उस समय समझता था और आज भी समझ रहा हूँ। मुन्तजी
 के भी बिबाह अनक पक्ष पर विनाश मज्जानिक होने का कारण उनका अंत कभी
 ही नहीं हुआ। ये भाषकप्रसाद विध ही मूल पर उनका युग घोर वन्य पटनीय
 मुन्तजी एक निरंतर पर निरन्तर आलोचक थे। भाषकप्रसाद उनसे पा

मुन्तजी का युग हिन्दी-प्रेम का युग था उस समय के सभी लेखकों ने हिन्दी समा का पन्थ पड़ा घुस लिया था। उसी भारत के प्रत्येक नगर में हिन्दी घोर नागरी प्रचार की उत्कृष्ट संस्थाएँ और मभाएँ बनीं। कसकटों के पत्र भीर पत्रकार भी हिन्दी घोर नागरी के बिराद एवं व्यापक आंदोलन के भंग और माध्यम बन गए। उन दिनों यह हिन्दी प्राप्ति में आज की भाँति हिन्दी का विरोध न था। महाराष्ट्र, गुजरात और बंगाल हिन्दी के परम समर्थक थे। 'सार-मुपनिषि में प्रकाशित (वर्ष १ अंक १४) हिन्दी भाषा केत में हम दृष्टिकोण का परिचय मिलता है — 'वैद्य की उन्नति' और निष्कपट निर्दोष सम्यता की वृद्धि' पर जब हम सोचते हैं तो हमारी दृष्टि हमारी भाषा पर पड़ती है क्योंकि जब तक निष्कपट विमुक्त भाषा की उन्नति नहीं होगी इसी से उचित है कि हिन्दी की उन्नति करें। हिन्दी प्रचार का यह मंत्र भी भारतेन्दु ने ही दिया था। प्रचार की हिन्दी बहिनी समा के उद्घाटन पर उन्होंने भाषा की उन्नति को सब उन्नति का मूल बताया था। 'हिन्दी प्रवीण' के उद्घाटन उत्सव पर उन्होंने कहा था—

धन्य दिवस जो यह पुरो

हिन्दी—हेतु समाज

भारतेन्दु ने भाषा नीति पर ही राजा विध प्रसार 'वितारे हिन्दी' का प्रति कार किया। 'वितारे हिन्दी की हिन्दी पत्रपत्री तो वह हिन्दी का आरम्भ था होता। पर उस युग का यह हिन्दी आंदोलन राष्ट्रीय आंदोलन की एक संयुक्त धारा थी। सार मुपनिषि 'उचित वक्ता' और 'भारतमित्र' ने मुसकर इन आंदोलन में भाग लिया। 'सारमुपनिषि' की तो वही प्रतिज्ञा थी 'यथा माध्य देव प्रतिनिधि स्वरूप होकर कर्तव्य साधन में निवृत्त रहना' क्योंकि 'आयोचित' में हिन्दी भाषा का भी ऐसा काम कारखाना सम्भव है कि बिना मातृभाषा की उन्नति के मापारण बेसोमति होना सम्भव है। 'उत्तर सन् १८८८ से ही भारतमित्र ने भी हिन्दी प्रचार और आंदोलन प्रारम्भ कर दिया जिसके फलस्वरूप भरत जैन उर्दू के सहर में भी दरनागरी प्रचारिणी मभा बन गई। इस जोष का उदाहरण काद्योत्रमात्र गरी का वह पत्र है जिसमें इंग्लैंड में भी हिन्दी आंदोलन की समाह की गई। 'बेसोमकारक' और 'मुदरन' के सप्ताहक पं० भाष्य प्रचार विध की भी हिन्दी और नागरी के प्रचार में लगे थे। 'मुदरन' में तो उन्होंने उन्मत्त और वृद्धी लिखन की प्रेरित करने के लिए लोगों

त्मक मगलन और ऐक्य का समर्थ और एकमात्र माध्यम मिला था। उससे भी पूर्व 'राजराजमोहनराज' के लो बगलून' उपिका का हिन्दी संस्करण भी निकामना चाहता था। 'भारतमित्र' की आर्थिक सहायता कसकते के बड़े बाजार के बगामी मजबूत बाबू निम्न योपाल मल्लिक ने कई मास तक की थी। भारतमित्र प्रारम्भ में ही हिन्दी प्रचार का पत्र रहा। गुप्तजी ने जल्दिस प्रारवाचरण मित्र के 'देवनागर' नामक बहुभाषी पत्र का धूब साज दिया। सर गुरुदास का नागरी प्रेम बहुत कुछ उन्हीं का परिचय था। गुप्तजी अपने समय में योपाल के शीरीक्षक थे।

उनकी दृढ़ मान्यता थी कि हिन्दी और उर्दू का पृथक् भाषाएं नहीं हैं। उनका पारस्परिक विरोध मौखिकियों का विरोध है कारण उर्दू हिन्दी से घटत नहीं है। गुप्तजी ने स्वयं इसका निर्वाह अपने कैलेंडरों में किया है। डा० नत्थन मित्र के छबों में उनकी भाषा में किसी किसी स्थान पर तो कबल अन्तर इतना ही है कि हिन्दी में निम्नत समय उर्दू पद्यका फरसी पद्यों के स्थान पर हिन्दी पद्य रख दिये गए हैं। 'उर्दू में आज विस्मय से द्विवास्वान में कई बार तार बौक जा सकता है। कई एक पंटों में बसकते से निम्नत तक स्वेमल दुम पार हो सकती है। यही वाक्य हिन्दी में भी गुप्तजी ने प्रायः ज्यों का त्यों ही रखा (पीछे मत कैकिए विषयभू का बिट्टा) वं भाबरमल्ल धर्मा के पद्यों में उस समय गुप्तजी ने भारतमित्र द्वारा बनी पीरला से उटकर नागरी हिन्दी विरोधियों के मुतकों का नाथि कार उलर दिया था। उनकी बहुवनादून 'उर्दू को उत्तर' कविता एवं उनके मोलवी का ऊँ नागरी और उर्दू 'उमर' अलर मुमममानी माराजी आदि मय इनक प्रमाण है। उमदी रशील निबल उन्होंने पैमा अगवार के एक मय के उलर में लिगा था। गुप्तजी कहते हैं—'कौन कहता है कि हिन्दी मुर्दा बरान है पैमा अगवार रहता है कि हिन्दी के केतरम्बुट बोम्ने मे बम ते—हम कहते हैं हिन्दी अभी बीमन है। हिन्दी के कई अगवार मा अगवार में भी अधिक बिकन हैं। भारतवर्ष में कही भी नागरी का सिगाप होना गुप्तजी उमर मूनाइ उलर देन। कबभाषा और नागरी विवाह में भी उम्हान हिम्मा दिया था। व हिन्दी के एक मानक रूप के समर्थक थे। या भारतमित्र में गुप्तजी के भाषमन नागरी की गरी बानी में कविताएँ देन गई थी। व स्वयं लिखा करता था। पर जल बजभाषा के रहे। व मरा उमरी में बमन थे। (उपन्नाथ प्रगाइ चनुउरी)

गुप्तजी भाषा के धनी थे। आचार्य महाश्वर प्रयाग द्विजेनी ठक ने स्वीकार किया था कि भवन युग में सबसे अधिक द्विजी ब हो लिया करत थे। गुप्तजी न भाषा का अप्रभु परिवार दिया। प्रयाग-गुण सम्पन्नता के साथ साथ यह। जो महान पर कठरी चोट का मध्य और सावधान तो करनी थी पर धुंधल का चाहन नहीं—(आचार्य रा० च० गुप्त) उनकी सिपता थी। रामचन्द्र वर्मा और प० हिमारी नाम गोस्वामीन उन्हें अपना भाषा-गुरु माना है। द्विजी बयवामी के मन्त्रांक महान न ही उन्होंने भाषा परिवार का कार्य प्रारम्भ किया। प० अपुननाल पदार्थों न भवन सम्पन्नता में निता है कि "द्विजी बयवामी के पूर्व भाषा की काना पम" हो गई थी। उस समय के व्यवस्था की भाषा के प्रतिनिधि इतिहास मानना पड़ता है कि यह एक द्विजी के सापुनिक मास्थि का मौला प्राय उन दिना के मेगवों के मन्त्रिक में हो था। द्विजी बयवामी के मन्त्रांक की कनन की रात और भाषा निमय की लड़ाई इतिहासिक महत्त्व रखती है। प० बहरीनारायण पोषरी द्विजी-बयवामी का भाषा महान की टहमान बहा करत थे उस टहमान का कोई निराला बाबू बालमुकुन्द बप्प का छान के दिना नहीं निहन्ता था। द्विजी बयवामी के अन्तर भारवचन के मन्त्रांक तक उनकी भाषा परिवार और निर्माण की यह मापना पमती रही। गुप्तजी का मराठन कान (कनकने में) लबनय पोहच-वा-ह बतों का है। इस अण समय में भी उन्होंने जो कार्य किया वह उनका अद्भुत धर्म और प्रतिभा का परिचाय है।

गुप्तजी का यह अण साक्षात्कारी बतें हैं। जी सिपायी हरि न बहा है कि उनका नाम पार मा हो "यह युग का महान स्वाम हा भाषा है" आज यह भाषा वही बत घेनी बतें लगी नहीं आज यह पर और त्याग भी वही यह मरा और मापना बतें। मरौन जो न उठ हो बहा का उठान घनय प्रयाग। आज द्विजी उस पर पर प्रतिष्ठित है विपदा पन उठाने और उस युग के मास्थि मन्त्रिकों न देना था। द्विजी की इन दोर-नाका न कनकने का महान भी कम नहीं है। कनकने के इस महान के दोर-नाका है—बाबू बालमुकुन्द गुप्त उनका जीवन आस्थि दोर कटार।

भडा के वे सुमन और भावनाओं की ये पँखड़ियाँ उन्हीं के कर्म-क्षेत्र भाव-क्षेत्र में उनके अनुसरण की शक्ति की प्रार्थना करत बासे उनके साहित्यिक अनुकर्तों द्वारा आज घपित है —

हे भारत के वक्त भारती के गायक
हे सती महान ।

समुद्र समपित श्री-शरणा में
मधुमय भाव सुमन धम्माल ।

विद्याविनोद रसपुष्टि वाग्मिनास
सम्पादन प्रसिद्ध भारतमित्रकीर्ति ।
स्मृत्वा परां कृतमयी विनयाभ्युदात्ता
विस्मर्यतां किमिदं बाळमुकुन्दवृष्ट

(पे० श्री गिरिधर सरा)

सद्वर्ध-निर्देश

- १ दामगा नरेश की इच्छानुसार सन् १८८० तिमित अमृत पत्र
- २ विद्याधी का पं० एमजेमाल जमा स्मारका
- ३ बाबू राधाकृष्ण दास—हिन्दी सामाजिक पत्रों का इतिहास
- ४ का० उदयभानु सिंह—पं० महेश्वर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग
- ५ उचरिवत्
- ६ बाबू नरककिशोर गुरु के दास—
- ७ पं० श्रीधर पाठक की लिखे पत्र से : बाबूमुकुन्द गुरु स्मारक प्रथम पृ० ४१
- ८ बालमुकुन्द गुरु निबन्धमाला
- ९ उचरिवत्—संग 'उच्छे'—पृ० २१४
- १० श्री नरककिशोर गुरु के व्यक्तित्व पत्र संग्रह से पं० हज्जामल जमा ने गुरु निबन्धमाला में इस सद्वर्ध की उद्धृत किया है—पर कुछ पंक्तियाँ छोड़ कर जिनमें गुरुजी ने मुसलमानों का विरोध किया है—दृश्य पृ० १४०)
- ११ बाबूमुकुन्द गुरु निबन्धमाला—प्राया का अन्त—पृ० २०३
- १२ दोन कृत—'एम्पायर इन एशिया' में टी० मुन्ते की जीवनी के अन्तगत : पृ० ४६६
- १३ बाबूमुकुन्द गुरु निबन्धमाला—अन्त तक अर्जुन पृ० १८१
- १४ बाबूमुकुन्द गुरु स्मारक प्रथम—पृ० १४४
- १५ अर्जुन—३१ अक्टूबर १९६४
- १६ पं० महेश्वर मिश्र निबन्धमाला—पृ० १६
- १७ हिन्दी प्रदीप—दिसम्बर १८८८—पृ० १३
- १८ का० कृष्णदेवराय मिश्र के प्रबंध से—अपठका की हिन्दी पत्रकीर्त्य : उद्भव और विकास
- १९ बालमुकुन्द गुरु स्मारक प्रथम पृ० १४६
- २० बाबूमुकुन्द—सर्वम जक १३—हिन्दी भाषा—पृ० १४३
- २१ गुरु निबन्धमाला—पृ० १४३
- २२ हिन्दी की उत्पत्ति—भारतवर्ष ६४ १९०१
- २३ उचरिवत्
- २४ भाव की भाषा—सन् १९०४—भारतवर्ष
- २५ गुरु स्मारक प्रथम—पृ० १४३
- २६ उचरिवत्—अमृत पत्र का समाप्ति
- २७ हिन्दी साहित्य का इतिहास—पं० अमृत पत्र
- २८ गुरु स्मारक प्रथम—पं० अमृत पत्र १८८३ का समाप्ति
- २९ टी०—श्री विद्याधी जी का समाप्ति

गुप्तजी की भाषा और भाषाविषयक प्रतिपत्तियाँ

श्री सुर्यदेव आश्री

भाषावैज्ञानिक मंचों में श्री राममुकुन्द गुप्त की हिन्दी भाषा-विषयक प्रतिपत्तियाँ दो दृष्टियों से विचार्य हैं। सर्वप्रथम उनके द्वारा विभिन्न भाषिक धायामा पर व्यक्त किये गये विचारों को हम अपने सामने परीक्षा और बिस्लेषण के लिये रख सकते हैं। भाषा विषयक अपने विचारों को गुप्तजी ने हिन्दी भाषा की भूमिका' हिन्दी भाषा ब्रज-भाषा और उर्दू 'हिन्दी में बिन्दी' हिन्दी की उत्पत्ति' भारत की भाषा' एक छिपि की जड़गत देवनागरी पक्ष' हिन्दुस्तान में मकरस्मृत्युत्पत्ति' आदि स्तम्भ और शीर्षकों से व्यक्त किया है।

इन समस्त विषयों पर व्यक्त किये गये उनके विचारों के निर्धारण में कई प्रकार की स्थितियाँ और सीमाएँ कार्य करती रही हैं। हिन्दी और उर्दू में निकटतया संबन्ध होने के कारण उन्होंने भाषा के बिस्लेषणात्मक स्वरूप का तो परिचय दिया है किन्तु उनकी ऐतिहासिक परम्परा का वैज्ञानिक और तुलनात्मक अध्ययन करने में वे असमर्थ रहे हैं।

हिन्दी भाषा की उत्पत्ति और स्वरूप में संबन्ध उनके निम्नलिखित विचार विचार्य हैं —

वर्तमान हिन्दी भाषा की जन्मभूमि बिस्ली है। वहीं ब्रज भाषा से बह उत्पन्न हुई और वहीं उमरा नाम हिन्दी रखा गया'।

यद्यपि हिन्दी की नींव बहुत दिनों से पड़ गई थी पर हमका जन्मकाल पाण्डुरंग के समय में माना जाता है। मुगल सम्राट् शाहजहाँ के बनाव माह जहानाबाद के बाजार में हमका जन्म हुआ। गुप्त-निबन्धावली—पृ १०५

मुल्तली के उद्योग विचार तत्कालीन प्रतीय नहीं जान। इस समय तब हिन्दी के नामकरण तथा उसके ललितानिष्ठ रूप पर चर्चा चलन लगी थी। पच्छिमी हिन्दी में ब्रजभाषा और गरी बोली के परिश्रमिण जान के कारण जाना के एक दूसरे में महत्त्व प्राप्त मन बाँध कर अन्य उनके भाव में लगन को यह प्रवृत्ति बर्द्ध कारण से उत्पन्न हुई। तत्कालीन हिन्दी के साहित्यकार बड़े सम्बन्ध समय तब रहित थे ब्रजभाषा और तब में गरी बोली का साध-साध प्रयोग करने रहे। गरी बोली में ब्रजभाषा का साहित्यिक रूप पण्डित गुणवत्तन होने के कारण उन मोटा के निम्न ब्रज में गरी बोली का आबिर्भाव मान्य माना महत्त्व का जो समय-समय पर मुद्रा की उभापिष्ट प्रकाशना को नहीं समझते थे। बालुत गरी बोली का ब्रज में प्रयुक्त निम्न रूप समकालिक होकर भी साहित्यिक प्रयोग में बाद का है। गरी कारण से कुछ मोटा जिनमें मुल्तली भी है गरी बोली का ब्रज में उत्पन्न जान लगन प। इस भाव्य कारण का दूसरा कारण नामकरण से संबन्ध है। कुछ भाव्य ब्रज का गरी बोली और उसमें प्रविष्ट हिन्दी के आस-पास की बोली को गरी बोली ब्रज पर पुकारना इसलिये समझ करन प कि उनमें समानता एक में दूसरी भाषा की उत्पत्ति हुई।

हिन्दी भाषा की भूमिका दीवत मण में भी मुल्तली के विचार दापपूर्ण हैं। उ जान ब्रजभाषा में पारमो अरबी मुक्ती आर भाषाभा के विमल में हिन्दी का आबिर्भाव माना है और उस हा बाउ में गूँ और हिन्दी इन का क्या में विनियत और विभक्त हाउ बताया है।

उनके अनुसार गूँ मौला के मुक्ती का मन कारण हिन्दी का अरबी निरति में लिया जाना है। गूँ के विमल और हिन्दी के निम्नो अस्थिर के विमल में साहित्यिक अस्वास्व के कारण को उत्पन्न करन गूँ उत्पत्ति उभा मण के गूँ १०३ पर कहा है— समकालीन भाव्य पण्डी पाणिनी कारण अस्वास्व में निम्न में समकालीन उभापण अस्वास्व में पण्डी पोषा लिया। १८८५ में कहा है गन्तुवाही के उभापण तब तब एक एक भाव्य अस्वास्व में पण्डी उभापण पोषा पर १८९३ और उनमें विनियत हा बाव का उत्पत्ति करन।

गरी मुल्तली न अरबी लिपि का प्रयुक्त अस्वास्व माना है। का १८८६ के विचार का अरबी लिपि में गरी की पण्डी निरति कहा है।

गुप्तजी की भाषा और भाषाविषयक प्रतिपत्तियाँ

श्री सूर्यदेव साखी

भाषावैज्ञानिक मर्मार्थ में श्री शासमुकुन्द पुस्त की हिन्दी भाषा-विषयक प्रतिपत्तियाँ दो दृष्टियों से विचार्य हैं। सर्वप्रथम इनके द्वारा विभिन्न भाषिक भाषामों पर व्यक्त किये गये विचारों को हम अपने सामने परोक्षा और विश्लेषण के लिये रख सकते हैं। भाषा विषयक अपने विचारों को गुप्तजी ने हिन्दी भाषा की भूमिका, हिन्दी भाषा का भाषा और उर्दू, हिन्दी में लिखी हिन्दी की उत्पत्ति, भारत की भाषा, एक सिपि की अक्षरत, बेबनामरी का भाषा, हिन्दुस्तान में एकरस्मुल्लसत आदि स्वयं और धीरे-धीरे व्यक्त किया है।

इन समस्त विषयों पर व्यक्त किये गये उनके विचारों के निर्धारण में कई प्रकार की स्थितियाँ और नीमाएँ कार्य करती रही हैं। हिन्दी और उर्दू में निकटतया संबन्ध होने के कारण उन्होंने भाषा के विश्लेषणात्मक स्वल्प का तो परिचय दिया है किन्तु उनकी ऐतिहासिक परम्परा का वैज्ञानिक और तुलनात्मक अध्ययन करने में वे असमर्थ रहे हैं।

हिन्दी भाषा की उत्पत्ति और स्वल्प में संबन्ध उनके निम्नलिखित विचार विचार्य हैं —

'बनवान हिन्दी भाषा की जन्मभूमि हिस्नी है। वही आज भाषा से वह उत्पन्न हुई और वही उसका नाम हिन्दी रखा गया'।

'यद्यपि हिन्दी की नींव बहुत ज़िनों से पड़ गई थी पर इसका जन्मकाम याहजहाँ के समय में माना जाता है। मुगल मन्दाद् याहजहाँ के बसाये शाह बाजार में हमका जन्म हुआ। मुगल निजामादमी—पृ १५

गुप्तजी के उसका विचार गन्धमग्गन प्रतीत नहीं होत। इस समय तक हिन्दू
के नामकरण तथा उसका ऐतिहासिक रूप पर चर्चा समाप्त होती थी। अभिप्रेमी
दि ११ में ब्रह्मशास्त्र और गार्ह्य होमी के परिचालित होन के कारण जाना जा
एक दूसरे में सहज भाव में न बाध कर अन्य उनका भाव में इनकी जो पर
प्रवृत्ति कई कारणों से उत्पन्न हुई। कथनमय हिन्दू के साहित्यकार बह मन्त्र
समय तक इतिहास में ब्रह्मशास्त्र और यज्ञ में गरी बानी का साथ-साथ प्रचार
करते रहे। गार्ह्य बानी में ब्रह्मशास्त्र का साहित्यिक रूप अधिक पुरातन होन
के कारण उन भाषा के नियम बह में गार्ह्य बानी का आधिकारिक मान नना
सहज था जो समझाती समूह की ईसाईय प्रचारिता को नहीं समझत थे।
परन्तु गरी बानी का बह में मरवा धिष्ट रूप समझानिक होकर भी
साहित्यिक प्रचार में बाध का है। "जो कारणों से बह मोक्ष विनय गुप्तजी
भी है गरी बानी का बह में उत्पन्न होन इनका है। इस भाव्य भाषणा का
दूसरा कारण नामकरण में सहज है। कुछ मोक्ष बह का गरी बानी और
उसके प्रतिकूल शिल्पा के नाम पाम को बोधो को गरी बानी बह कर पुकारना
इसलिए पदार्थ बह प कि उनका धनधार एक में दूसरी भाषा को
उत्पत्ति - ६।

इस तरह हिन्दी की उत्पत्ति और उर्दू से उसके सम्बन्ध पर समुचित प्रकाश न डाल कर भी मुत्तजी ने प्रारम्भिक वर्षों में हिन्दी की सिपिजन्य भाषाओं को सही रूप में प्रस्तुत किया है। इस परिणति का मूल कारण जेम्सों की सिपिजन्य नहीं तत्कालीन सरकारी नीति भी थी। मुत्तजी ने इस ओर ध्यान नहीं दिया है कि यह मूलतः शासकीय दृष्टिकोण का परिणाम था।

जाने बस कर मुत्तजी ने यह स्पष्ट किया है कि 'इस समय हिन्दी के दो रूप हैं। एक उर्दू वृत्त हिन्दी। दोनों में अर्थों ही का नहीं बिपि-भेद बड़ा भारी पड़ा हुआ है। यदि यह न होता तो दोनों ही रूप मिल कर एक हो जाते'। 'हिन्दी भाषा की भूमिका' पृ० ११०। बिपि और अर्थों के भेद के कारण सड़ी बोली के दो रूपों का विकास दिव्याना वैज्ञानिक दृष्टि से उचित है।

'हिन्दी भाषा' शीर्षक अपने दूसरे संस्करण में मुत्तजी ने इसी विचारों का दूसरे रूप में प्रतिपादन किया है और उससे यह स्पष्ट होता है कि हिन्दी कहने से उनका उत्तरार्ध छोड़ी बोली से ही नहीं बसित उन समस्त भाषा-रूपों से है जिन्हें हम अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास में प्रथम बोलते हैं। यही कारण है कि उन्होंने 'पृथ्वीराज रासो' के भाषा-रूप से हिन्दी के सड़ी बोली रूप को विकसित हुआ दिखाया है।

इसी क्षेत्र में उन्होंने अर्थों की प्रायोगिक उपयोगिता पर भी अपने कुछ मटीक विचार व्यक्त किये हैं जो वैज्ञानिक दृष्टिकोण के अति निकट हैं। निश्चय ही हर भाषा के राज्य अपनी प्रकृति में कुछ वैसी विचलताओं को समाहित किये रहते हैं जिसकी व्यवस्था या अर्थसिद्धि उनके समान पर्याप्त बाल अन्य भाषाओं के भाष्यन से नहीं हो सकती। यही कारण है कि थोड़े आदि साहित्यिक विमर्शों के साथ ही आदमान्दरी के वास्तविक मोर्क आदि आधुनिक भाषावैज्ञानिक यह मानते हैं कि सभी राज्य अनूद्य नहीं हो सकते।

इस अर्थ में अपने विचार व्यक्त करते हुए मुत्तजी 'हिन्दी भाषा' विषयक भाग (पृ० ११३) में कहते हैं—मध्याम योग मुलतान यासून पादि अरबी के राज्य हैं। पञ्जर, कमान रूप राज्य मानवादे कुरान तेम तेज आदि पञ्जरनी के और उजबक तुर्की का राज्य है। इस में कई एक नाम हैं, जिनका अनुवाद कुछ हो ही नहीं सकता। कई राज्य ऐसे हैं कि

उनका अनुवाद किया जायता कई-कई पत्तियों लय जायें तो भी बर्ध स्पष्ट न हो। मुसलमान को यदि पण्ड बहि बाबा महाशय या गणपति मिलता तो वह बर्ध कभी मिश्र नहीं होता या मुसलमान या मुसलमान विगन न होता है। बर्धादि मुसलमान घर से उमरी मुसलमानों का टाट भी तो मोनूर है।

एक स्थल पर भी मुसलमान कभी-कभी धन क मिलता हो जान है। एकर घरों को गहरा न न जोड़ कर उद्धार या उन पारंगी न जोड़ा है वह मनुष्य न दिव्यो क अनिष्टाधिक विनाश मून का न जोड़ जान का परिणाम है।

कन्द को भाषा का मनुष्य मनुष्य जीव मनुष्य भाषा क लान करा में दिखाकर बरम भाषा-कन न बरम भाषा को उलझ हाट दिवान को बरम कर उद्गति इस मनुष्य में मनुष्य मिलेय न हाट कहा है। बरुन जय्य बरुन ने मीना भाषाओं को विनाकर विपदा बनाया है (११५)। बाट म न पुन धान उन्म विचारों को पुनरावृत्ति करन गुण बहुर है। मनुष्यपान क बहि बरुन एक इन मीना मनुष्य को भाषा में बहिना करन है। मनुष्य बरुनाया का बरुना उन पर बहुर ही जल हुआ। (पृ० ११६)

दोरी यह स्पष्ट नहीं होता कि भाषा मनुष्य को बहिनाया करा है। एक बार तो बरुन को भाषा न ऊपर उद्गति बरुनाया का विविध होन बताया है। पुनरी भाषा न बहुर है कि मनुष्य बरुनाया का बरुना उन पर बरुन हो बरुन हुआ। निरुक्त हा उद्गति इन बरुन न बहुरी यह स्पष्ट है कि बरुन भाषा मनुष्य भिन्न बरुनी भिन्नाय रगता की।

बरुनाय और बहिनाय मनुष्य को भाषा होन क बाण्ड एक मनुष्य या बरुन कर उद्गति मनुष्य मनुष्य मनुष्य भाषा न उद्गति बरुनाया न भिन्ना क का मिलता या। यह बरुनाया मनुष्य का हो मनुष्य इन मनुष्यों—मनुष्य क विवेक मनुष्य को भाषा न होकर मीनी कई भाषा की। बरुनाय दिवार मनुष्यपान में लय बहिना को बरुन बहुरी बरुनाय की या बरुन बरुनाया मीना कर बहिना क बरुन की रचना का काम कर लय में। बरुनाय का बरुनुनी बहिनाय बहिना का परिणाम है।

दोरी न इन स्पष्ट और बहिनाय को बरुनी मनुष्य नहीं मनुष्य है। बरुनाय का न है कि एक मनुष्य बरुनाया पूरे भाषा को उद्गी उद्गति भाषा को

वैस सम्भूत : 'पर हिन्दी के कवि अपनी ब्रजभाषा ही में कविता करते रहे । भोर क्यों न करते ब्रजभाषा ही तो उस समय माछ की भाषा थी । यहाँ तक कि बङ्गदेश के प्राचीन कवियों की कविता भी ब्रजभाषा ही में है । अब बड़े दिनों स भाषुनिक बङ्गभाषा में कविता होन लगी है ।

इस क्षेत्र में भाषा की समस्या के विवेचन स प्राचिक साहित्य की व्याख्या का प्रयास ही किया गया है ।

अपने ब्रजभाषा धीर उद्गु नामक क्षेत्र में वृत्तजी ने लोहा की कविताओं से उत्तरव प्राप्त करके यह बताने की चेष्टा की है कि किन प्रथिमाओं से उद्गु ब्रजभाषा स विकसित हुई । कुछ छवों को भरखी-छरखी का ठाङ्क-मरोङ्क कह कर न जाने बताते हैं— दिस्ती बाधरे क हिनुओ क बरों में यह शब्द बोले जाते हैं । पर मुसलमान कम बोसत हैं धीर सिपने में सब गँवारी समझे पाते हैं । (पृ० १६१)

इसी तरह बिहारी भाषा में मावकी से उत्पन्न होने के कारण पश्चिमी हिन्दी के वन्य 'स' की जगह लालम्ब स के के प्रयोग को उम्हाने कँची लिपि की सेन बताना चाहता है । वे कहते हैं— यदि वह खोप देखावटी अक्षर लिपि स उमका बहुत नाम है । किस' की जगह 'कीस' और उस की जगह 'उम' न लिखें । (बु० लि० पृ० १९४) ।

इस प्रकार की भाषा और लिपि विषयक उनकी धारणाओं क मूल में उत्क्रांतीन प्राचिक अध्ययन का धभाव और भाषाविज्ञान के तुलनात्मक एव ऐतिहासिक विधियों की अधिकतम व्यवस्था है ।

लिपि क संबन्ध में वृत्तजी ने एक लिपि की भावस्यन्ता की ओर मोमा को विन प्रकार आकषिण करना चाहता था वह बड़ा ही उपयुक्त कहा जा सकता है ।

नामही लिपि और उसके सहाय्य उपयोग की विशेषताओं को वृत्तजी ने अपने कई लेखों—(भाछ की भाषा 'एक लिपि की जकछ' हिन्दुस्तान में एक समुझाठ आदि)—में व्यक्त किया है । इनमें उनक द्वारा व्यक्त किमे बये बिचार इस बात की पुष्टि अवश्य करते हैं कि भारतीय भाषाओं की पारस्परिक हूँ एक लिपि क प्रयोग से कम की जा सकती है ।

आयम को शान्ति मन्त्र (पृ० १९६) । रख सई काज—सम्भी जोटी
विमरक-विम्बू (पृ० १९६) तबहु जोही विममाके पाये डबोता
पायके घादि भादि ।

इन सारी विहृतियों और अस्वाभाविकताओं को हम गुप्तजी की दुर्बलता नहीं
कह सकते । उनका जीवन पत्रकारिता की सम विद्या से संबद्ध था जिस
रोज या हफ्त में एक बार उन कागा से मिलना पड़ता है जो पढ़त लिखत
नर है । ऐसे में उन्हें उन शान्ति मन्त्रों के प्रति अवश्य ही जागरूक रहना
था जिससे विभिन्न भाषिक तत्त्वों के संस्कार उन तक आते थे और पुनः
उनका संदेश मकर जनसमूह की ओर सौंप जात था । निरुपम ही शान्ति
विम्बूओं पर उन्हें प्रबल भाग्य के विष्णु मन का ही वर्तन होना
स्वाभाविक था ।

प्रवाहमयता और वातावरणकी भाषिक विश्व-मुक्ति गुप्तजीके प्रधान मनोभाषिक
(Psycho Linguist) युग है विमरकम्बूकी भाषा एक भवेड़ी ही प्रयुक्त
कर सकता है । उनका भाषा के ये दो बड़े गुण हैं उनक प्रति ध्यानन कर
देत है ।

भाषादानों की समदात

आवृत्त दृष्टियों के विधान इन बात करने विचारों के साथ बहुत मोला के कारीकिर्त भी छात्र करन है। इनमें धार्मिक कारीकिर्त इनके विषय और पृष्ठोपकों के हाथ है। इनके कारीकिर्त का पता लगाया जाय तो यह उनकी करवामी आई भनीया अलवादिना और मरविना तक के निराल बात है। हम इनके है कि रचनाएँ हो-हो-अब के निवारणकोमी का भी सम्बर लवा है। करवरी की करवरी में पवित्र मरावीर प्रसार दिवनी न हम बात के कारीकिर्त छात्र है कि भारत का भाषा और व्याकरण का सम्बर लवा लय सम्बर लवा है। इनके जय वृत्ता है भारत की निवारण का अलवा भारत का जय नही लवा पवित्र-भाषा महात्मा इन बात की करवरी पड़ी। अलवा अलवा इनकी मरावी की बात बुद्ध-बुद्ध मुनी—आर्य। कारीकिर्तों के साथ साथ आचार्य ने भी भारत कारीकिर्त जोड़ दिय है हम भय न कि वही हम जयवी निवारण की कम्पी दीवार भी दिवरीवी की जीति जेड न जाय।

पवित्र कमसाविमार विराटी लय० ए० निराल है —

Your article on "Bhasha and Vyakarana" is the best of its kind. It is very interesting and instructive. I wish you would write one or two papers more on similar lines.

दिवरीवी की लवा कारीकिर्त एक लय० ए० न विना आचार्य का अलवा दिवरीवी न इनके अलवा के अलवा में निराल हो अलवा अलवा और अलवा जीति के विधान बहुत जयवी कर लू है।

जयके भीतर आचार्य के साथ भय नही अलवा अलवा अलवा अलवा विना। उक्त जेड अलवा अलवा हम भारत की आचार्य है अलवा अलवा अलवा।

अलवा अलवा अलवा

अलवा अलवा

पं मंयाप्रसार अग्निहोत्रीजी ने आपको लिखा है— 'गवम्बर की सरस्वती में व्याकरण विषयक आपका लेख बहुत अच्छा निकला है ।

पर आपने आत्माराम को यों भिखा आत्माराम महाशयकी आज्ञा करने की दीप्ती सहसा शिष्टाचार प्रधानमोदित नहीं है । बचारे सच्चे आदमी हैं वेसा समझ में आया वैसे लिख दिया ।

बाबू काशीप्रसादजी ने दिवेलीजी के भिये लिखा है 'भाषा और व्याकरण भाषा सेना बहुत ही अच्छा है । आज हमने उस पढ़ा । हिन्दी के सर्वभेद लेखक को जैसा क्षिप्ता चाहिए वा आपने वैसे ही लिखा है ।

यह सार्टीफिकेट पढ़कर एक लड़के की बात याद आई वा कहा करता कि हमारे गुब्बी सी लड़ाक किसी के पास नहीं । आप आत्माराम को भी कुछ सार्टीफिकेट दते थे पर लिख लिखाकर उस पर लकीर कर दी । और इनक अभाव में बाबू मोकुमानस प्रसाद महोदय के पत्र से कुछ पत्रियाँ नकल कर दी जाती हैं— 'भारतमित्र में हिन्दी भाषा की 'अमस्त्रिणा' विषयक समाचार लेखके भिय आपका समस्त हिन्दी संसार कृतज्ञ रहेगा । आप हिन्दी वच को धर्म्य की भाँति कुछ पण्डितों की स्वकल्पित पद्धति से मुक्त कराना चाहते हैं ।

पण्डित पद्मिन्ह धर्मा दिवेली जी को आत्मन्तर से लिखते हैं वह बकीस दिवेली जीक सम्मन्त और फारसी क प्रत्येक विज्ञान हैं— "भाषा और व्याकरण को देने कई बार पढ़ा । देने उसकी प्रत्येक बात अपने मनके अनुकूल पाई । यही नहीं किन्तु आपक लेखका प्रत्यक्ष मुझ एगा मोहित कर लेता है कि उसके प्रतिकूल समझना ही नहीं उसमें कही गई बात मुझे अपनी ही मालूम होने लगती है । लेख बहुत ही उपयोगी और हृदयग्राही है । इस प्रकार क सम्य ही हिन्दी को उज्ज्वल करेगे । मसरी लोगों की बात पर ध्यान न दिया कीजिये ।

मार्टीनट मण्ड है और इसीमे दिवेलीजी ने आपक धर्मिक दूर में छापवा है । पर दास आत्माराम की समझमें इस मनबहाता न दिवेलीजी की विद्वत्ता में कुछ गुमनामी हुई है । वह तो कबल संस्तुत और फारसी जानत हैं फिर उनका मनत्र और दिवेलीजी का मणत्र बराबर कैम हो गया ? दिवेलीजी स्वयं बदा है कि यह सब जाने उनक दमान में फारस इंग्लैण्ड अमेरिका

(३)
 यदि मैं सदा मैं समझूँ और हिन्दुओं को गुलामों में धाई घोर खो रही होगी
 पश्चिम मनीषा का विद्वानुत्तम १००० क भाषा विज्ञान के बसता लगा
 को पढ़कर आई। और जो जगदीश्वरी का रोचक विज्ञान साहस बारीक भाव
 इन सबके बारे में जगदीश्वरी और पारसी को ही के विज्ञान है। उनका
 और विज्ञानों का स्थापन बराबर के हो सकता है ?

[illegible]

I have perused with much pleasure
on your and your

I have perused with much pleasure and interest your article on पारा and व्याकरण, in this month's issue of (the) "Saraswati" in the greater portions of which I entirely agree with you. There are a few places where I differ from you.

प्राणों को तब तक न छिड़ो जो पूरे ज्वलन नहीं जाँचि पायें। वही प्राणों को तो दिया है वह भी मुनि—

हिंदी की भाषा की इतनी कठोरता की जरूरत नहीं है। हिंदी भाषा
है— हिंदी भाषा में व्याकरण की पर्याप्त जरूरत नहीं है। न तो भाषा में
क्या-क्या है। ये उनका द्वारा प्राप्त किया है कुछ मात्रा में भ्रम
में लीन करना चाहिए।

टिप्पणा ३

[illegible]

जादगाँव बरनन गाविस नु

श्रीमान्महोदय महोदय श्री विष्णु
महोदय

आवनाबोड बार नदन नू

हस्ताक्षरः ४-४ नू ग रा

[illegible]

प्राप्तो विना क तत्र वाग वाग मय न-वार है—
 दासगो वरु मय

କାହାଣୀ କହା ହେବେ

विषयः १५ ॥ १५ विविधः ।